मीता–जीवन शैली प्रारूप

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिवेश

नरेंद्र अग्रवाल

हिंदी अनुवाद

डा0 हरेन्द्र अग्रवाल

प्रकाशक : बंदना चौधरी

प्रकाशक : बंदना चौधरी, भारत
प्रथम **अंग्रेजी संस्करण सितम्बर** 2007
प्रथम हिन्दी संस्करण– जून 2012
वर्तमान संस्करण: जनवरी 2025

प्रकाशक : बंदना चौधरी
प्रकाशक: बंदना चौधरी
प्रथम तल, सी-6, अंबिका नगर
शक्तिनत, भरूच, गुजरात (392001)
वेबसाइट: resurrectionofdharma.com,

@ सर्वाधिकार लेखाधीन,

प्रकाशक की कलम से

एक सौ दो विषय समाविष्ट करती हुई मीता–जीवन शैली प्रारूप हमारी व्यक्तिगत एवं सामूहिक विकास एवं खुशहाली के सभी आयाम प्रस्तुत करती है एवं जीवन को सभी आयामों में एवं सही मायने में जीने का मार्ग प्रशस्त करती है |

प्रस्तुत पुस्तक मीता - जीवन शैली प्रारूप का प्रकाशन करते हुए हर्ष हो रहा है,

व्यक्तिगत, परिवारिक एवं सामाजिक जीवन में क्रमशः बढ़ते हुए वैश्विक असर, दखलअंदाजी एवं परस्पर निर्भरता एवं ठीक ऐसे ही दौर में सभी हिस्सों जिलों, प्रदेशों राष्ट्रों को अपने में आत्मनिर्भर एवं अलग करनें की कोशिश इसपरिस्तिथि में यह पुस्तक न केवल सभी समसामयिक विषयों पर वृहत समझप्रस्तुत करती है बल्कि हमारे व्यक्तिगत एवं सामूहिक सफल जीवन के लिए संभव कार्यों की श्रृंखला एवं कार्ययोजना भी प्रस्तुत करती है| लेखक का यह प्रयास सटीक एवं सराहनीय कहा जा सकता है|

प्रस्तुत पुस्तक "मीता - जीवन शैली प्रारूप" वाद.विवाद, प्रतियोगिता, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर नौकरी में साक्षात्कार की तैयारी के लिए, घरों के मालिक - महिलाओं को बेहतर जीवन चलाने के लिए एवं राष्ट्र के मंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति को समाज एवं देश चलाने के लिए सहयोगी कहा जा सकता है |

लेखक के अनुसार को, यह विषय 15.11.2005 से 15.12.2005 के बीच में लिखे गये, जिसमें किसी दूसरे ग्रंथों, लेखों, आलेखों का उद्हरण नहीं है, और ऐसा कहा जा सकता है कि यह प्रकृति प्रदत है |

मीता - जीवन शैली प्रारूप जीवन के सभी पहलुओं को वृहत समझ के साथ प्रस्तुत करती यह पुस्तक. मूलतः भारत को ध्यान में रखकर लिखी गयी है. जहाँ ;भा.रत: भा- रोशनी, प्रकाश, ज्योति एवं रत - व्यस्त होना, भारत, वह जो प्रकाशित करने, रोशन करने में, ज्योतिर्मय करने में कार्यरत, प्रयासरत रहें. ऐसा जाना है, अतः यह पुस्तक सभी देशों एवं परिस्थितियों में पूर्ण रुप में सहयोगी होगी |

प्रस्तुत पुस्तक मूलतः अँग्रेजी में लिखी गयी है, और इसका हिंदी अनुवाद लेखक के बड़े भाई डॉक्टर हरेंद्र ने किया है, अतः अधिकांश जगह हिंदी अनुवाद मूल अंग्रेजी से भी ज्यादा मुखर होकर उभरा है |

लेखक एवं उनकी पत्नी ने इस लेख के माध्यम से उन सभी संत महात्मा बुजुर्गों को प्रणाम, सभी साथियोंए सहभागियों को धन्यवाद एवं अनुजों को प्यार पहुँचाना चाहा है जिनके शुभाशीष एवं शुभकामनाओं के कारण यह लेखन संभव हुआ |

अंत में पाठकों से निवेदन है कि वह "मीता - जीवन शैली प्रारूप में विभिन्न विषयों पर में सुझाये सभी कार्यों में अपनी सहभागिता सुनिशिचित करें जिससे समाज में बदलाव की प्रक्रिया आसान रहे और सभी दिशाओं में सुख ब्याप्त हो |

बंदना चौधरी
प्रकाशक

क्रम विषय-सूची

सामाजिक परिवेश पृष्ठ संख्या 9-54,

01 जीवन शैली
02 लक्ष्य की ओर निर्देशित जीवन
03 सफल (सही फल)
04 जिम्मेदारी / जवाबदेही
05 स्वतंत्रता
06 धर्म
07 विज्ञान
08 जीवन और मृत्यु
09 पवित्र गाय
10 ब्रह्मचारी, संत साधु और ऋषि
11 परिवार
12 नस्ल
13 बुजुर्ग और बुद्धिमान (बुजुर्गों में से बुद्धिमान)
14 बच्चे
15 किशोर
16 स्त्रियाँ
17 पुरुष
18 विवाह
19 यौन
20 विकलांग
21 जनसंख्या

आर्थिक परिवेश पृष्ठ संख्या 55-77

22 आर्थिक सिद्धान्त
23 व्यापार और कार्य
24 निजी, संयुक्त, सार्वजनिक और शासकीय क्षेत्र
25 मुद्रा
26 बजार
27 टैक्स (कर)

28 आय
29 व्यय
30 बैंकें
31 सकल राष्ट्रीय उत्पादया सकल खु**श**हाली अनुपात

राजनैतिक परिवेश पृष्ठ संख्या 78-103

32 राजनीति
33 मूल्य आधारित राजनीति
34 भारत : स्वाभाविक नेता
35 सेक्यूलर और धर्मनिरपेक्ष
36 धर्मनिरपेक्षता और जनतंत्र
37 राजनीति में जाने वाले लोग
38 राजनैतिक शक्ति, गठजोड़ और शीर्षस्थ नेता
39 कानून
40 व्यवस्था
41 राजनीति का तथाकथित अपराधीकरण
42 शपथ
43 सरकार
44 शासन की संघीय संरचना
45 संविधान
46 राष्ट्रीय ध्वज राष्ट्रीय गीत एवं राजधानी
47 संसद
48 योजना आयोग
49 राजनैतिक पार्टियों को राजकीय अनुदान
50 चयन/चुनाव प्रक्रिया
51 अंतराष्ट्रीय भाईचारा

सामूहिक परिवेश पृष्ठ संख्या 104-219

52 कर्म, ज्ञान, भक्ति, राजयोग और इनके संयोग

53 जीवनकाल और इसका विभाजन (आश्रम व्यवस्था)
54 वर्ग, जाति या वर्ण व्यवस्था

55 समाज के विकास की प्रावस्थाएं
56 विश्वास, आस्था भरोसा और सत्य
57 आदर्श और विचारधारा
58 इतिहास और भूगोल
59 आधुनिकीकरण और परंपरा
60 मनोविज्ञान और दर्शन
61 लयबद्धता
62 पूजा स्थल– मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे
63 ट्रस्ट और स्वैच्छिक संगठन
64 प्रबन्ध (मैनेजमेन्ट)
65 ईमानदार लोगों की समस्या
66 न्याय व्यवस्था
67 समाज की सुरक्षा और प्रतिरक्षा
68 सबके लिए भोजन
69 जल
70 स्वास्थ्य
71 शुद्धता और स्वच्छता
72 गणवेश और वेशभूषा
73 भाषा
74 खेल
75 शिक्षा
76 तकनीकी (टेक्नोंलॉजी)
77 कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी
78 यातायात और संचार
79 रेलवे
80 रोजगार सृजन
81 कृषि
82 कृषि अर्थ व्यवस्था एग्रोनॉमी
83 कस्बे और देहात
84 ऊर्जा
85 उत्सव धर्मिता और जीवन आनंद की अभिव्यक्ति
86 पर्यटन
87 हमारे पड़ोसी और दूसरे विदेशी मुल्क

88 विदेश नीति
89 अतिथि देवो भवः
90 गरीबी
91 वैश्यावृत्ति
92 आरक्षण
93 प्रदूषण
94 वातावरण
95 मीडिया
96 मोटापा और कुपोषण
97 आतंकवाद और आतंकी
98 भ्रष्टाचार
99 सुझाव, और अमल के परिणामों से प्राप्त जानकारी
100 पारदर्शिता
101 आत्मगौरव और प्रसाद

102 हिंसा, अहिंसा, शांति और लय

***

जीवन शैली

जब थक जाएं तो विश्राम करें, और जब काम पूरा हो जाए तो निवृत्त हो जाए।

जब दिन का काम पूरा हो जाए और हम थक भी चुके हों तो आराम करें और सुख पूर्वक निद्रा देवी की गोद में चले जाएं। और जब जीवन का सारा ही काम संपूर्ण हो जाए तो मृत्यु की गोद में एक लंबे विश्राम के लिए चले जाएं।

अगर कभी दुबारा उसी तरह के काम की फिर जरूरत पड़े, तो फिर से उदित हो जाएं, काम को पूरा करें, और फिर स्वयं भी खाक हो जाएं।

दुनिया का सृजन, सृजनहार (अल्लाह, ब्रह्मा) की लीला है, इस लीला में चक्र कभी थोड़ा इधर हो जाता है कभी थोड़ा उधर, हरेक हिस्से और यहां तक कि कलपुर्जे का भी उपयोग होता है, लेकिन देशकाल की आवश्यकताओं की सीमा में, और हरेक को उसका समुचित स्थान मिल ही जाता है।

हरेक हिस्सा, हरेक आदमी यहां एक निश्चित उद्देश्य के लिए आया है, यहां हरेक का जन्म होता है, जीवन और मृत्यु, उसी सुनिश्चित कार्य को करते हुए हैं – जाने या अनजाने।

ऋषि इसे जानते हैं, ज्योतिष इसकी घोषणा करती है और हस्तरेखाएं भविष्यवाणी, रेकी जैसी विद्याएं इन तक पहुंचाती हैं, टैरट इसके बारे में कुछ बताते हैं, और व्यक्ति इनको और सबको श्रद्धापूर्वक सुनते हुए, अपने कर्तव्य या उद्देश्य, इसे जो भी कहें, की प्राप्ति की ओर बढ़ता चला जाता है।

ऋषि जो इस समग्रता को समग्रता में ही देखते हैं, देख लेते हैं कि कहां समतल जमीन है कहां गड्ढ़ा, कहां दमन है कहां आक्रमकता और लक्ष्य कहां है, और फिर उसके बाद क्या। वे समझते हैं कि समय गुजारना कितना कठिन है और क्यों हमारी आंखों के सामने पर्दे डले रहते हैं, ताकि खेल आगे, और–और आगे चलता चला चले ।

इस लीला में, जब हम जागें तो सबेरा जब भी हो इसे (सृजनहार को) याद रखें, और फिर जब दिन का काम शुरू करें तो फिर याद करें, दोपहर में विश्राम मिले तो फिर, इसके बाद जब दिन का काम समाप्त हो जाए एक बार और, और फिर सोने से पहले एक बार फिर और इसी तरह अगले दिन, इतना पर्याप्त होना चाहिए। माँ कहती है, दिन में ऐसा कोई काम न करो, जो हमारी रात की नींद खराब करे, और रात में ऐसा कोई काम न करो जो दिन में हमारा चेहरा या चेहरे की कीमत खराब करे। इस लीला में सबसे अच्छा तो यह है कि उसी (अल्लाह, ब्रह्मा) की बांसुरी की धुन पर, उस धुन पर जो चल ही रही है, नृत्य हो , जीवन लीला चले।

जो अपने काम के दौरान उसको जितना याद कर पाते हैं, उन्हें उसकी लीला में उतनी ही अच्छी भूमिका मिलती है, और जो लगातार काम करने और उसे याद करने में तल्लीन हैं,

सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। जो केवल काम करते हैं, या जो केवल ध्यान करते हैं, उनका महत्व तो क्षणिक है, ये फिर वक्त के साथ अपनी लय को खो देते हैं, और फिर मूलधारा के बाहर फेंक दिए जाते हैं।

जब तक लीला निर्बाध चलती है, हरेक चीज ठीक रहती है, और जब लोग भटक जाते हैं, तब उसका कार्यकारी दूत (पैगम्बर) आता है, और जब पूरा खेल ही खराब होने लगता है, तब जान लेना चाहिए कि खेल को उत्तरोत्तर ज्यादा शक्ति से ठीक किया जा रहा है।

आमतौर पर, जीवनपद्धति को वैसा ही होना चाहिए, जैसा उसके बहुत से दूतों/पैगम्बरों ने बताया। इसके सबसे नवीनतम रूप हैं :

कबीर– खेलिबा, खाइबा, धरिबा ध्यानम।
नानक काज करो, बांट चखो, नाम जपो।

और यह सब जीवनपद्धति के बारे में है,

प्रार्थना, खेल और सौहार्द। प्रार्थना पृथक से, खेल खिलाड़ियों से सौहार्द सहभागियों से ,

***

लक्ष्य की ओर निर्देशित जीवन

जीवन मुख्यतः दो तरीकों से चलता है, और एक ऐसा तरीका भी है जिसमें दोनों ही तरीके एक साथ चलते हैं और इसी समन्वित तरीके से पूर्णता और आनंद की प्राप्ति होती हैं। यह तरीका/झुकाव या दृश्टिकोण व्यक्ति, राश्ट्र एवं वृहत समाज सभी के लिए समान रूप से लागू होता है।

पहला है परिस्थितियों से समझौता करने का तरीका : हम वर्तमान परिस्थिति से समझौता कर लेते हैं, और फिर जैसी भी परिस्थिति आती चले, उससे समझौता करने के लिए तैयार रहते हैं। हमें परिस्थितियों को बदलने की कोई फिक्र नहीं होती, बल्कि परिस्थितियों के हिसाब से ही हम अपने आपको ढालने की कोशिश करते हैं। इस तरह हमारा समझौता करने के अलावा कोई दृष्टिकोण होता ही नहीं। कोई नृप होय हमें का हानि, चेरि छोड़ न होइ हैं रानी।

इस परिस्थति में विकास/विनाश इस तरह से होता है।

असंगठन – संगठन – असंगठन

दरार – समझौता – दरार

इसके अपने फायदे हैं, ऊपर से दिखाई देने पर कोई खतरा नहीं है, लेकिन इसमें कोई स्वत्व भी नहीं है। इस तरह तो सिर्फ नियति के इंतजार में समय काटा जाता है। जीवन में न तो कोई उत्साह होता है, न कोई साहसिक काम, और न ही प्रखरता से अपना काम कर लेने के बाद मिलने वाली संतुष्टि और आनंद। अगर हमारा ऐसा रुख है तो हमारे आत्मविश्वास, दृष्टिकोण, भीतर से आने वाली पहलकदमी और जीवन की गुणवत्ता की हमारी धारणा में ज्वार–भाटे आते रहते हैं। कभी भावनात्मक उछाल और कभी गहरी उदासी, सब परिस्थिति के ऊपर निर्भर। जैसे पूरा जीवन बिना कुछ समझे नींद में गुजरता जाता हो।

दूसरा तरीका है लक्ष्य की ओर निर्देशित जीवन हमारा हृदय और हमारा मस्तिष्क अपने लिए कुछ ध्येय कर लेते हैं। भारत में इसे इष्ट कहते हैं, वह जो कि हम होना चाहते हैं, या वह जैसा कि हम देखना चाहते हैं। ध्येय के अनुसार ही हमारा जीवन चलता है। अगर हमारे ध्येय हैं, हमारी कुछ निष्ठाएं हैं, और हमारी कुछ अस्मिता हैं– तो परिस्थितियों के साथ समझौता करना मुश्किल है, फिर हमें प्रयास करने पड़ते हैं, और अपनी जान फूँकनी पड़ती है, और देर–सबेर जीवन से तादात्म्य बन ही जाता है, लेकिन यह तादात्म्य अब ज्यादा परिष्कृत है और ज्यादा ऊंचे स्तर का।

इस तरीके में विकास का क्रम है।

दरार – समझौता – बेहतर एवं सूक्ष्म समझौते

असंगठन – संगठन – संगठन विकास

अगर हमारा जीवन किसी लक्ष्य की ओर निर्देशित है, तो भूत, वर्तमान और भविष्य, एक सीधी रेखा में आ जाते हैं। चाहे यह एक व्यक्ति का जीवन हो, या फिर पूरे समाज या देश का। फिर काल किसने देखा है।

जीवन के लक्ष्य की ओर निर्देशित होने के फायदे हैं :

1. एक तरह की अंतर्दिष्टि और भविष्य के प्रति एक पूर्व दृष्टि।
2. लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए कदमों से हृदय में होने वाली प्रसन्नता का अनुभव, और लक्ष्य की ओर गति की प्रक्रिया को समझ पाने का अवसर। हरेक अगले कदम पर निरंतर बढ़ती जाती प्रसन्नता जो शनैः शनैः हमें हमारे बंधनों से मुक्त करती चलती है।
3. लक्ष्य की ओर निर्देशित जीवन आत्मविश्वास और जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से शुरू होता है, और जैसे–जैसे लक्ष्य की ओर हम आगे बढ़ते जाते हैं, हमारे आत्मविश्वास और सकारात्मकता में वृद्धि होती जाती है, और तभी वास्तविक गतिमान श्रद्धा की प्राप्ति होती है। हरेक कदम के साथ हमारी प्रेरणा विकसित होती है, और गुणवत्ता और समय का बोध बढ़ता जाता हैं।
4. अगर लक्ष्य हैं तो दूसरों को प्रतियोगिता में हराने की जरूरत कम पड़ती है, हर बार अपनी ही क्षमताओं के पार जाने की जरूरत ज्यादा।
5. हमारी लगभग सारी इच्छाएं, आकांक्षाएं, महत्वाकांक्षाएं और आशाएं हमें बिना किसी अतिरिक्त प्रयास या तनाव के पूरी होती हुई दिखाई देती हैं। हम जानते चलते हैं कि वही तो हो रहा है जो हम वास्तव में चाहते हैं।

सारी धार्मिक संहिताएं हमें बताती हैं कि जीवन का कोई उद्देश्य है, और इसीलिए व्यक्ति, समाज और देश के लिए धर्मानुसार लक्ष्य हैं, और ये लक्ष्य हमारी स्वयं की प्रसन्नता के लिए जरूरी हैं, और प्रसन्नता ही जीवन की अकेली संधारण शक्ति है।

और तीसरा तरीका भी है : लेकिन यह तो कुछ अनूठे लोगों को ही मिलता है, केवल उन लोगों को जो उस क्षेत्र के भीतर आ गए है, जिसमें से होकर परमात्मा के सामने समर्पण किया जाता है, और विशाल धड़कते हुए जीवन को जिया जाता है, जैसा और जहां परमात्मा ले जाए।

स्वयं जीवन इन लोगों के लिए लक्ष्य निर्धारित करता चलता है, और वही उन्हें हर आने वाली परिस्थिति में बिना किसी समझौते के समायोजित भी करता चलता है। ऐसे लोगों के शब्द आदेशवत हैं, और उनका स्वयं का जीवन प्रसाद से परिपूर्ण। हमारे स्वयं के छोटे–छोटे लक्ष्य, इनके महान लक्ष्यों के छोटे–छोटे हिस्से हैं।

फिर स्वप्न तो आखिरकार स्वप्न ही हैं, जबकि दृष्टि एक वास्तविकता। जब दृष्टि मिलती है,

तो स्वप्न स्वभावतः तिरोहित हो जाते हैं। इसलिए हमें अपनी दृष्टि के अनुरूप जो संभव है उसकी प्राप्ति के लिए गतिशील हो जाना चाहिए : ताकि हम एक स्वस्थ, आनंदित और पवित्र समाज को बना सकें और बनता हुआ देख सकें।

***

सफल (सही फल)

हरेक किसी को मालूम है कि बच्चे यौन क्रिया से ही जन्म लेते हैं, फिर भी सबको यह मालूम है कि सिर्फ यौन क्रिया नहीं, कुछ और भी है जिसके बिना हमारे जैसे ही एक और प्राणी का बन पाना संभव नहीं हो सकता। यौन क्रिया जो ;सुक्राणुओंद्ध की एक अराजकता का सृजन कर देती है, इससे गर्भ हो भी सकता है और नहीं भी। और कैसा बच्चा पैदा होगा, यह तो कुछ हद तक यौन क्रिया में लिप्त दम्पत्ति की मानसिक दशा, स्थान और मौसम पर निर्भर है। इन सभी से भविष्य के शिशु का निर्माण होता है, और शिशु के भविष्य का भी।

शिशु की सफलता की कहानी, मां के दूध में निहित जीवनी शक्ति को चूसने से शुरू होती है। इसलिए हम ऐसा भी कह सकते हैं कि जो जितना ज्यादा दुग्धपान करते हैं वे उतने ही ;सक–एक्सेस–फुलद्ध अतिरिक्त फूल जाते हैं, और जो मधुमक्खियों की तरह चुनिंदा चीजों का ही पान करते हैं, वे सफल। अगर बच्चे मां के दूध को जरूरत से ज्यादा चूसने लगे तो मां भी बीमार हो जाती है और बच्चा भी, हां अगर वे केवल उतना पीते हैं जितना कि जरूरी है, तो फिर दोनों को ही संतुष्टि प्राप्त होती है, और फिर उनके साथ सभी को।

पिछले बारह सालों में, जिन बारह हजार से ज्यादा लोगों से भारत में मिला हूँ, भिखारी से लेकर अरबपतियों और देश के अंतिम व्यक्ति से लेकर देश के प्रधानमंत्री तक, हरेक किसी ने यही कहा कि उनमें से हरेक के माता–पिता की स्थिति उनसे थोड़ी खराब थी, लेकिन दादा तो लगभग सभी के गरीब थे। सबका ऐसा मानना था कि दादा के समय देश गुलाम था, माता–पिता के समय देश अभी पैदा ही हुआ था, और अब कहीं जाकर हम किशोर हुए हैं। हरेक किसी ने कहा है कि हांलाकि सफलता व्यक्तिगत प्रयास से ही आती है लेकिन इसके परिणाम सामूहिक होते हैं : प्रयास, इच्छाएं आंकाक्षाएं और भाग्य। हरेक किसी ने कहा कि अगर व्यक्तिगत इकाइयों के बीच में खाई बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, पांच सितारा होटल के बगल में पांच वर्गमीटर की झोपड़ी, तो फिर डकैती और लूट, दमन और प्रतिहिंसा, उकसावे और बचाव के प्रयास, जीवन लेने और देने की प्रणालियां भी बढ़ती है।

हरेक किसी ने कहा कि सफलता के लिए एक ऐसी व्यवस्था होना जरूरी है, जो कि प्रकृति पर आधारित हो, किसी एक धार्मिक पुस्तक पर नहीं, लेकिन जिसमें वर्तमान परिपेक्ष्य में सारे ही महान धार्मिक ग्रंथों का आशय निहित हो, और जो सनातन हो,।

मानना है कि सफलता तो सफल होने के बाद ही मिलती है, और सफलता के बाद बनती है विरासत, और अभी तो हम सभी संक्रमण के काल में हैं।

सफल समाज बनने के लिए जरूरी हो सकता है कि, हम जो कर रहे हैं उसे अलग ढंग से करना पड़े, और यह भी कि हमें बिल्कुल नई चीजों को हमारे वर्तमान ढंग से करना पड़े।

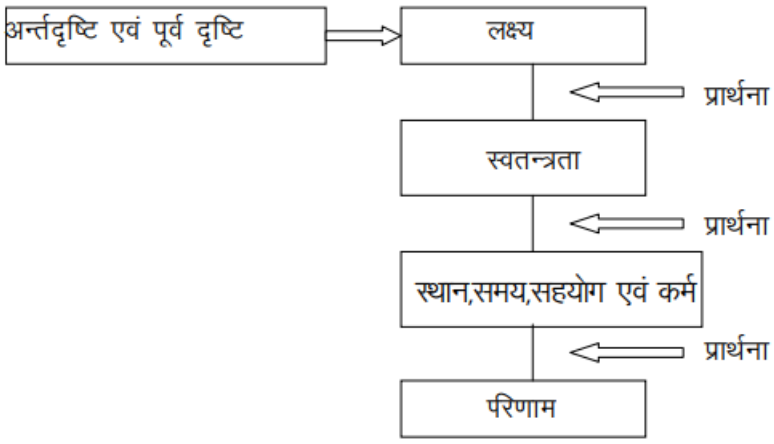

सफलता के लिए अंर्तदृष्टि और भविष्य के प्रति पूर्वदृष्टि, इन पर आधारित लक्ष्य, लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करने की स्वतंत्रता, लोगों को सही समय और स्थान पर नियोजित करना, पुख्ता काम और फिर इसके बाद ही परिणाम की आशा, यही मार्ग है, और कोई भी रास्ता प्रार्थना के बिना नापा नहीं जा सकता।

जो '' प्रकृति परमात्मा या ईश्वर उसे जो भी कहें का निर्देश मानते हैं और अपने कर्म को प्रकृति के हाथों ही सौंप देते हैं, उन्हें ही अपने कर्म में शीघ्र सफलता मिलती है, और वे ही आनंदित और प्रेमपूर्ण बने रहते हैं।

***

जिम्मेदारी / जवाबदेही

एक ऋषि ने घोषणा की कि उसका कोई चरित्र नहीं है, तो राजा ने पूछा कि '' क्या इसका अर्थ यह है कि वह महिलाओं के साथ छेड़खानी, चोरी या डकैती कुछ भी कर सकता है ?

ऋषि ने उत्तर दिया कि चरित्रवान होने का अर्थ है पहले से तय करके बैठ जाना, बिल्कुल मशीन हो जाना, जब कोई जागता है तो प्रकृति के साथ जीना शुरू करता है, तब वह रिस्पॉन्स (जवाब) देने में सक्षम होता है और केवल तभी रिस्पॉन्सिबल (जवाबदेह)। जिम्मेदारी परिस्थिति के साथ संवेदित होने की क्षमता है। सच तो यह है कि जब कोई संवेदित होने की क्षमता ही खो बैठता है केवल तभी उस पर कोई खास चरित्र थोपना संभव है।

(अ). अगर हम अपने वर्तमान परिस्थिति को देखें तो हम बिना किसी हिचक के कह सकते हैं कि यहां कोई भी परिस्थिति का समुचित प्रतिउत्तर देने में सक्षम नहीं हैं, यहां तक कि महामहिम और सुप्रीमकोर्ट के सर्वोच्च न्यायाधीश तक, कोई भी नहीं।

(ब). हमारे जनतंत्र के पाँचों स्तंभ (जनता, मीडिया, न्यायपालिका, कार्यपालिका एवं संसद) पिछले बहुत वर्षों से अलग–अलग खंभों की तरह ही खड़े हैं, वे एक मंजिला इमारत तक नहीं बना सके, और इस परिस्थिति को देखकर आम आदमी को सिवा भ्रम के और कुछ भी नहीं मिलता।

यहां तथाकथित जिम्मेदारी के नाम पर कभी–कभी एक छोटे से मजदूर की गलती के कारण एक चेयरमैन को निलंबित कर दिया जाता है, और तभी किसी जज की गलती के कारण पुलिस के इंस्पेक्टर को जेल की हवा खानी पड़ती है। जब गेहूं की अधाधुंध फसल आई हो तभी गेहूं का आयात होता है, और जब प्याज की भारी तंगी हो तभी उसका निर्यात, और सभी जिम्मदार हैं। यहां पुलिस केवल घटना घट जाने के बाद पहुंचती है और मौत के बाद कोर्ट का निर्णय आता है। ऐसी अराजकतापूर्ण परिस्थिति में, जिसमें कोई भी किसी दूसरे पर सीधे–सीधे आरोप रखने की हिम्मत नहीं करता, एक पूरी तरह से गैरजिम्मेदार व्यवस्था ईश्वर की कृपा से ही चल रही है। हां कहीं बीच–बीच में कुछ जरूरत से ज्यादा गंभीर, संवेदनशील और जिम्मेदार व्यक्ति अवश्य मौजूद हैं, और उन पर समाज में काफी बोझ है और वह ज्यादा परेशान भी महसूस करते हैं।

सुधार के लिए जरूरी है कि :

1. हमें यह तय करना होगा कि प्रजातंत्र के पॉचो स्तंभों, वोटर (जनता), संसद, प्रेस, न्यायपालिका और कार्यपालिका, इनमें से सर्वोच्च कौन है और पूरी तरह से जिम्मेदार।
2. जैसे ही हम यह तय कर लेते हैं तब हमें इस सर्वोच्च पर व्यवस्था को सुधारने के लिए

दबाव डालना होगा, कि वह सभी पाँचों स्तंभों के लिए, स्पष्ट दिशा और उसके अनुरूप जिम्मेदार व्यवहार और कार्यपद्धति सुनिश्चित करें।

3. शासन के द्वारा समाज और परिवार के क्षेत्रों में जरूरत से ज्यादा दखलन्दाजी के कारण उसमें से जिम्मेदारी के साथ व्यवहार करने की आदत लगभग खत्म हो गई है। अब नई परिस्थितियों में यह जरूरी है कि समाज स्वयं अपने खुद के तरीकों, मूल्यों, भूमिकाओं और जिम्मेदारियों को पुनः परिभाषित करे।

4. कहा जाता है कि स्वतंत्रता के साथ जिम्मेदारी आती है, सत्य इसका बिल्कुल उल्टा है। जब कोई जिम्मेदार होता है, तभी केवल उसमें स्वतंत्रता की कीमत चुकाने की क्षमता होती है, नहीं तो शारीरिक रूप से स्वतंत्र होकर भी, हम हमेशा मानसिक गुलामी में ही कैद रहते हैं।

***

स्वतंत्रता

पैगम्बर मोहम्मद से इस्लाम के एक नए अनुयायी ने पूछा '' हम आजाद हैं या नहीं'' ? और पैगम्बर मोहम्मद ने कहा कि ''तुम अपना एक पैर उठाओ '', शिष्य ने ऐसा ही किया। फिर पैगम्बर मोहम्मद ने कहा कि अब तुम अपना दूसरा पैर उठाओ, तब शिष्य बोला '' ऐसा तो हो ही नहीं सकता''। तब पैगम्बर मोहम्मद ने कहा ''हम इतने ही आजाद हैं और इतने ही बाध्य, कोई भी अपना एक पैर उठा सकता है, फिर चाहे दायां हो या बायां, लेकिन जैसे ही आप अपना एक पैर उठाने का निर्णय ले लेते हैं, तब उसके बाद दूसरे कदम को तो सिर्फ पीछे चलना है''।

स्वतंत्र तो केवल एक ही पैदा हुआ है, जो बिना पैर के चलता है और बिना कानों के सुनता है, हमें तो बस इस तथ्य को हृदय से स्वीकार भर करना है, और यह प्रार्थना करनी है, कि हमारा पहला कदम सही दिशा में उठे।

1. हम यह देख ही सकते हैं कि हमारे यहां के स्त्री पुरुषों का सामान्य स्वास्थ्य और ऊंचाई स्वतंत्रता की उस मात्रा पर निर्भर करती है, जो कि उन्हें मिली है, यह हमारे गांवों, कस्बों, शहरों, महानगरों को आज देखने, और आजादी के पहले और आजादी के बाद के आंकड़ों को तुलनात्मक देखने से आराम से पता चलता है।

2. स्वंतंत्रता के साथ जिम्मेदारी आती है, केवल जिम्मेदार और साहसी लोग और समाज ही स्वतंत्र बने रह सकते हैं। गैर जिम्मेदार समाज और राष्ट्र तो कभी न कभी अपनी आजदी खो देने और किसी न किसी के गुलाम बन जाने के लिए बाध्य हैं।

3. जो अकेला अपने पैरों में खड़े होने में समर्थ है, और जिसने चरित्र के छद्म, पूर्वाग्रहों और बने बनाए ढांचों से मुक्ति प्राप्त कर ली हैं, वही ज्यादा स्वतंत्र है और ज्यादा जिम्मेदार। केवल वे ही जो वीरता और साहस के साथ छिपे हुए भविष्य में यात्रा करने के लिए तैयार हैं, और अपने कर्म के लिए जिम्मेदार, केवल वे ही स्वतंत्रता की मांग कर सकते हैं, केवल वे ही स्वतंत्रता प्राप्त करने और उसका मूल्य चुकाने में समर्थ हैं, फिर चाहे यह व्यक्ति हों, माध्यम ;मीडियाद्ध, समाज या फिर देश।

4. हम जिम्मेदार बने और अपने हर कर्म के लिए जिम्मेदार बने रहें, चाहे फिर वह कर्म अच्छा हो या बुरा। एक व्यक्ति की तरह, एक आम नागरिक की तरह या फिर और किसी भूमिका में जो हमें मिली है, केवल तभी हम स्वतंत्रता का मूल्य चुका सकते हैं और स्वस्थ और प्रसन्न बने रह सकते हैं।

***

धर्म

ष्धार्यते इति धर्मा जो धारण करता है वही धर्म है, जिसे धारित किया जाता है वह धर्म है।

धर्म आस्था है, हरेक में समाहित, और अपने स्वरूप में सनातन। मनुष्य में इसके रूप अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष हैं। अर्थ यानि काम करने के लिए अर्थपूर्ण रास्ते, द्रव्य और शरीर, काम का अर्थ है कार्य, काम या शारीरिक प्रेम, धर्म का अर्थ है शारीरिक और मानसिक स्तरों पर एक क्षेत्र में होने वाला प्रेम और मोक्ष का अर्थ है मुक्ति, करुणा सर्वसमावेषी प्रेम, केवल यही पर पहुंचकर वास्तविक धर्म की प्राप्ति होती है। धर्म आंतरिक एवं इसकी सिंचाई द्वारा कर्म से वाह्य विकास होता है, दोनो में मजबूत जोड़ से "एक लय–ताल" बनती है जो जीवन में समरसता लाता है (जिसे किस्मत कहते हैं), धर्म से संबंध विच्छेद होने से यह लोगों को या तो हवा में उड़ा देता है या उन्हें सड़ाना शुरू कर देता है (जिसे लोग तथा कथित अधर्मी भी कहते हैं), और ऐसों की हार निश्चित है फिर चाहे वह एक व्यक्ति हो, समूह हो, देश हो या फिर पूरा कि पूरा समाज ।

धर्म सनातन है, प्राकृतिक, प्रकृति के साथ एक और सारे क्षेत्रों और रिलिजनों को अपने में समेटे हुए। ऋषियों और सूफियों का जीवन इसका प्रमाण है।

क) ऋषियों ने गॉड, अल्लाह या भगवान को सर्वशक्ति संपन्न, नित्य वर्तमान और स्वयं पूर्ण बताया है। यह किसी भी चीज को अपने से बाहर नहीं छोड़ता। जहां कहीं भी धर्म शुरू हुआ, यह एक सनातन आस्था के साथ ही हुआ, और अपने स्थानीय परिवेष के साथ प्रेम के साथ। इसलिए हम विभिन्न धर्मों की धार्मिक पुस्तकों (चाहे यह गीता, कुरान, गमरूग्रन्थ साहब हो) में उसमें वर्णित धर्म का कोई विशेष नाम नहीं पाते, पाते हैं तो बस सनातन नियम और सनातन श्रद्धा।

रिलीजन, नदी जैसा है– चाहे वह गंगा हो या वोल्गा जो कि समुद्र में समाप्त हो जाती है। नदी/रिलीजन में बाढ़ आ सकती है और वह सूख भी सकती है लेकिन वह समुद्र जो भाा वत सनातन धर्म की तरह है की बराबरी नही कर सकती है। सारी नदियॉ समुद्र से उठे बादल से, और सारे रिलीजन सनातन धर्म से उठे सार तत्व से प्रवाह एवं उर्जा पाते है।

ख) आध्यात्मिकता सभी चीजों का आधार है और उनका सार भी, राजनीति का भी। आध्यात्मिकता के आधार पर ही क्षेत्र और धर्मों के विभिन्न योगों से राष्ट्र खड़े होते हैं। राजनीति, आध्यात्मिकता की नींव पर, क्षेत्र और धर्मों के स्तंभों के सहारे खड़ी इमारत है। राजनीति संरचना है या संरचना की सतह जो साधनों और पैसे के द्वारा धर्म के आधार पर खड़ी होती है, या पर्यावरण और उसके संतुलन के आधार पर। पॉलिटिक्स राजनीति से निकलने वाला एक व्यवसाय है, और बहुतों के लिए तो दूसरे किसी भी व्यवसाय की

तरह।

ऊपर लिखे तथ्य निम्नलिखित बातों की ओर इंगित करते हैं :

1. सारे रिलीजन महान है, अगर वह महान नही होते तो इतने समय तक जिंदा नही रहते इसीलिए रिलीजन एक दूसरे को समाप्त करने की बजाए यह कोशिश करे कि वह आपस में जुड़ जाये–एकाकार हो जाये, ज्यादा बेहतर होगा–ठीक उसी तरह जैसे कि विभिन्न नदियॉ समुद्र में मिलती है।
2. चूंकि हम मुस्लिमों की सबसे बड़ी आबादी वाले देश हैं, अतः इसके स्वाभाविक नेता, और हिंदुओं की सबसे बड़ी आबादी वाले भी, अतः हमारी यह जिम्मेदारी है कि यह सारी दुनिया की जनता के सामने सारे धर्मों के सार को रखे।
3. हमारी यह प्राकृतिक जिम्मेदारी इसलिए भी है क्योंकि यहां बहुत से धर्मों का जन्म हुआ है, इसके अलावा यह ऐसी जगह भी है जहां ईसा रहे और मूसा के अनुयायी भी। हमें देखना होगा कि धर्म नर्क के डर से नहीं बल्कि प्रेम की शक्ति से खड़ा रहता है और फैलता है।
4. सारा धर्म उस क्षेत्र से उद्भूत होता है जहां स्वयं क्षेत्र एक धर्म से परिपूर्ण होता है, पूरे क्षेत्र के लिए धर्म में स्वाभाविक रूप से सभी दिशा निर्देश देने की शक्ति निहित हो जाती है। जब बहुत से क्षेत्र और धर्म एक देश बनाने के लिए इकट्ठे होते हैं तो लोगों की सामूहिक शक्ति (देश) किसी भी और सभी क्षेत्रीय और धार्मिक शक्तियों से बड़ी हो जाती है, और चूंकि यह प्राकृतिक है इसे पवित्रता के साथ स्वीकृत किया जाना चाहिए।
5. कहते है वेद–पुराण, कुरान, बाइबिल हमारी आत्मा जैसी है और यह भी पक्का है कि हम वेद पुराण कुरान बाइबिल द्वारा ही परिभाशित होते है लेकिन तब भी आने वाले कल हमें जो करना है वह वेद पुराण कुरान बाइबिल में नही है, (वेद हमारी आत्मा, हम वेदों के माँय, कल हमें जो करना, सो वेदों में नाँय।
6. शासन अपने स्वयं के देश में, और बाहर भी अंतर्राष्ट्रीय धार्मिक सम्मेलनों, विचार विमर्शों और समागमों को प्रोत्साहन देगी। हमें नागरिकों की बेहतरी के लिए इनसे निकलने वाले संदेशों के प्रचार–प्रसार को प्रोत्साहन और सहयोग देना चाहिए, एवं वसुधैव कुटुम्बकम की भावना के अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में प्रचार–प्रसार के लिए इनको सहयोग के लिए कहना चाहिए।
7. शासन को हरेक विकासखंड में कम से कम एक अन्नकूट, लंगर या कुरानखानी के सतत् रूप से चलने को प्रोत्साहन देना चाहिए ताकि संतों, सूफियों और निहंगों आदि का सम्मान बना रहे, भीख की तरह भोजन के स्वीकार को रोका जाना चाहिए।
8. देश के हरेक कोने में ऐसे धार्मिक केंद्रों की स्थापना को प्रोत्साहन देना चाहिए, जिनके साथ धार्मिक अध्ययन केंद्र मौजूद हों, और इनमें कम से कम तीन धर्मों जैसे हिन्दू, मुस्लिम और सिक्ख की पूजा पद्धति के लिए व्यवस्थाएं हों। पिछले छब्बीस सै वर्षों मे रिलीजन तलवार से, ताकत से, सत्ता से या चालबाजी के कारण ज्यादा विकसित हुआ, बजाए रिलीजन की आंतरिक आध्यात्मिक भाक्ति के कारण। यातायात एवं इंटरनेट से जुड़े

हुए विश्व में अब धर्म,, धर्म की आंतरिक भाक्ति के कारण ही बढ़ेगा। इसलिए यह जरूरी है कि सभी रिलीजन अपने–अपने रिलीजन की विशोषताए, भिन्नताऍ और दूसरे रिलीजन से तुल्यात्मक दुश्टि में किस तरह महत्पूर्ण है अपने नगर के सभागृह एवं इंटरनेट में प्रदर्शित कराये हैं जिससे कि आगे आने वाली एवं स्वतंत्रता के ख्याल वाली पीढ़ी अपने वैवाहिक साथी के साथ ही अपने रिलीजियस साथी का चुनाव कर सके। रिलीजन के तुल्यात्मक अध्ययन से सभी रिलीजन की मौलिक सुगंध सभी क्षेत्रों में फैल सकेगी।

9. जैसे अमृतसर में स्वर्णमंदिर है वैसे ही स्वर्ण मस्जिद या मंदिर काफी जगह होने चाहिए।

ऐसी अनुभूति है कि धार्मिक केंद्रों पर कम से कम सभी धार्मिक संहिताओं का अध्ययन तो शुरू हो ही। इस बात की शुरूवाती जिम्मेदारी उन लोगों की है, जिन्हें लगता है कि उनका धर्म श्रेष्ठ है और जिन्हें अपने धर्म के क्षय का डर नहीं। ऐसी अनुभूति है कि जो भी कोई देता है, देर–सबेर उसे वापिस मिल ही जाता है। सनातन धर्म (तथा कथित हिन्दू) इसमें पहल कर सकता है, एवं इसे करना होगा (मंदिरों में मूर्ति पूजा, जप स्रोत, निराकार पूजा/नमाज और सूफी एवं संतों के लिए व्यवस्था करनी होगी)।

***

विज्ञान

क) विज्ञान के अंग्रेजी शब्द (साइंस) का उद्‌भव कन्साइंस शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है ''सही और गलत का ज्ञान और समझ''। साइंस शब्द में सही और गलत की समझ को ही विलोपित कर दिया गया है और फलतः अंग्रेजी साइंस सिर्फ जानकारी बनकर रह गया है। यह साइंस काफी हद तक व्यवस्थित है और ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने की कोशिश करती है जैसे कि कब कैसे कहां इत्यादि, लेकिन इसके लिए वह सही और गलत का सवाल नहीं उठाता और इसी कारण हम कहते हैं कि साइंस अंधी है।

इसके विपरीत रूप से, इसके लिए भारत में प्रचलित शब्द विज्ञान, जिसका अर्थ है विशेष ज्ञान, यहां ज्ञान शब्द में ही सही और गलत की समझ निहित है, और यथार्तः, विज्ञान शब्द का अर्थ होता है सही और गलत की विशेष या अनुभव से पैदा हुई समझ। ऐसा कहा जा सकता है जब ज्ञान समझ में बदल जाता है और अनुभव से सिद्ध तब यह विज्ञान हो जाता है, यहां विज्ञानी एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी विशेष तरह की आंखें विकसित हो गई हैं।

यह कहा गया है कि :

''**विज्ञान और वेदांत की परिभाषाएं स्पष्ट हैं, एवं सन्यास और योग वास्तविक सत्य है"।**

ख) तथ्य तो यह है कि हम अगर जीवन में बने हुए विभिन्न संबंधों और अनुभवों पर विचार करें तो हम देख सकते हैं कि अगर मनुष्य के जीवन में दस लाख तरह के आदान–प्रदान होते हैं, तो उनमें से केवल बीस प्रतिशत ही से विज्ञान का संबंध है : इसके परिणाम अस्सी से नब्बे प्रतिशत तब सही आते हैं, और हमारी कल्पना अस्सी प्रतिशत अनुभवों से संबंधित है और इसके परिणाम भी चालीस प्रतिशत सही तो होते ही हैं, जबकि हमारी भीतरी अनुभूति सौ अनुभवों से संबंधित है और इसके भी परिणाम लगभग पैंतीस प्रतिशत ठीक होते हैं। इस तरह दस लाख आदान–प्रदानों में विज्ञान एक दशमलव छः लाख, कल्पना तीन दशमलव दो लाख और भीतरी अनुभूति साढ़े तीन लाख सही उत्तर प्रदान करती है। इस तरह कल्पना और भीतरी अनुभूति से छः लाख सत्तर हजार सही उत्तर प्राप्त कर लेते हैं, जबकि गरीब विज्ञान हमें केवल एक दशमलव छः लाख ही सही उत्तर प्रदान करती है।

विज्ञान कहती है अ, अ है कोई चीज जो आ नहीं है, आ नहीं हो सकती।

ताओ की प्रणाली कहती है कि अ, अ भी है और यह जेड की ओर भी इंगित करता है।

जबकि वेदांत कहता है कि अ, न तो अ है और न ही अ नहीं।

इसमें अ के सारे अर्थ, जैसे अ, अ की तरह, अ प्रथमतः अ और ध्यान के एक रास्ते की तरह शामिल हैं, फिर भी यह कहता है, यह भी नहीं है, और यह भी नहीं है और इस तरह अ के सारे अर्थों को शामिल कर लेने के लिए खुला रहता है।

विज्ञान चेतन है, कल्पना अर्धचेतन और भीतरी अनुभूति अचेतन, और हम सबको मालूम है कि किस तरह से ये क्षेत्र एक के बाद एक विराट होते चले जाते है।चूंकि अचेतन की परत प्रकृति के साथ स्पंदित होती है। इसलिए ही इसमें सवाल उठते हैं और इसके साथ ही यह किसी भी व्यक्ति को अधिकतम सही उत्तर प्रदान करती है। साइंस में हुए सारे विकास या तो भीतरी अनुभूति के परिणाम हैं या कल्पना के और इसी लिए साइंस को उचित से ज्यादा स्थान देने की आवश्यकता नहीं है।

1. प्रार्थनाएं फिर चाहे वे सुपर कम्प्यूटर प्रणालियों से ही क्यों न निकलें, प्रकृति के साथ पूरे तादात्म्य में होती हैं, और इसीलिए यह जरूरी नहीं है कि हम उनकी आलोचनाएं ही करते रहें। हमें उन्हें स्वीकृति देनी होगी और समर्थन।
2. व्यक्तियों की कल्पना और उनकी भीतरी अनुभूति को महत्व देने के रास्ते हमें विकसित करने होंगे।
3. साइंस के स्थान पर विज्ञान शब्द के प्रयोग को हमें महत्व देना होगा, ताकि साइंस के कार्यकलाप में सही और गलत का महत्व बना रहे।
4. विज्ञान भैरव तंत्र श्रेष्ठतम है, विज्ञान के बाद ज्योतिष आती है और इसके बाद चेतन विज्ञान, और इन्हें इसी क्रम में महत्व और इनकी अभिव्यक्ति का रास्ता देना उचित है। ऐसा कहा जाता है कि बुद्ध को विज्ञान भैरवतंत्र में वर्णित एक सौ बारह तरीकों में से प्रथम तरीके से निर्वाण प्राप्त हुआ।

   वर्तमान विज्ञान छोटे से छोटे के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानने के लिए और इस तरह अंतः ''शून्यत'' को जानने के लिए सक्रिय है।

   शून्य की खोज के बाद इसके साथ–साथ यह भी खोजा गया कि दशमलव अभिव्यक्ति में एक के पहले शून्य रखने से एक का मूल्य कम हो जाता है, जबकि एक के बाद शून्य रखने से इसका मूल्य बढ़ जाता है, और अतः शोधकर्ता होने का अभिमान पालने की जगह, शोधकर्ता के लिए उचित है कि वह अपने शोध के परिणामों पर ज्यादा ध्यान रखे। चूंकि शोध और शोधकर्ता दोनों मनुष्य मात्र के लिए है अतः न तो शोध के किसी क्षेत्र में शर्म की आवश्यकता है और न गर्व की।

***

जीवन और मृत्यु

श्वेतकेतु से उसके पिता उद्दालक ने पूछा '' इतने छोटे से बीज में से बरगद का इतना बड़ा पेड़ कैसे निकल आया '' श्वेतकेतु ने कहा, ''मुझे पक्का तो नहीं मालूम लेकिन इस बीज में जीवन है जिससे यह पेड़ बढ़ता है ''। उद्दालक ने फिर श्वेतकेतु से कहा कि अगर ऐसा है तो इस बीज को तोड़ें और जीवन को खोजें ''। उद्दालक के आदेश पर बीज को लगातार परमाणु स्तर तोड़ा जाता रहा, जब तक कि श्वेतकेतु ने कहा कि '' इसमें तो कुछ भी नहीं है, जिसे जीवन कहा जा सके ''। श्वेतकेतु का उत्तर सुनकर उसके पिता उद्दालक ने कहा तुम फिर से गुरुकुल पढ़ने के लिए जाओ, ताकि तुम जीवन और मृत्यु उस एक सत्य ब्रह्म (अल्लाह) का अनुभव कर सको और ब्राह्मण बन सको।

''जीवन बीज में मौजूद इस शून्यत से आता है, इस शून्यत से अ–मन का उद्भव होता है, अ–मन से विस्मृत चीजों का उद्भव होता है, इस विस्मृत से स्मृति पैदा होती है, और यह स्मृति पूरी तरह से विकसित हो जाने के बाद फिर से शुद्ध अस्तित्व के जागृत शून्य में लीन हो जाती है, फिर यह चक्र दोबारा चल भी सकता है और नहीं भी, दोनों की संभावनाएं हैं। संभावनाएं वास्तविकता में बदल भी सकती हैं और नहीं भी : हो सकता है कि करोड़ों साल तक कुछ भी न हो, तब भी जबकि सारी संभावनाएं मौजूद हों, और फिर भी कुछ भी होना संभव हो सकता है।

गर्भ में बीज के आने के बाद संभावनाएं अपने वास्तविक होने की ओर पहला कदम बढ़ाती हैं, और हम प्रतीक्षा करते हैं, इस अमन की स्थिति से विस्मृति का जन्म होता है और हमें मालूम है कि हमें अपने बचपन के दो–तीन साल के पहले की शायद ही कोई याद हो, इस समय हम एक सम्मोहन सी अवस्था में रहते हैं, इस विस्मृति की अवस्था से स्मृति का जन्म होता है, और उसके बाद हमें अपने जीवन की घटनाएं याद रहती हैं।

अगर हम ध्यान की प्रक्रियाओं को देखें तो वे ठीक इससे उल्टी दिशा में चलती हैं, और जिन्होंने भी ध्यान के प्रयोग किए हैं, उन्होंने एक–एक करके अपने भूत की घटनाओं का पुनः स्मरण कर अंततः अपने आपको शुद्ध अस्तित्व की एक तरंग की रूप में पाया है। जो ध्यान कर सकते हैं, वे ध्यान करते –करते अपने खुद, सारे समाज, और प्रकृति के विकास को उसके यथार्थ रूप में देख सकते हैं। फिर हरेक किसी में ऊर्जा का अपना स्तर है, अपनी तरंगति है जिसे हमें योनि कहते हैं और आयाम जिसे हम उसका यथार्थ गर्भ कहते हैं। वे जो सारी प्रकृति के साथ स्पंदित होते हैं, अपनी इच्छा से आ जा सकते हैं। ऐसे महापुरूष सामान्य तरीके से जीवन में आते है, लेकिन जीवन से विदा एक उत्सव के, एक समाधी, जल समाधी या फिर अपने शरीर में परमाणु विखण्डन से उत्पन्न ऊर्जा पैदा कर प्रकाशित पुंज की तरह।

हरेक धर्म के ग्रंथों में यह लिखा है कि नवजात के आने पर इसकी खुशी कैसे मनाई जानी है, लेकिन बहुत ही कम जगहों पर यह उल्लेख है कि मृतकों के साथ क्या किया जाए।

रमण महर्षि ने कहा है कि यह विधान है कि जो ब्रह्मलीन हो गए हों उनको समाधि दी जानी चाहिए, और जो अभी कहीं पहुंच नहीं पाए हैं उनको भस्म कर उनकी खोपड़ी में छेद कर दिया जाना चाहिए ताकि वे अपनी यात्रा पूरी करने के लिए कहीं भी जाने के लिए स्वतंत्र रहें।

भस्म करना और खोपड़ी में छेद करना, दफ्न कर देना, जीवों के लिए शरीर छोड़ देना ताकि इस शरीर से कुछ हित हो या शरीर को नदियों या समुद्र में बहा देना सनातन रीतियां हैं। लेकिन जब ऊर्जा का स्पंदन जिसे हम आत्मा कहते हैं ही बाहर निकल गई हो तो फिर सड़–गल कर मिट्टी हो ही जाने वाले इस शरीर का क्या होता है इसका कोई खास महत्व नहीं हैं। वे संस्कृतियां जो किसी अंतिम उपलब्धि की धारण के साथ शुरू हुईं उन्होंने समाधियां बनाने और पिरामिड बनाने का रास्ता पकड़ा, और जिन संस्कृतियों ने ऐसा देखा कि जीवन एक लगातार यात्रा है उन्होंने जलाने की प्रक्रिया को महत्व दिया, और जो जीवहित की धारण से चलते चले आए उन्होंने मछलियों या पक्षियों को खिलाना या चीर–फाड़ कर परीक्षण के लिए दान देना ठीक समझा।

पहले विचार के मानने वाले आमतौर पर एक जीवन की अवधारणा को मानते रहे हैं, और दूसरे विचार को मानने वाले अनेक जीवनों की अवधारणा को और इसे वे तरह–तरह के नाम देते चले आए हैं जैसे–लीला या माया और कभी–कभी तो यह भी कहते हैं ''नींद आखिरकार छोटी से मृत्यु ही है और मृत्यु एक बड़ी नींद ''। वे यह भी कहते हैं कि अगर थकान थोड़ी सी हो तो नींद से काम चल जाता है, लेकिन अगर थकान बहुत ज्यादा गहरी हो तो फिर केवल मौत काम करती है, और लंबी नींद के बाद कोई फिर से एक नई चमक के साथ जीवन शुरू कर सकता है।

वैज्ञानिक निरीक्षणों में इस बात ने इस बात की पुष्टि की है कि न तो पदार्थ नष्ट हो सकता है और न ऊर्जा, ये सिर्फ रूप बदलते हैं, और अगर ऐसा है तो कोई भी कैसे नष्ट हो सकता है, हम भी केवल रूप ही बदलते हैं।

कार्बन/कोयला वह चाहे सिगरेट में, सिगड़ी में या शमशान घाट में जले, जलने पर कोयला कार्बन डाईऑक्साइड और हवा के मिश्रण से हवा में परिवर्तित हो जाता है, जो फिर वनस्पत्ति द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है एवं ऑक्सीजन निकलने के बाद बचा कार्बन फल–फूल, लकड़ी में परिवर्तित हो जाता है जो जीवित प्राणियों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है और इस तरह कार्बन (कोयले) का चक्र चलता है।

केवल बात इतनी है कि हमें नहीं पता या हम इस लायक नहीं हैं कि जान सके कि यह कार्बन (कोयले) का कण जलने के बाद किस तह प्रगट होगा ।

असंख्यों रास्तों और तरीकों से यही पाया गया है कि केवल आनंद ही सारे जीवन की एकमात्र तलाश है, तो फिर क्या फर्क पड़ता है कि किसका कैसे अंतिम संस्कार किया गया, तब केवल

इतना महत्वपूर्ण है कि क्या हमने लयबद्ध और आनंदपूर्ण जीवन जिया या नहीं।

जीवन और मृत्यु के इस परिदृश्य में निवेदन है कि :

1. मृतकों के लिए हर वर्ष संस्कार करने से बेहतर है जन्म का उत्सव मनाया जाए। शादी की सालगिरहों को हम वैसे ही मनाए जैसे कि विवाह के दिन को।
2. गाड़ना, जलाना या दान देना यह तो व्यक्ति के परिवार का ही निर्णय है। फिर भी मृतक के शोक संतृप्त परिवार के सदस्यों को समुचित (तीन दिन) का अवकाश दिया जाना चाहिए, ताकि वे मृत आत्मा के लिए किए जाने वाले अपने दायित्वों का संपादन कर सकें।
3. चूंकि पूरा जीवन ही उत्तसव है इसलिए मृत्यु भी। लोगों को आसन्न मृत्यु के लक्षणों की जानकारी दिया जाना जरूरी है। आसन्न मृत्यु की परिस्थिति में व्यक्ति को उसकी इच्छा से मरने की परिस्थिति दी जानी उचित है, सिर्फ व्यर्थ उपचार के नाम पर व्यक्तियों और उसके संबंधियों को परेशान करना और उनका धन ले लेने का प्रयास, चिकित्सा समुदाय के लिए कलंक।
4. आंख या शरीर के किसी अन्य अंग को दान देने वाले व्यक्ति के लिए प्रक्रियाओं को आसान बनाना, उसकी सद्इच्छाओं का सम्मान करना और उसके परिवार को कुछ आर्थिक मदद देना आवश्यक है। मृत्यु याचक (दया–हत्या) का सम्मान बेहद जरूरी है ' हाराकिरी और आत्महत्या करने में असफल हो गए लोगों पर आपराधिक प्रकरण दर्ज करना उचित नहीं है, अच्छा हो अगर उनसे सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करें।

आज जिस तरह का यांत्रिक जीवन हम जीते हैं, उसके बीच में जीवन का उत्सव मनाने के क्षण ज्यादा होने चाहिए। जीवन जो आज है किसी भी और चीज की तुलना में ज्यादा मूल्यवान है।

***

पवित्र गाय

महर्षि दुर्वाशा ने गाय को माँ का दर्जा दिया था, एवं नंदी, शिव एवं शक्ति की पूजा में मुख्य अग्रणी है और इसीलिए नंदी (सांड) को शिव–लिंग के साथ ही पूजा करने का हर मंदिर में स्थान/दर्जा दिया गया है।

जहाँ तक पवित्र गाय का सवाल है दो विचित्र चीजें दिखाई दी हैं :

1. गाय को माता की तरह सम्मान किया जाता है लेकिन उसके बछड़े को खेतों में जोतने के लिए बधिया बना दिया जाता है। गाय के बछड़ों में से बहुत कम ही स्वाभाविक रूप से, बिना बधिया किए हुए, सांडों की तरह जीते हैं, ताकि वंश चल सके। बहुत बार जब गाय दूध देना बंद कर देती है, तो यही गाय अब लोगों के लिए अनुपयोगी हो जाती है वे इसे छोड़ आते हैं या कसाइयों के हाथों बेच देते हैं, एशिया के अधिकांश भागों में ऐसा ही है, अगर पूरी दुनिया में नहीं तो।
2. बहुत से लोग ऐसे भी हैं, जिनके लिए गाय पवित्र नहीं, वे भी गाय की दूध देने तक सेवा करते हैं, और जब गाय दूध देना बंद कर देती है, वे गाय को ही खा जाते हैं। भारत में कुछ ऐसी प्रजातियॉ है जो बकरी का दूध न दुहते हैं न पीते हैं, सिर्फ इसलिए कि वह बकरे का माँस खाते हैं, उनका कहता है अगर वह बकरी का दूध पियेंगे तो बकरी मॉ के समकक्ष हो जायेगी और फिर बकरी का मॉस खाना मॉ का मॉस खाना जैसा होगा।

पहला किस्सा तो पाखंडियों का है, और दूसरा उन लोगों जिन्हें मतलब के अलावा कुछ समझ में नहीं आता।

1.1 अगर कोई इस विषय में गहरे जाने का खतरा उठाए, तो उसे यह निष्कर्ष निकालने का डर निश्चित ही सताएगा कि पहले प्रकरण में पूरा समाज पाखंडियों और सम्मोहित लोगों का समाज है, जो आत्मसम्मोहन की नींद में चलते चले जाते हैं, इसके पुरुष फिर स्वयं ही जुते हुए बैलों की तरह होंगे, और इस समाज के शीर्षस्थ लोगों का आम लोगों के ऊपर कोई वास्तविक नैतिक प्रभाव न होगा, और इसके बुजुर्गों और महिलाओं का सम्मान तो होगा, लेकिन यह सम्मान उन्होंने लगातार भय में रहकर ही प्राप्त किया होगा। ऐसे समाज के बच्चों का लालन–पालन अप्राकृतिक और कृतिसता से भरा होगा।

पवित्र गाय–जिसे हम माता कहते हैं, उसका श्राप आखिरकार किसी न किसी रूप में तो ऐसे समाज का पीछा तो करेगा ही–वह चाहे हिन्दू हो जैन, बौद्ध या सिख या देश का मुश्लिम एवं ईसाईं समाज हो या और कोई भी ।

2.1 और एक ऐसा समाज जो दूसरे प्रकरण की तरह व्यवहार कर रहा है, उसमें

बुजुर्ग पीढ़ी के लिए कोई ज्यादा सम्मान न होगा और नई पीढ़ी के प्रति और भी कम। इसमें तो केवल उस आदमी का सम्मान होगा जो कि पैसा कमाकर लाता है, और यह सम्मान ही उसकी कमाई के हिसाब से घटता–बढ़ता रहेगा। यहां अगर हम ध्यान से देखें तो कुछ निराशा, असहायता और थोड़ी बहुत अंधी हिंसक प्रवृत्ति है। इस समाज में निराश बुजुर्ग, किंकर्तव्यविमूढ़ युवक होंगे, पूरा समाज युवकों पर केंद्रित रहेगा, और महिलाएं उपयोग की वस्तु, एक ऐसा समाज जहां महिलाओं को केवल उनके आकर्षक रहने तक ध्यान रखा जाएगा, और महिलाएं भी केवल अपने आकर्षण को बनाए रखने के लिए अपने शरीरों, खाने और कपड़ों का ध्यान रखेगी।

निश्चित ही सारी दुनिया से यही निवेदन किया जा सकता है, कि हम देखें, कि हम वास्तव में करना क्या चाहते हैं, इससे पहले कि सिर्फ आरोप गढ़ते घूमें।

अ) जो गाय को अपनी मां कहते हैं उन्हें बिल्कुल साफ कर देना चाहिए, कि वे अपनी गाय माता की मृत्यु के बाद क्या करेंगे, क्या वे उसके लिए अंतिम संस्कार करने वाले हैं, क्या वे यह सुनिश्चित करने के लिए तैयार हैं कि गाय के चमड़े का प्रयोग न किया जाएगा, और कि उसका दूध केवल तभी प्रयोग में लाया जाएगा, जबकि बछड़े का पेट भर गया हो।

आ) गाय के पवित्र होने के सवाल को केवल भावुकता बनाना कोई अच्छी बात नहीं, यह विषय ज्यादा व्यवहारिक होना चाहिए, आखिर हम भी तो हर जगह अपने समाज में व्यवहारिकता की आशा करते हैं। और हम भी तो यह कहते नहीं थकते कि हमारे समाज, राज्य और राष्ट्र को व्यवहारिक काम की जरूरत है, सिर्फ भावनाओं की या नारों की नहीं।

इ) बछड़ों को बधिया बनाना बिल्कुल जरूरी नहीं, देश के ही कई भागों में सांड भी खेती के काम में सहयोग देते हैं। इसी तरह के दूसरे जानवरो घोड़ों, भैसों और गधों को तो कोई काम लेने के लिए बधिया बनाना जरूरी नहीं मानता।

ई) गोमांस खाने वाले समाजों के नेताओं को यह तय करना चाहिए कि क्या वे परस्पर आपसी समझदारी से चलने वाला समाज चाहते हैं, या फिर एक मतलबी समाज, और वे ही इसका निर्णय करें। पूरे भारत के लिए हमें विषयों को उनके सारे पक्षों में विचार विमर्श के लिए धार्मिक नेताओं और बुद्धिजीवियों के सामने रखना चाहिए, ताकि अमल के लिए कुछ तो निर्णय लिए जा सकें। यहां दो चीजों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। (अ). जीव, जीवों को भोजन है, और (ब). भारत की कुछ प्रणालियों में गाय की वसा और यहां तक की मानव खोपड़ी का भी चिकित्सा के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

उ) जब हम गाय का ध्यान रखने का प्रचार–प्रसार करें तो यह संदेश निश्चित ही जाना चाहिए, कि गाय या गाय से जुड़ी हुई चीजों की उपस्थिति मात्र हमें स्वास्थ्य और समृद्धि प्रदान करती है। जहां तक गोवंश की उपयोगिता का सवाल है यह तो आसानी से देखा जा सकता है कि अगर एक किसान के पास दो गायें और उनकी संतानें हैं तो उसके

स्वयं के परिवार के लिए पर्याप्त मात्रा में दूध, गोबर (कंडे और गैस), खाद, गांव के भीतर यातायात की व्यवस्था और चिकित्सा के लिए दवाइयां, सभी कुछ मौजूद है।

ऊ) रासायनिक खादों, दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिए इंजेक्शनों को अनावश्यक प्रोत्साहन देना ठीक नहीं, इनसे फसलों, दूध और दूध के उत्पादों की गुणवत्ता गिरती है। गायों को सम्मान देने के साथ हमें दूध देने वाले अन्य जानवरों जैसे भैंस, बकरी, और यॉक के बारे में एवं उनके पुरूषत्व लिए हुए बच्चों के साथ क्या व्यवहार रखना है इस पर भी चर्चा करनी होगी।

ए) डेनमार्क में अभी हाल में किए गए प्रयोग, जिनमें स्त्रियों के दूध में मौजूद डी.एन.ए. के इंजेक्शन गायों को इस आशा में दिये गए कि, गायों का दूध मनुष्य स्त्रियों के दुध के समान होगा, स्वागत योग्य हैं। इससे गायों के दूध का सम्मान बढ़ेगा।

ऐ) स्त्रियों, बकरियों, भैंसों जैसा दूध देने के लिए क्लोनिंग या गायों को दिए जाने वाले डी. एन.ए. इजेक्शन जैसी प्रक्रियाओं से ज्यादा बेहतर दूध देने वाली नई नस्लें पैदा हो सकती हैं। अगर हम विकास के पिछले चार–पांच हजार सालों का क्रम देखें तो हम यह पाएंगें कि इस तरह की नई नस्लें केवल एक जीवनकाल तक ही बचती हैं और उनके संतति दर संतति आगे चलते चले जाने की संभावना कम ही होती है। इस तरह के संकर चाहे वे खच्चर हों, बिना बीज के पपीते या कुछ और, अभी तक तो किसी नई नस्ल को उसकी प्रजनन क्षमताओं सहित जन्म देने में सक्षम नहीं हुए। इनको बड़े स्तर पर प्रोत्साहित करने की जरूरत नहीं।

ओ) गायों और जानवरों को स्वतंत्रता प्रदान करना, स्वस्थ आनंदमय और पवित्र वातावरण के लिए, तात्कालिक जरूरत है, धरती मनुष्यों की जायदाद नहीं है।

जो राश्ट्र कमजोरों की रक्षा और बुद्धिमानों का सम्मान करता है, केवल ऐसे शासन ही वास्तव में लचीले और कल्याणकारी और शक्तिशाली होते है और अपनी सीमाओं की सुरक्षाा कर पाते हैं। गाय को सम्मान देने से यह भी पता पड़ता है कि आखिर शासन है किस तरह का। जहॉ साड़ो को पैदा किया जाता है वहॉ गायें सुरक्षित रहती है, जहॉ बछड़ो को बधिया बनाया जायेगा वहॉ गायें असम्मानित एवं मारी जायेंगी।

***

ब्रह्मचारी, संत साधु और ऋषि

जो दूसरों के दिमाग में निवास करते हैं वे ज्यादा जीते है, और जो लोगों के दिल में रहते हैं वह थोड़ा ओर ज्यादा, और वह जो लोगों के दिल–दिमाग में रहते है वह सबसे ज्यादा जीते हैं।ऋषि, मनुष्यों के हृदयों/दिल और मस्तिष्कों/दिमाग में रहते हैं, इसीलिए वे युगों के पार भी रहे हैं, चूंकि वे लोगों के दिल दिमाग में रहते हैं इसलिए उन्हें अपनी जगह से कहीं और जाने की जरूरत बहुत कम पड़ती है, लोग ही उनके पास जाते रहे हैं। ऋषि लोगों को देश और धर्म की सीमाओं के पार जाने के छूट देते हैं, और इसलिए वे किसी विरासत, जाति, धर्म या नस्ल के समूह मात्र के नहीं होते। चूंकि ऋषि ऐसे हैं– इसलिए वे मेरे प्रणाम के हकदार हैं। जब ऋषि कहते हैं कि ''मैं ब्रह्म हूं'' तब साथ–साथ वे यह भी कहते हैं कि ''त्वम असि'', और तुम भी वही। ऋषि स्वतंत्रता प्रदान करते हैं, अनुयायी नहीं बनाते।

गुरु जो अपने छात्रों को स्वतंत्रता प्रदान करते हैं और उन्हें अपना अनुयायी नहीं बनाते, ऋषि हो जाते हैं, और बाकी केवल शिक्षक या अध्यापक, जिन्हें एक या कुछ अधिक क्षेत्रों की जानकारी है, और शिक्षण की दक्षता।

साधु सामान्यतः वह है जिसने अपने भीतर कुछ प्राप्त कर लिया है, कुछ साध लिया है चाहे वह कम उम्र ही क्यों न हो साधु एक से अधिक कलाओं के शिक्षक होते हैं। ये साधु अपनी साधना के प्रतिफलों को दिखाने के लिए विचरण करते हैं, ताकि जनसामान्य को भी अपनी सार्मथ्य को बोध हो। सामान्यतः जो छियानवे वर्ष की आयु पार करने के बाद सामाजिक कार्य में लगे हों या जिन्होंने द्विज का स्तर पर लिया साधु कहलाता है।

जबकि संत वे हैं जिनका अंत अच्छा है, जैसा कि हम कहते हैं ''अंत भला तो सब भला'', धीरे–धीरे ये लोग निरंतरता से सुपरिभाषित और परिष्कृत होते चले जाते हैं, ये भी यहां–वहां जाते हैं अपने जीवन और इसके विभिन्न आयामों के अनुभव को अभिव्यक्त करने या अनुभवों का आदान–प्रदान करने के लिए, ताकि जनता का कल्याण हो।

दमन से बने हुए ब्रह्मचारी– अगर ठीक कहें तो पाप है। अपने माता–पिता के प्रति असम्मान, भावी पीढ़ियों के प्रति विश्वासहीनता, इन लोगों को चुपचाप और कठोर दंड की प्राप्ति होती है। अगर कुंडलनी शक्ति के जागरण से ब्रह्मचर्य फलित हुआ हो तो, ये लोग सीधे ऋषि के स्तर को प्राप्त कर लेते हैं। उनकी उपस्थिति मात्र से बनने वाले माहौल को देखकर हम उनकी पहचान कर सकते हैं कि वह फर्जी ब्रह्मचारी है या वास्तव में (कुडलिनी) जाग्रत अवस्था के।

1. लोग हांलाकि अपने–अपने विधिविधानों का पालन करते हैं, फिर भी लोगों को अपने स्वयं के धर्म के सदस्यों से और अन्य धर्मों के सदस्यों से, विचार विमर्श कर समाज और शासन के लिए नए आचार व्यवहारों हेतु परामर्श देना आवश्यक हैं, ताकि पवित्र आत्माओं का सम्मान बना रहे।
2. सत्ता के खेल में, जो पहला पाठ पढ़ाया जाता है, वह यह है कि चेहरे की भावभंगिमाएं बदलकर अपनी वास्तविक इच्छाओं को छुपाओ, ताकि जनता का ध्यान आकर्षित या

विकर्षित किया जा सके, लेकिन फिर भी आज तक इस तरह का कोई भी नेता अपनी आंखों की हरकत को इस तरह बदलने में कामयाब नहीं हुआ कि देखने वाले की आंख में धूल झोंक सके।

भोगी, रोगी, योगी, मायावी, भैरवी जीवन के विकास के प्राकृतिक आयाम है और यह व्यक्तियों की धारणा, ध्यान एवं कर्म पर निर्भर करता है कि उसकी मंजिल क्या है और वह वहाँ तक पहुँच सकता है या नहीं।

मायावी योग के सहयोग से शारीरिक सुख के लिए, जबकि भैरवी एव मनोयोगी मायावी की रोक को हटाकर धर्म का मार्ग प्रशस्त करने के लिए कार्य करता है। **आंखों में स्थिर प्रेमपूर्ण भाव साधु, संत के मार्ग से ऋषियों की ओर यात्रा का संकेत है।**

***

परिवार (फैमिली)

(क) अंग्रेजी में परिभाशित एवं अधिकांश पशिचमी देशों में प्रचलित पिता, माता एवं उनके जवान बच्चे या माता, पिता एवं उनके अविवाहित पुत्र, पुत्री ही एक फैमिली कहलाते है।

(ख) भारत में कहा जाता है – खून के रिशते (पिता, दादा, पत्र एवं पुत्री) खून का रिशता बनाने वाले सगोत्र (दादी, माँ, पत्नी एवं बहू) की चार पूर्वज पीढियाँ एवं तीन अग्रज पीढियाँ जिसे एक व्यक्ति अपने जीवनकाल में देख सकता है वह उसका परिवार कहलाता है। परिवार आश्रम व्यवस्था में अच्छी तरह से परिभाशित है।

आश्रम व्यवस्था में चार आश्रम प्रत्येक चौबीस वर्श का एवं मनुश्य की आयु चारों आश्रमों को जीते हुए मानी गयी है, और इस तरह एक सौ वर्श में एक व्यक्ति अपने जितने सगोत्र खून के रि ते के व्यक्तियों को देख सकता है वह उसका परिवार कहलाता है। इस तरह से सात पीढियाँ मिलकर मेरा परिवार बनाती है या मेरा परिवार कहलाता है।

ऐसा कहा जाता है यह सब व्यक्ति एक ही तरह के जींस (डी एन ए) रखते हैं एवं आने वाली पीढियों को जींस द्वारा प्रभावित करते है।

(ग) आश्रम व्यवस्था में कहते है कि जब मैं जन्म लूँगा तब मेरे माता पिता गृहस्थ आश्रम में मेरे दादा–दादी वानप्रस्थ आश्रम में, मेरे परदादा सन्यास आश्रम में और हो सकता है मेरे पिता के परदादा भी सन्यास आश्रम में हों या संत हो गये हों फिर जब मैं बड़ा होउँगा एवं गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करुँगा, तब मेरी पत्नी भी मेरे परिवार का हिस्सा बन जायेगी, फिर मेरे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश के समय तक मेरी पुत्र वधु भी मेरे परिवार का हिस्सा होगी और इसके बाद मेरे सन्यास आश्रम के समय मेरे पोते की पत्नी भी मेरे परिवार का हिस्सा होगी, और इसके बाद मुझे इन सब से सन्यास ले लेना चाहिए। इस तरह पूर्वजो की चार पीढियाँ एवं अग्रेजों की तीन पीढियाँ मेरे सज्ञान में रहेगी और मेरे लिए परिवार का हिस्सा होगी।

इसके साथ ही वह रिशते जो मन वचन एवं कर्म से मेरे द्वारा या मेरे परिवार द्वारा बनाये गये जैसे बहन, बेटी, बेटा वह भी मेरे परिवार का हिस्सा माना जायेगा।

(घ) भारत में कहा जाता है कि मेरी दादी, माँ एवं पत्नी के पैतृक घर के सदस्य मेरा कुटुम्ब (पिंड) कहलायेगा और इस तरह हम देखेंगे कि हममें से हर कोई किसी न किसी तरह से एक रि ते से जुड़ा हुआ है– और इसी समझ से वसुधैव कुटुम्वकम (सारी दुनिया ही रि तेदार है) की भावना का विकास हुआ।

(ड़) उपरोक्त बातों को अगर देखें तो यह कहा जा सकता कि मेरा भावनात्मक लगाव एवं व्यवहार इन सभी पारिवारिक व्यक्तियों को आदर एवं प्यार से देखने का रहेगा और फिर मेरी यह नैतिक जिम्मेदारी होगी कि मै इन सबकी देखभाल प्यार से करु एवं जरुरत पडने पर जान की बाजी लगाने से भी न चूकूँ, (जान लेने या जान देने के लिए धर्म क्या कहता है इसका ध्यान रखना आव यक है)

इसके अलावा निम्नलिखित प्रस्तुत है–

1. समाज जहाँ दो बच्चों का होना चलन में है और जहाँ सुरक्षा को मानकर नहीं चला जाता है वरन भाारीरिक एवं भौगोलिक, आर्थिक, मानसिक, भावनात्मक और संभव हो तो अध्यात्मिक सुरक्षाओं का पूरा ख्याल रखा जाता है वहाँ परिवार जैसा उपर बताया वैसा होता है और अपने सभी सदस्यों/ हिस्सेदारों को स्वस्थय् सुखी एवं पवित्र जीवन प्रदान करता है।

   दो बच्चों के चलन के बाद प्रत्येक नये बच्चे के बढ़ने से एक पीढ़ी भुला दी जाती है। सुरक्षा में खामियाँ या ढीलापन से बहुत सारी पीढ़ियाँ एक साथ ही खत्म हो जाती हैं।

2. ऊपर बताया गया परिवार बढोतरी एवं विकास की अंतिम सीमा है वहीं फैमिली बढोतरी एवं विकास का पहला चरण है, इस पहले चरण फैमिली के पहले अराजकता/गुलामी/घुमक्कड़पन की अवस्थायें ही आती है।

   परिवार का पूरा विचार तभी फलीभूत होगा जब पूरी दुनिया एक होगी और तब तक हमें परिवार के नाम पर तीन चार पीढियों से ही संतोश करना होगा।

3. वर्तमान परिस्थिति में जब सरकारें बुरी तरह असफल हो रही है, यह जनता एवं उनके धार्मिक संस्थानों की जिम्मेदारी बनती है कि वह अपने समाज में दो बच्चों का चलन प्रोत्साहित करे जिससे वर्तमान के बुजुर्ग और फिर स्वयं की बुजुर्गी की जिंदगी अच्छे से बीत सके।

4. हिन्दु नियम एवं मुस्लिम पर्सनल लाँ में पुनरीक्षण एवं तत्प चात बदलाव की जरुरत है। आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था में अनुसंधान एवं विकास की जरुरत है और फिर इसके परिणामों को सामाजिक प्रशाासनिक एवं न्यायिक व्यवस्था में लागू करने की आव यकता है।

   परिवार – परम्परा रीति व रिवाज परिवार की अवधारण का विकास परंपरा, रीति व रिवाज के अनुसरण के लिए किया गया , जिससे हम हमारे बुजुर्ग और हमारी आने वाली पीढ़ियाँ एक स्वस्थ खुशाहाल एवं पवित्र जिंदगी जी सकें।

***

नस्ल

कोई भी, जिसमें थोड़ी सी भी बुद्धि है, यह देख ही सकता है कि काले और गोरे के मिलने से बीच के रंग बनते हैं।

दुनियाभर में मुख्यतः तीन ही किस्म की नस्लें हैं, काली, गोरी और गेहुएं रंग की। अगर हम उन देशों को देखें जहां बहुत सी नस्ले साथ–साथ रहती रही हैं, तो हम गेहुएं रंग की उत्पत्ति को आसानी से समझ सकते हैं। विभिन्न कारणों से सैकड़ों, हजारों सालों में नस्लों के सम्मिलन से बीच के रंग वाली नस्लें खड़ी होती हैं जो अधिकांशतः मनुष्य के नियंत्रण के बाहर हैं। इन नस्लों की उत्पत्ति के महत्व को हम टेलीविजन और फिल्मों के कुछ खास नायकों और गायकों के रंग को देखकर समझ सकते हैं।

मिश्रित नस्ल एवं मिश्रित रंग के पूर्वी और कुछ पश्चिमी देशों जैसे भारत, चीन, ब्राजील और मैक्सिको वालों को स्वयं पर गर्व करने की जरूरत नहीं है, हांलाकि इनकी मजबूत त्वचा इन्हें कैंसरों और त्वचा की बीमारियों (जो सफेदपोशों में आम है) से जरूर बचाती है, और इसमें वे बाकी सब नस्लों से बेहतर है। यह सिर्फ ईश्वर की अनुकंपा है।

भारत में हमेशा ही श्रीकृष्ण के श्याम रंग की पूजा हुई है और दूसरे भी आनेवाले वक्त में इसी की पूजा करने वाले हैं। समुद्र तटों और मरुस्थलों के गर्म–सर्द मौसम से पैदा हुआ साफ रंग चलता ही रहेगा।

हम दुनिया की नस्लों के पास आने की स्वाभाविक प्रक्रिया को ईश्वर की इच्छा की तरह ही लेंगे हम इस धारणा को कि गोरे राज करने के लिए (व्हाइट डवार्फ कांसेप्ट) भेजे गये है, हटायेंगे, **केवल वे ही ऊपर जाते हैं, सबसे ऊपर तक, जिनकी जड़ें ज्यादा गहरी होती हैं।**

***

बुजुर्ग और बुद्धिमान (बुजुर्गों में से बुद्धिमान)

सामान्यतः गतिशील जीवन की जड़/स्थिर परिभाषाएं दी जाती हैं, कैसे एक जड़/स्थिर परिभाशा, जीवन के गतिशीलता को दर्शायेगी या जीवन की गतिशीलता में ठीक बैठेगी?

गतिशील जीवन को तो गतिशील परिभाषा से ही स्पष्ट किया जा सकता है। और शायद निम्नलिखित दो तरीकों से यह दर्शायी जा सकती है!

अ. जो विकासवाद के सिद्धांत और व्यवहार में विश्वास करते हैं, उनके लिए मानवीय मस्तिष्क अपने भौतिक आकार में निरंतर बढ़ रहा है और अपनी कार्य क्षमताओं में भी। उनके लिए विकास एक पीढ़ी का मामला नहीं है, यह पीढ़ी दर पीढ़ी चलता चला जाता है। हरेक बच्चा अपने बाप के कंधे पर बैठकर दुनिया को देखता है, और इसीलिए उसे दुनिया दूर तक दिखाई देती है। नई पीढ़ी वहां से शुरू करती है, जहां पुरानी रुकी थी, और इस तरह पुरानी पीढ़ी के अनुभवों का उसे पूरा फायदा मिलता है। यहॉ विकास निम्न स्वरूप लेता है।

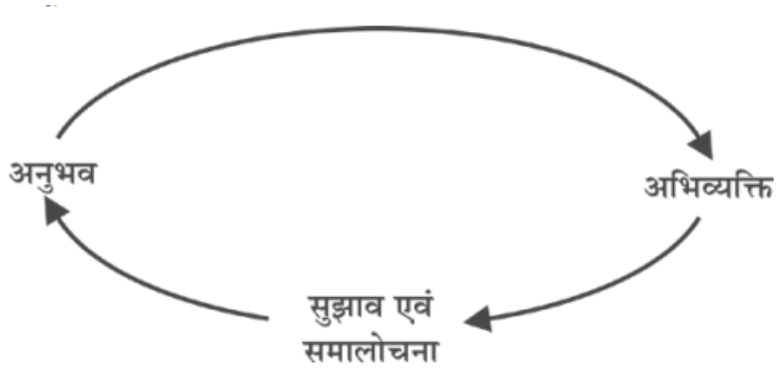

पुरानी पीढ़ी ने जितनी यात्रा पूरी कर ली हो, बच्चों को उतना ही आगे जाने का अवसर मिल सकता है। हरेक एक नई खोज पुरानी के आधार पर खड़ी है इसलिए बिल्कुल नई तो वह हो ही नई सकती। अपनी हरेक वर्तमान सफलता के लिए यहां तक कि अपनी जिंदगी के लिए भी, हम पुराने लोगों के ऋणी हैं। हमें अपने माता–पिताओं और समाज के ऋण चुकाने ही होंगे।

इस सिद्धांत का प्रवक्ता कहता है '' मनुष्य विकास की सारी प्रक्रियाओं का फल है, और मानवता इस प्रक्रिया का भी विकास '', इस तरह इस फल और उसके बीज में ही सारा विकास निहित है।

ब. ऋषि और दृष्टा अपने गुरुवों का श्रेय देते हैं, और वे अपने गुरुवों को, और अंततः प्रथम गुरू बृहस्पति को, और बृहस्पति कहते हैं कि उन्होंने इस सत्य को ब्रह्मा के साथ देखा,

और ब्रह्मा कहते हैं कि उन्होंने इस सत्य को स्वयं ब्रह्म (ब्रह्माण्ड) से, इस लगातार गतिशील और फैलते जाते जीवन से अनुभव किया है। एक अर्थ में इस सिद्धांत का प्रवक्ता कहता है कि इस सूरज के नीचे और अंतरिक्ष में कहीं भी कुछ भी नया नहीं है

इस संदर्भ में निम्नलिखित निवेदित हैः–

1. चाहे हम किसी भी तरह से देखें, बुजुर्ग आधार है और बुद्धिमान भी।
2. प्राचीनकाल से चले आ रहे संयुक्त परिवार की पूर्वीय परम्परा को बनाए रखकर हमें अपने इन बुजुर्ग बुद्धिमान सम्माननीय लोगों का ध्यान रखना चाहिए।
3. जिन बुजुर्गों के संतानें नहीं हैं, उनके लिए शासन को सम्मानजनक छत प्रदान करनी चाहिए, और अगर संतानें होने के बाद भी वे अपने माता–पिता का ध्यान नहीं रखतीं तो उनके बच्चे की आय का पच्चीस प्रतिशत हिस्सा लेकर बुजुर्गों के लिए व्यवस्था की जाना चाहिए। यह बच्चों से उनके बुजुर्गों के प्रति कर्ज एवं अपनी जिम्मेदारी से भागने का दण्ड होगा।
4. शासन को अपनी विभिन्न संस्थाओं में बुजुर्ग बुद्धिमानों का सहयोग लेना चाहिए। शासन को धार्मिक संस्थाओं को इस बात के लिए प्रेरित करना चाहिए कि वे इन लोगों की बुद्धिमत्ता का लाभ समाज को दिलवाने के लिए रास्ते निकालें।
5. शासन को नई तकनीक और सिद्धांत को लागू करने से पहले इनकी उपयोगिता और अन्य असर के परीक्षण के लिए इन्हें बुद्धिमत्ता केंद्रों पर भेजना चाहिए।
6. शासन को रचनात्मक सुझाव देने के लिए क्षेत्रीय केंद्रों के निर्माण को प्रोत्साहन देना चाहिए, और इन क्षेत्रों का संचालन अनुभवी लोगों के हाथ में होना चाहिए।
7. सारी तथाकतिथ नई खोजें, पुरानी पीढ़ी द्वारा संचित ज्ञान, समाज द्वारा उनकी उपयोगिता के बारे में दिए गए सुझावों और प्रकृति द्वारा दी गईं कल्पना शक्ति और अंतर्दृष्टि से की जाती है। किसी भी बौद्धिक संपदा पर संपूर्ण मालकियत और उस पर एकाधिकार का कोई भी दावा, पूरी तरह मूर्खतापूर्ण और अनर्गल है और इस तरह के दाबों को स्वीकार करना उससे भी ज्यादा अनर्गल। भारत और समूचा पूर्व अपने स्वर्णिम इतिहास और श्रेष्ठतम सृजनात्मकता के बलबूते पर किसी भी बौद्धिक संपदा पर किसी भी व्यक्ति, समाज या किसी भी देश के अधिकार के दाबों को, पूरी तरह खारिज करता है।
8. पूरे पेड़ की अनुमति के बिना छोटी सी भी टहनी गिर नहीं सकती। सारी खोजें मानवता द्वारा निर्देशित हैं, और उनके परिणाम सारी मानवता की धरोहर। बौद्धिक संपदा अधिकार और पेटेंट कानून आधारहीन है, और इनसे मुक्ति पानी होगी, इन्हें हटाना ही होगा।

***

बच्चे

''आत्मा समाज और परिवार का चयन करती है''। बच्चे अपने आपको अदृश्य से दृश्य, अज्ञात से ज्ञात, घट चुके भूत से छिपे हुए भविष्य तक, नित्य वर्तमान के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

इस तरह भविष्य भूत और वर्तमान का चयन करता है। एक तरह से देखें तो भूत और वर्तमान भविष्य की रूपरेखा नहीं बनाते, बल्कि भविष्य है जो कि पूरे भूत और वर्तमान को भी लगातार दिशा और रूप देता चला आया है।

(अ) लगभग सभी महापुरुषों ने अपने जन्म के लिए समृद्ध राज/परिवारों को चुना। भविष्य हमसे यह मांग करता है कि हम उसे वही प्रदान करें, जो कि सर्वोत्तम हो। केवल स्वस्थ और आनंदित माता–पिता ही अपने बच्चों को अच्छा वातावरण दे सकते हैं। यह माता–पिता की जिम्मेदारी है कि वे स्वस्थ आनंदमय और पवित्र बने रहे, ताकि उनके बच्चों को ठीक वातावरण मिले।

जब हरेक स्त्री मॉ बनना ही चाहती है, तो हम क्या कर सकते हैं, केवल इतनी प्रार्थना ही की वे अच्छे बच्चों को जन्म देंगी। अच्छे बच्चों का जन्म केवल तभी होगा जबकि वे सही क्षेत्र में, उचित मौसम और समय में, माता और पिता के शरीर और मन की सही स्थिति में, गर्भ धारण करें और अगर वातावरण थोड़ा सा प्रार्थनामय हो तो और उत्तम। यह भी जरूरी है कि गर्भावस्था के दौरान उचित देखभाल की जाए। प्रक्रिया वही है जैसी कि किसी और काम की होती है। इस अवस्था में यौन संतानोत्पत्ति के लिए किया जाता है, आनंद उपभोग के लिए नहीं। भारत में उत्तम संतान के जन्म लिए गर्भाधान संस्कार की व्यवस्था है जिसको क्षेत्र और धर्मों के हिसाब से उपयुक्त बनाया जा सकता है।

(ब) आमतौर पर बच्चों को डरा धमकाकर पाला जाता है। माताएं कहती हैं ऐसा मत करो नहीं तो तुम्हें भूत खा जाएगा, और पिता कहते हैं कि मैं तुम्हें मारूंगा। हमारे समाज में ऐसा ही है, और धार्मिक सम्प्रदायों में भी ऐसा ही है–अगर तुम गलत करोगे तो नर्क में पड़ोगे और अल्ला तुम्हें सजा देगा– सरकार भी ऐसा कहती है अगर तुम गलत करोगे तो सीखचों के अंदर होगे। ऐसी लगातार भय की परिस्थिति में स्वस्थ विकास हो ही नहीं सकता, न तो घर में बच्चों का और न समाज में मनुष्यता का।

(स) व्यापार और अर्थशास्त्र की भाषा में ऐसा कहा जा रहा है कि अगर तुम्हें एक दिन में दौलत बढ़ानी है तो लाटरी का टिकट खरीद लो, अगर एक साल में तो खेती करो, अगर दो से पांच साल इंतजार कर सकते हो तो फलों की खेती, लेकिन अगर तुम्हें हमेशा बढ़ने वाला लाभ अच्छा लगता है तो ऑफिस या कारखाने में एक टीम बनाओ और घर में बच्चों का निर्माण कराओ। समग्र विकास के लिए जरूरी है कि हम घर और समाज में भय के स्थान पर स्वतंत्रता और प्रेम को स्थान दें। हमें यह दिखाना होगा कि

क्यों अच्छाई अच्छी है और प्रेम से भय कैसे दूर किया जाता है, और निश्चित ही इसे किया जा सकता है।

आनंद ही जीवन को चलाने वाली एक मात्र शक्ति है, जो केवल प्रेम और प्रेमपूर्ण संबंधों से बढ़ता है। हरेक व्यक्ति संचार माध्यम, समाज और शासन से यह आशा की जाती है कि वे हमारे समाज में प्रेम और आपसी समझदारी को बढ़ायेंगे।

1. धार्मिक केंद्रों को व्यक्ति को सम्यक जीवन जीने के लिए प्रेरणा और सहायता देनी चाहिए, ताकि हमें स्वस्थ आनंदयुक्त और पवित्र बच्चे मिल सकें।
2. हरेक शिशु को पैदा होते ही माता–पिता दोनों के संपर्क में लाना उचित है। लेकिन पहले लड़कियों को पिता और लड़कों को माता के संपर्क में लाना चाहिए।
3. बच्चों को माता–पिता खासतौर से मां की जरूरत होती है, न सिर्फ उनके गुणवत्तायुक्त ध्यान की बल्कि उनके पर्याप्त समय की भी। आयायों और झूला घरों के सहारे पले बढ़े बच्चे पारिवारिक एक जुटता के महत्व को समझ नहीं पाते और छोटी उम्र में ही माता–पिता के प्रति उदासीनता का रुख लेने लगते हैं। अगर छोटी उम्र में बच्चे को अकेलेपन का अनुभव हुआ है तो उसके माता–पिता को बुढ़ापे में अकेलापन भोगना ही होगा। समाज, धार्मिक संस्थाएं और शासन को इस तरह मिलजुल कर काम करने की जरूरत है, कि माताएं बच्चों को अपना पर्याप्त समय दे सकें और इसके लिए उन्हें आर्थिक असुरक्षा का सामना न करना पड़े। शासन और समाज को नवजात शिशु की भावी आर्थिक जरूरतों को ध्यान में रखकर आर्थिक सहयोग के कुछ मापदंड बनाने होंगे, फिर चाहे इसे सीधे समाज से प्राप्त किया जाए या सिर्फ शासकीय सहयोग से।

कहावत है कि :– ''पूत कपूत तो क्यों धन संचय, पूत सपूत तो क्यों धन संचय''

जबकि इसे होना इस तरह चाहिए

''पूत कपूत तो धन संचय, पूत सपूत तो धन संचय''।

इनमें से एक विपरीत परिस्थिति से बचाव के लिए और दूसरा अच्छाई के विस्तार के लिए।

***

किशोर

इतिहास से यह पता लगा पाना मुश्किल है कि किशोरों को क्या करना चाहिए। कुछ के लिए वे बच्चे हैं, कुछ के लिए वयस्क और कुछ के लिए दोनों ही। किशोरों के साथ यह व्यवहार, केवल अपनी सुविधा के अनुसार होता है, किशोरों की आशाओं के अनुरूप कुछ के लिए अभी उनकी सीखने की उमर है, न कि और कुछ के लिए उनकी बुनियादी समझ तो बन ही चुकी है, और वक्त के साथ उसका रूप भी साफ हो जाएगा। कुछ के हिसाब से किशोर लड़के और लड़कियों को एक दूसरे से दूर ही रहना चाहिए। कुछ दूसरों के हिसाब से जैसे ही मासिकधर्म शुरू हो तो समझ लेना चाहिए कि लड़की की शादी की उम्र आ गई है और दूसरों के लिए यह लड़के एवं लड़कियों के मिलने–जुलने की उम्र है और इसमें कोई ठोस अनुभूति बनाने की जरूरत नहीं है।

1. तथ्य यह है कि यह उम्र का वह पड़ाव है जिसमें सबसे ज्यादा ऊर्जा होती है और सबसे ज्यादा गति। पूरा दिमाग सपनों में चलता है और अच्छा मार्गदर्शन सामान्यतः मिलता नहीं। विचारकों और किशोरों के बीच में भी इन विषयों पर विचार विमर्श और हृदय से अवलोकन को शुरू करना ही चाहिए। विचार विमर्श और इसके परिणामों के कार्यन्वयन के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए, इस बात के लिए जगह होनी चाहिए के नए सुझावों को माना जा सके।

   उनके लिए स्वतंत्रता एवं छतरी की तरह सुरक्षा जरूरी है कि वह खुले भी रहे और अपना नुकसान न कर बैठे।

2. कस्बों और शहरों में शोध की नई दिशाओं और उनके प्रयोग को दिखाने वाली प्रदर्शनियां लगानी होंगी, ताकि किशोर यह जान सकें कि आगे आनेवाले वक्त में वे क्या कर सकते हैं। इन प्रदर्शनियों में सीखने और कमाने के आम रास्तों के अलावा कुछ ऐसे इलाकों को भी प्रमुखता से उठाया जाना होगा, जिनसे किशोरों को यह लगे कि खाने और कमाने के अलावा जिंदगी में ऐसा भी कुछ किया जा सकता है, जिसमें लगातार साहसिकता, उद्यमता की संभावना एवं परीक्षा होती है।

3. बच्चों की इस उम्र में उनकक्त माता–पिताओं को मित्र, मार्गदर्शक, समालोचक और मूल्यों का ध्यान रखने वाला एवं साथ में माता–पिता भी होना चाहिए। इस उम्र में लगातार उनके साथ बने रहने की आवश्यकता कहीं कम है, किशोरों के सामने गुणवत्ता का उदाहरण पेश करने की ज्यादा। फल अगर पूरी तरह से बड़ा भी जाए तो भी उसे पूरी तरह पकने में उतना ही समय और लगता है, धैर्य आवश्यक है। इसी तरह चाहे कैशोर्य एवं मासिक धर्म का अवतरण चाहे तेरह से सत्रह साल की उम्र में क्यों न हो गया हो, सही यौन साथी बनने में उन्हें सात–आठ साल और लगने वाले हैं। यौन शिक्षा शादी की उम्र के करीब, उसके पहले तो उन्हें अच्छा मनुष्य बन सकने के लिए समझ देने हेतु, उचित रोकथाम के उपाय ही उपयुक्त हैं।

किशोरों को न सिर्फ जीवन की कला बताने की जरूरत है, बल्कि जीवन के कर्म बताने की भी!

***

स्त्रियाँ

जो भी हम दूसरों को देते हैं, प्रकृति के अदृश्य रास्तों से हम तक आ ही जाता है, फिर चाहे यह बिल्कुल खराब हो, बुरा, अच्छा या सर्वश्रेष्ठ।

''अगर पूरी दुनियां में स्त्रियों को सर्वोत्कृष्ठ नहीं मिल पा रहा है, तो इससे यही पता चलता है कि वे अपने समकक्ष पुरूषों के बराबर अपना सर्वोत्कृष्ठ दे भी नहीं रही हैं, फिर चाहे ये स्त्रियाँ, बहन, बेटी, पत्नी, मित्र या यहां तक कि मां की भूमिकाएं में भी क्यों न हों।

पूरे जीवन में हमारा सारा व्यवहार या तो हमारी अनुवांशिकता पर निर्भर करता है, या हमारे पर्यावरण पर। ऐसा देखा गया है कि हरेक नवजात शिशु के लिए उसके सामने आनेवाला पहला चेहरा सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण चेहरा बना रहता है। चूंकि पुरुष और स्त्रियां एक दूसरे के संपूरक हैं, जन्म के समय पुरुष शिशु को निश्चित ही सिर्फ इसलिए कि वह पुरुष है, मां का जो चेहरा देखने को मिलता है, वह उसके लिए बिल्कुल उपयुक्त है। जबकि लड़की को तो शायद ही कभी पिता का चेहरा पहले देखने को मिलता हो उसे भी मां का चेहरा देखना होता है और इस तरह उसमें शक्ति और साहस का विकास नहीं होता, इसकी जगह ईर्ष्या और कुटिलता ही बढ़ती है। जिन बहुत थोड़ी सी लड़कियों को, जन्म के साथ ही पिता का चेहरा देखने को मिला, उनसे मिलने पर आप इसका महत्व समझ सकते हैं। यह भी देखा गया है कि जिन मनुष्यों को सौभाग्य से माता–पिता दोनों को एक साथ देखना नसीब हुआ है, वे अच्छे मनुष्य बने हैं, संतोषी लेकिन फिर भी प्रगतिशील, और थोड़े–थोड़े आंतरिक प्रसन्नता से युक्त।

1. पुराना औद्योगिकीकरण लगभग पूरी तरह यांत्रिक था, वर्तमान औद्योगिकीकरण यांत्रिक भी है और साफ्टवेयर से चलने वाला यांत्रिक भी। भविष्य का औद्योगिकीकरण तो मुख्यतः साफ्टवेयर से ही चलने वाला है। स्त्रियों में साफ्टवेयर के लिए निहित प्रतिभाएं हैं, और वे ही आगे आनेवाले वक्त में उद्योगों का नेतृत्व करने वाली है, पुरुष तो इन महिलाओं के सहयोगी मात्र हो जाएगें। महिलाएं इस पर गर्व कर सकती हैं, और पुरुष इसको प्राकृतिक प्रागतिक परिस्थिति मानकर स्वीकृत कर सकते हैं।
2. आगामी पीढ़ी की अनुवांशिकता को सुधारने के लिए यौन साथी या वैवाहिक संबंधी का उचित चुनाव, सर्वाधिक महत्व रखता है। जरूरत इस बात की है कि विवाह को इस दृष्टिकोण से भी देखा जाए – सगोत्र विवाह, सीमित संबंधो में विवाह, देश के अन्दर या अंतरदेशीय विवाह।
3. बेहतर अनुवांशिकी के लिए वीर्य बैंकों को प्रोत्साहन कोई अच्छा विचार नहीं है, यह एक कृत्रिम प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में नवजात को न तो अपने पिता का चेहरा देखने को मिलेगा और न ही उनकी जीवंत एंव प्यार भरी देखभाल।

4. माता–पिता दोनों को ही नवजात की देखभाल के लिए कुछ दिनों का अवकाश मिलना चाहिए। पिता को अस्पतालों के प्रसव कक्षों में प्रवेश मिलना चाहिए, और अगर नवजात बालिका हो तब तो यह किया ही जाना चाहिए। नवजात के लिंग को जानने के लिए सोनोग्राफी टेस्ट की इजाजत होनी चाहिए, ताकि दूरस्थ इलाकों में रहने वाले पिता शिशु के जन्म के समय पहुंच सकें। भ्रूण हत्या अपराध है और सांकेतिक सजा के साथ इसके लिए पर्याप्त आर्थिक दंड उचित है।

5. शिशु मां की कोख के अंधेरे से जन्म लेता है, तेज रोशनियों में प्रसव तो आंखों की रोशनी को कम कर देता है, ऐसे बच्चों में चस्मों की जरूरत ज्यादा होती है। इस बारे में हांलाकि डॉक्टरों से विचार विमर्श जरूरी है लेकिन लालटेन या मोमबत्ती का प्रकाश ही काफी होना चाहिए।

6. बच्चों का ध्यान रखने के लिए, कार्यशील महिलाओं को, दस प्रतिशत वेतन के साथ, लम्बी अवधि की छुट्टी दी जानी चाहिए। निजी क्षेत्र से भी इस हेतु कुछ मापदंड बनाने के लिए कहा जाना चाहिए। शासन इस हेतु निजी क्षेत्र के साथ वित्तीय बोझ के बंटवारे पर विचार कर सकता है। इसके साथ ही घर में बुजुर्गों की देख–भाल के लिए यह आवश्यक है कि दंपत्ति में से एक गृहकार्य संभाले। बुजुर्गों को बेसहारा या नौकरों के भरोसे छोड़ना यह इंगित कर देता है कि वो भी अपनी बुजुर्गी में ऐसे ही व्यवहार के लिए तैयार रहे। समाज को इस बारे में चर्जा करनी होगी एवं दिशा निर्देश देने चाहिए जिसे परिवार मानकर निर्वहन कर सके।

7. जन्म प्रमाणपत्र देना अस्पतालों और सांख्यिकी विभाग की जिम्मेदारी है। इसे घर पर पहुंचाना उनके लिए बाद्यता होनी चाहिए। इस हेतु जन्म और विवाह के आंकड़ों को इकट्ठा करने में हिजड़ों का उपयोग किया जा सकता है। जन्म और मृत्यु के साथ–साथ विवाह का पंजीयन अनिवार्य करना होगा।

8. महिलाओं से जुड़े हुए कानून खासतौर से छेड़छाड़ और बलात्कार से संबंधित, महिलाओं की गल्ती को ध्यान में नहीं रखते। पूरी दुनिया में देखा गया है कि महिलाओं का तरीका अपनी तरफ खींचने का है पहल करने का नहीं। यह भी ज्ञात है कि बलात्कार के अस्सी प्रतिशत प्रकरणों में पीड़िता अपराधी को जानती रही है। इस तरह के कठोर कानूनों के कारण, पुरुषों को महिलाओं के प्रति उचित व्यवहार करने से ही डर लगने लगेगा, और सच तो यह है कि इन कानूनों से बिगड़ी हुई महिलाओं को भी किसी के भी सर पर इल्जाम रखकर, उसकी पूरी जिंदगी बरबाद के अधिकार मिल गए हैं।

   2005–2006 में सुप्रीमकोर्ट में निर्णीत उस प्रकरण को ध्यान में रखा जा सकता है, जिसमें पहले तो लड़की ने अपने पिता को बलात्कार के आरोप में आजीवन कारावास दिला दिया। लेकिन बाद में उसने न्यायालय के सामने यह एफीडैविट दिया कि पिता बेगुनाह है और लड़की ने मां के बहकावे में आकर ऐसा किया था। अब कोर्ट मां को दंड देने का विचार कर रहा है। हम इस पर हंस सकते है, कि कानून या न्यायाधीश गलत कौन है। परिवार और महिलाओं के किसी भी सवाल पर कोई भी निर्णय पारित करने से पहले, खुपिया सेवाओं के सहयोग से पहले वास्तविक स्थिति का ज्ञान कर लेना

उचित है। इस तरह खुली आंखों की जरूरत इसलिए भी है, ताकि महिलाओं का उनके सभी रूपों (बहनें, बेटी, बीवी, माँ, भाभी, एवं देवियाँ और विशकन्यायें) में सम्मान सुनिश्चित किया जा सके। महिलाएं सोलह से अड़तालीस साल की उम्र में सिर्फ पुरुषों की कामना तृप्ति की वस्तुएं नहीं है, जैसा कि आमतौर पर पश्चिम में दिखाया जाता है।

9. पुरुषों और महिलाओं में बहुत से अंतर हैं। दोनों को एक सी शिक्षा देना दोनों के साथ अन्याय है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था मुख्यतः पृरुषों पर केंद्रित है। ''महिलाओं की शिक्षा–महिलाओं के हिसाब लागू करने के लिए प्रयास आवश्यक हैं।

10. शादी के साथ एक दूसरी ही जिंदगी शुरू हो जाती है। दुनिया में कहीं भी इस बात की शिक्षा नहीं होती, कि युवाओं को अपने वैवाहिक जीवन में पैर रखने में आसानी हो। शिक्षा केंद्रों को इस तरह का प्रशिक्षण देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, और अगर आवश्यक हो तो ऐसे केंद्र खोले भी जाने चाहिए। इस समय संस्कृति, नीति व्यवहार और बच्चों के लालन–पालन की शिक्षा के साथ, दोनों ही को, खासतौर से महिलाओं को यौन शिक्षा भी दिए जाने की आवश्यकता है।

11. हरेक धर्म में महिलाओं को धरती की तरह स्थिरता का प्रतीक माना गया है, इसलिए सारे पार्थिव काम वह काम जो स्थिरता लिए हुए है, महिलाएं ज्यादा अच्छी तरह कर सकती हैं। धार्मिक केंद्रों को महिलाओं को इस बात के लिए प्रेरित करना चाहिए कि वे परिवार में इस तरह के सारे कामों की बागडोर अपने हाथ में लें। पति को शादी के पहले दिन से, पत्नी के हिस्से की तरह, अपनी आय का साढ़े बारह प्रतिशत सिर्फ उसके लिए ही देना चाहिए।

12. यह देखा गया है कि खासतौर से भारत में महिलाएं शादी के बाद अपनी मित्रताओं को आगे नहीं चला पाती। इससे बहुत बार शादी के बाद उनकी दृष्टि संक्रीण हो जाती है और वे अनावश्यक गर्व या दुख से घिर जाती हैं। भारत की महिलाओं को अपने परिवारों और अपने धार्मिक, सामाजिक नेताओं के साथ, इन विषयों पर विचार करना चाहिए और सुखद भविष्य के लिए आवश्यक निर्णय लेने चाहिए। मित्रता वह संबंध है जो किसी भी दूसरे संबंध की तुलना में ज्यादा लंबे समय तक चलता है।

13. बहुत सी मुस्लिम महिलाओं में यह देखा और पाया गया है कि वे ईसाई और हिन्दू महिलाओं की तुलना में ज्यादा असुरक्षित अनुभव करती हैं। लगभग सभी मुस्लिम महिलाओं ने कहा कि, हमारे दिमाग में यह बात बैठी हुई है कि घर की मालिकियत में हमारी हिस्सेदारी नहीं है, हमें किसी भी समय छोड़ा जा सकता है और वह भी धर्म के समर्थन से। इसीलिए आकर्षक बने रहने के लिए हम अपने शरीर का कुछ ज्यादा ही ध्यान रखते हैं, और इस तरह खाने–पीने और फालतू चीजों में ज्यादा खर्च हो ही जाता है। बहुत सी अरबी मुस्लिम महिलाओं को कहना है कि, वे हर तरीके से कोशिश करती हैं कि, घर में पैसा इकट्ठा न हो जाए, नहीं तो घरवाला एक और शादी कर लेगा। यह आश्चर्यजनक तो है लेकिन तथ्य।

''भारत को मुस्लिमों की सबसे बड़ी आबादी वाला देश होने के नाते, निश्चित ही जो

मुस्लिम देशों का नेतृत्व करने के योग्य है, इस विषय पर राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार विमर्श को शुरू करना चाहिए। मुस्लिम समाज को इस पर गहन विचार करना चाहिए और कुछ निष्कर्ष लेकर कदम उठाने चाहिए, उतने ही साहस से पूर्ण जितने कि उन्होंने मक्का और मदीना के आसपास के क्षेत्रों में गैर मुस्लिम मेडिकल और पैरामेडिकल स्टॉफ को प्रवेश देकर उठाए हैं।

14. **यह श्लोक कि ''यत्र नार्यस्त पूज्यते, रमन्ते तत्र देवता'' से नुकसान ज्यादा हुआ है और फायदा कम।** इसमें सृष्टि को बराबर के दर्जे के साथ सम्मान देने का प्रावधान नहीं है। इसमें कहीं न कहीं यह निहित है कि ''यत्र पुरुस्त्र पूज्यते, रमन्ते तत्र शैतान''। इस नारे का लगातार उपयोग करके महिलाओं को या तो देवी बना दिया जाता है, या फिर उन्हें हमेशा त्याग करने के लिए बाध्य कर इसके लिए सांतवना दी जाती है। इससे महिलाओं की पूजा नहीं होती, उनका शिकार ही ज्यादा होता है।

इस नारे से महिलाओं के विभिन्न रूपों में मौजूद देवियों में आपसी संघर्ष भी हो गया है। उचित यही है कि ''यत्र जीवस्य पूज्यते, रमयन्ते तत्र देवता'', जहां जीवन की पूजा होती है वहीं देवता वास करते हैं, यही नारा रखा जाए।

उपरोक्त कदम, उठाए जाने पर दस–बीस साल में परिणाम देने लगेंगे, और चालीस–पचास वर्ष में तो तस्वीर ही बदल जाएगी। इसके लिए लगातार प्रयासों की जरूरत है, और उनके लिए हमें प्रतिबद्ध होना चाहिए। इस तरह से ही हम धरती पर जीता–जागता स्वर्ग बना सकते हैं।

***

पुरुष

जो भी देता है उसे मिलता है। पुरुष को शायद इसीलिए उच्च स्थान मिला हुआ है क्योंकि वह परिवार को ज्यादा देता है, शायद यही वजह है कि इस युग और काल में पितृसत्तात्मक प्रणाली का। ऐसा ही बना रहने के लिए जरूरी है कि पुरुष लगातार देते रहने के लिए अपना दृष्टिकोण, व्यवहार एंव अपने हाथ खुले रखे।

1. यह देखा गया है कि महिलाएं केवल तब देती हैं, जबकि वे मां की भूमिका में होती हैं। बाकी सारे संबंधों में वे सिर्फ आशा करती हैं। अगर किसी को भी महिलाओं से कुछ चाहिए तो, उसके प्रति महिला में माता जैसा भाव आना जरूरी है। संत इस बात को अच्छी तरह जानते हैं और इसीलिए उन्हें महिलाओं से सबसे ज्यादा सहयोग मिलता है और एक यह भी वजह है उनके अनुयायियों के रूप में भी महिलाओं के ज्यादा होने की।
2. विभिन्न महिला संगठन, एक यह भी वजह जो महिलाओं का हित करने के लिए प्रतिबद्ध है, दुखद स्थिति में पहुंचती चली जा रही हैं, क्योंकि उन्हें लगातार ज्यादा से ज्यादा चाहिए। वे भूल ही गईं हैं कि महिलाओं के सर्वोत्म रूप मातृत्व में तो अपनी संतानों को लगातार देना ही निहित है। इस तरह के संगठनों के आगे समर्पण, और इस तरह की महिलाओं को भस्मासुर के समान अधिकार देकर स्वयं नष्ट हो जाने के कार्य में सहयोग देना, न सिर्फ पुरुषों के लिए खतरनाक है, बल्कि परिवार और पूरे समाज के लिए विध्वंशकारी।
3. जब तक कि अच्छा समय आए, यानि महिलाओं जीवन को अच्छी तरह से देखने का अवसर मिले, (कम से कम जन्म के समय पिता और माता को एक साथ देखने का अवसर तो जरूर ही) तब तक उन्हें ज्यादा सद्भावना की आवश्यकता है।

   माता–पिता के रूप में भगवान और पत्नी के रूप में भाग्यवान, अर्थात् ईश्वर और नियति में संतुलन बनाए रखना न सिर्फ पृरुषों के लिए बल्कि सारे समाज के लिए चुनौती है।

***

18

विवाह

अगर कोई भी किसी पूरे देश को लंबे समय तक गुलाम बनाना चाहता है तो उसके लिए सबसे आसान काम यह है कि विवाह की धार्मिक पवित्रता को भंग कर, उसके भीतर सरकारी तंत्र और इसकी न्याय व्यवस्था को हस्तक्षेप करने की पूरी छूट दे दी जाए, और वह भी विवाह की संस्था को परिष्कृत करने की आड़ में ताकि यह संस्था स्वयं शासन पर निर्भर हो जाए। यह एक अलग कहानी है कि जिन भी देशों ने ऐसा किया है वे स्वयं बहुत से सामाजिक सवालों से घिर गए हैं, हताश हो गए हैं, जबकि भारत में विवाह की संस्था अभी भी बहुत मजबूत है, भूतकाल में और वर्तमान में भी जारी तमाम हस्तक्षेपों के बाद भी।

विवाह पुरुषों और महिलाओं के लिए आनंद मानने का अवसर माना जाता है, जो पति–पत्नी बन जाते हैं, एक ऐसी संस्था जो न केवल दो लोगों को जोड़ती है, बल्कि दो परिवारों या कुटम्बों को भी। प्रियजनों और निकट संबंधियों की उपस्थिति में धार्मिक विधान के अनुरूप इसका आयोजन होता है। केवल इन्हीं लोगों को, और इनके धार्मिक केंद्रों को यह अधिकार है, और यह उनकी जिम्मेदारी भी है कि वे इसे ठीक तरह से चलाते रहने के लिए सहयोग करें और विपरीत स्थितियां आ जाने पर उचित कदम उठाएं।

1. सरकार को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं– विवाह, तलाक, दहेज, मानसिक, शारीरिक प्रताड़ना आदि में। शासन को केवल तब हस्तक्षेप करना चाहिए जब कि व्यवस्था स्थापित करने के लिए जिम्मेदार सामाजिक और धार्मिक प्रणालियां असफल हो गई हों, और वह भी अंतहीन न्यायालयीन प्रक्रियाएं से नहीं, केवल एक पारवारिक न्यायालय, प्राथमिक और अंतिम के द्वारा। महिलाओं की सुरक्षा में लगा वर्तमान कानून स्वयं महिलाओं को कामनापूर्ति की वस्तुओं की तरह देखता है, इसलिए इसे न तो बहनों की चिंता है न माताओं की। इनसे संबंधित सवाल भी सामाजिक सवाल ही हैं, और इनमें भी जहां तक संभव है शासन को हस्तक्षेप से बचना चाहिए।

2. परिवार के सामने अपनी एकता और पवित्रता बनाए रखने के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट और विभाजनकारी वस्तु, पति और पत्नी को अलग आर्थिक इकाइयों के रूप में देखा जाना है। उनसे अलग आयकर वक्तव्य, अलग बैलेन्सशीट, अलग बैंक खाते, समाज को दिए गए उनके अच्छे या बुरे योगदान के लिए उन पर अलग–अलग जिम्मेदारी या जवाबदेही की मांग करना और क्या है? पूरी दुनिया के आमजन से इसकी प्रार्थना है कि आनंदमय दंपत्ति आनंदमय ही बने रहें, इसके लिए उनकी आर्थिक प्रक्रियाओं को, जब तक कि वे इन्हें अलग न करना चाहें, एक इकाई की तरह देखा जाए (एक बैंक एकाउन्ट, एक आयकर इत्यादि)। इसके लिए बैंक, आयकर, रोजगार, शैक्षिक एवं अन्य प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन किये जाने होंगे।

3. विवाह से संबंधी सारे सवालों पर, शासन को अपने आपको अंतर्रजातीय, अंतरधार्मिक और अंतर्राष्ट्रीय विवाहों की सुरक्षा करने तक ही सीमित रखना चाहिए, और किसी भी विपरीत परिस्थिति में दोनों ही पक्षों को चाहे उनके धर्म, जाति या राष्ट्र कुछ भी हों,

समान स्तर प्रदान करना चाहिए। लेकिन जिन विवाहों को समाज ने कराया है उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी समाज की ही है।

4. एक समान नागरिक संहिता निर्मित करने और उसे बनाए रखकर दुनिया को रास्ता दिखाने की जिम्मेदारी भारत की ही है।

5. सीता–राम की समझ तो निश्चित ही एक आदर्श समझ है, लेकिन फिर राम की तीन माताएं भी हैं, रुक्मणी और राधा भी, द्रौपदी और पाण्डव। रुक्मणी और राधा जैसी परिस्थितियों को आसानी से स्वीकृत एवं सम्मानित किया जा सकता है, और दूसरे तरह के प्रकरणों में भी हिन्दुओं और सनातन में पर्याप्त स्वतंत्रता है, और दो शादियां करने के लिए किसी को किसी को हिन्दू से मुस्लिम होने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिए।

6. शादी की साल गिरहों के स्थान पर शादी का जन्मदिन ही ज्यादा महत्वपूर्ण है।

7. भारत में बहुस्त्री प्रथा भी है, बहुपति भी, और फिर भी इसने एक निरंतर व्यवस्था का निर्माण किया है, यहाँ न तो आयुर्वेदिक दवाइयों में, न शास्त्रों में और न ही विवाहों में समाप्ती (एक्सपायरी) की तारीखें, होती है।

8. महिलाओं से संबंधित बहुत से कानूनों ने मध्यमवर्गीय पुरुष को एक निरर्थक वस्तु बना दिया है, वह अपनी पत्नियों से डरता है, और यहां तक की अपनी बहनों और माताओं के प्रति भी अपने कर्तव्य पूरे नहीं कर सकता और कुछ मामलों में तो शादी–शुदा पुरूषों के द्वारा स्थिति से हताशा के कारण आत्म–हत्या तक की जानकारी आयी है इस परिस्थिति में तो सुधार की आवश्यकता है ही।

9. शादी करने के लिए प्रस्तुत लड़का एवं लड़की को कुछ शिक्षा यौन, ससुराल में एवं नये आयाम में व्यवहार के तरीके एवं शादी के बाद आने वाली जिम्मेदारी के निर्वाहन के बारे में देना जरूरी है – जिससे विवाह दंपत्ति का वह आधार बने जो उनके गृहस्थ जीवन को स्वस्थ, सुखी, एवं पवित्र बनाये रख सके।

विवाह, दंपत्तियों, सगे–संबंधियों और निकटजनों के लिए आनंद का उत्सव ही होना चाहिए।

***

यौन

जन्म से मृत्यु तक, जीवन के ऐसे रूपों को जो बिना यौन के प्रजनन करते हैं न तो नर माना जाता है और न ही मादा, जबकि यौन क्षमता से युक्त जीव जैसे मनुष्य नर और मादा में बांटकर देखे जाते हैं। जीवन के इन दोनों ही तरह के रूपों में, नर और मादा दोनों के साथ बीज एक साथ मौजूद होते हैं, तभी ऐसा संभव हो पाता है कि कभी–कभी पुरुष और स्त्री अकेले रहने पर भी अपने आपको पूर्ण अनुभव करते हैं।

संभोग कर्म में जब पूरी लीनता के कारण समय और काल लुप्त हो जाते हैं, तभी नवसृजन के बीज डलते हैं। यौन प्रकृति के सातत्य का आधार है और प्रकृति की समाप्ति भी इसी के कारण होती है, तभी हम परमात्मा या सृजनकर्ता को, धारणकर्ता भी मानते हैं और हंता भी '' शिव–प्रेम और मृत्यु के देवता ''।

मनुष्यों में यौन ऊर्जा पहले अपना शारीरिक रूप ग्रहण करती है, अर्थात् तेरह से सत्रह साल की उम्र में किशोरों का शरीर यौन ऊर्जा को धारण करने के लिए विकसित होता है, और फिर ऊर्जा का यह घड़ा बाइस से चौबीस साल की उम्र तक ऊर्जा से भरता चला जाता है, इसके बाद यह शक्ति या तो कुंडली शक्ति के जागरण के साथ ऊपर की ओर जा सकती है, और हृदय और मस्तिष्क को पोषण प्रदान कर सकती हैं या फिर नीचे की ओर गति कर यौन अंगों में तनाव पैदा कर सकती है। उनतीस वर्ष की उम्र के बाद यौन ऊर्जा की गति में अगर कोई भी ठहराव आता है तो यह व्यक्तित्व को असंतुलित कर सकता है। इस ठहराव से मुक्ति के लिए, यौन संबंधी, वैश्याओं, पुरुष वैश्याओं के पास जाना या हस्तमैथुन, उपलब्ध रास्ते हैं। पुरुष स्वभावतः तरह–तरह की स्त्रियों के साथ यौन संबंधों का इच्छुक होता है, और महिलाएं स्वभावतः अपने एक–दो प्रिय से सभी संभव यौन रूपों की इच्छुक।

यौन लंबे जीवन का भी आधार है और अतियों, निरंतरता और मृत्यु का भी, और यह सारे मनोरंजन का स्त्रोत भी है और यह ऐसा ही रहने वाला है।

यह तो शायद ही कभी होता है कि, किसी की कुडलिनी लगातार जागृत बनी रहे, और मूलाधार से ऊर्जा लगातार ऊपर की ओर उठती रहे, और इसीलिए यौन संसर्ग, हस्तमैथुन और स्वप्नदोष तो संतों और ऋषियों में भी होते हैं। कुंडलिनी का निरंतर जागरण और ब्रह्माण्ड की ऊर्जा के साथ निरंतर लीनता की सुविधा तो केवल सृजनकर्ता को ही उपलबध है।

भारत चूंकि इन सत्यों को जानता है इसलिए वह अपनी प्रणालियों के साथ जुड़े हुए विधिनिषेधों और अनावश्यक प्रतिबंधों को हटाना शुरू कर सकता है।

मनुष्यों को मिलाकर सारे स्तनधारियों में स्वाभाविक शारीरिक और मानसिक क्रिया ही इस प्रकार है, पहले स्वयं के यौन को समझना, फिर अपने समान लिंग के यौन को समझना, फिर विपरीत को, फिर विपरीत की ओर आकर्षण, फिर अंतराल, ऐसा ही होता है। यह चक्र बार–बार दोहराया जाता है। मानसिक गति के धरातल पर तो यह चक्र मृत्यु तक चलता

रहता है, अगर कोई अपनी मृत्यु पूर्व ही विकसित होना बंद ही न कर दे, तो। पुरुषों और महिलाओं के समलैंगिक विवाह बहुत विरल घटनाएं हैं, इन पर किसी कानून की जरूरत नहीं है और न ही इन्हें अनुशंसा देने की, इन्हें सीधे समाज पर ही छोड़ा जा सकता है।

1. जब तक कुंडिलिनी जाग्रत न हो, अकेला व्यक्ति बिना अपने यौन साथी के मंदिरों, मस्जिदों, बौद्ध विहारों, चर्चों इत्यादि में गड़बड़ी ही फैलायेगा चाहे वह अपनी काम शक्ति को दबाकर दुबका हुआ रहे, या फिर अनैतिक संबंध बनाये या यौन दुष्कर्म करे या करने की चेष्टा करे, के द्वारा पवित्र स्थान की पवित्रता खराब कर सकता है, इसलिए ऐसे सभी स्थानों पर शादी–शुदा युगल जो अपने वानप्रस्थी में या सन्यास आश्रम की उम्र में पहुँच गये हों, ही प्रमुख बने एवं सभी पुजा अर्चना करवाने वाले भी इसी उम्र के हों, ऐसा करना संस्थाओं के आदरणीय बने रहने के लिए आवश्यक है। बिना शादी–शुदा के स्त्री पुरूष धर्मस्थानों पर द्वितीयक एवं सहयोगी भूमिका में रहे तो अच्छा है।

2. कुछ संस्थाओं में यह प्रचलन है कि लोग शादी न करें जिससे वह संस्था के प्रति समर्पित रहेंगे, ऐसी संस्थाओं में एक आंतरिक सड़ांध रहती है, जो यौन के गलत इस्तेमाल या दमन को दर्शाती है। इन संस्थानों को अपने को बदलना होगा, नहीं तो समाज ऐसी संस्थाओं को जल्दी ही बंद कर देगा।

3. राजनैतिक एवं दुश्मनी निभाने के लिए यौन का प्रयोग लोगों को उजागर एवं खत्म करने के लिए समाज में कमोवेश चलता रहेगा। मीडिया को इसमें एक समन्वित दृष्टिकोण रखना आवश्यक है।

4. बलात्कार ज्यादा प्रदर्शन एवं कम उपलब्धता के कारण भी ज्यादा है एक के लिए मीडिया एंव दूसरे के लिए सामाजिक रूढ़िवादिता जिम्मेदार है, और इन पर चर्चा जरूरी है जिससे कि सुधारात्मक कदम उठाये जा सके।

***

विकलांग

सामान्तयः स्त्री पुरूश मैथुन (सेक्स) में मजे के लिए प्रेरित होते है या फिर तनाव से मुक्ति के लिए, और बच्चे उनका सहउत्पाद या अतिरिक्त उत्पाद। हम सभी सहउत्पाद या अतिरिक्त उत्पाद की कीमत, उपयोगिता और स्थिति के बारे में जानते हैं और यही मुख्य कारण है अस्वस्थ्य और कभी–कभी जन्म से विकलांग बच्चों का।

सारे धर्मो और उनसे जुड़ी हुई ज्योतिश विज्ञान, जन्म के समय को ध्यान में रखते है, जब भी वह बच्चे के भविश्य के बारे में बताते हैं। कुछ धर्मों में गर्भधान के समय को ही सही जन्म का समय माना जाता है और प्रसूति के समय को ज्यादा ध्यान में नही लाया जाता। भारत में कुछ जगह ऐसी भी है जहॉ पर ज्योतिशी बच्चे के चाहत में रत स्त्री–पुरूश को गर्भाधान को समय–स्थान भी बताते हैं और बताते हैं कि कब गर्भाधान से कैसा बच्चा होगा और बच्चे का भविश्य क्या होगा। भारत में ज्योतिश बताते है बच्चे की चाह में किया गया रति क्रिया मजा नही, प्रार्थना होनी चाहिए, इससे भविश्य का बच्चा एवं बच्चे का भविश्य अच्छा होगा।

पूर्व में बहुत सारी पूजायें, प्रार्थनायें गर्भाधान संस्कार के नाम से बच्चे के स्वास्थ्य, सुखद एवं पवित्र जीवन के लिये की जाती है, और फिर जन्म के बाद बच्चे का नाम भी भगवान के नामों मे से एक रखा जाता है, (जैसे– गणेशजी के एक सौ आठ नाम, अल्लाह के निन्यानवे नाम) और फिर यह कहा जाता है कि तैंतीस करोड़ देवी देवताओं में से भी कोई नाम रखा जा सकता है। **भगवान के नाम पर बच्चों का नाम दो कारणों से रखा जाता है,**

(क) नये जीवन को भगवान के सृजन के नये रूप में इज्जत करने के लिए,

(ख) बच्चे का नाम पुकारने में भगवान को स्मरण करना।

सरकार/शासन को धार्मिक सेस्थाओं एवं संचार माध्यमों के साथ निम्मलिखित को प्रोत्साहित करना होगाः–

1. फूल को महत्व देना हो या समझना हो तो बीज को महत्व देना होगा। यदि स्त्री बच्चे को प्यार करती है और पति से नफरत तब स्त्री का बच्चे के प्रति प्यार उसका सम्पति के प्रति लगाव जैसा है प्यार नहीं। भविश्य में जब औरतें अपने बच्चों को तभी सही प्यार करेगी तब उन्हें अपनी शादी अपनी पसंद से करने की अधिक स्वतन्त्रता होगी।
2. मीडिया को समाज में शादी पूर्व युवाओं के मिलने जुलने और समझने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रयास करने होंगे।
3. जो युगल रतिक्रिया में मजा ही देखते है उनके लिए बेहतर काम शिक्षा और खजुराहो कोणार्क मंदिरो जैसे संस्थानो की यात्रा को प्रोत्साहित करना होगा। कोणर्क एवं खजुराहो मंदिर में यह शिक्षा मिलती है कि रति तो परिधि में है, केन्द्र में तो सिर्फ भगवान। यह अद्भूत और अनोखा मंदिर है और खजुराहों जैसे मंदिर के पास

अच्छी ढाँचागत व्यवस्था करनी होगी जिससे कि दुनिया भर से लोग इन्हें देखने आ सकें।

4. जो युगल बच्चे चाहते है उनके लिये अच्छे ज्योतिश की सलाह उपलब्ध कराना होगा और इसके लिए हमें सारे देश में (कम से कम जिला स्तर पर) ज्योतिश केन्द्र खोलने होंगे।

5. सरकार ज्योतिश को बढ़ावा देगी और प्रयास करेगी कि सारे ज्योतिश विज्ञान आपस में जुड़ सके।

6. जिन विकलांगों को अन्यों को भी बेसहारा छोड़ दिया गया है उनकी जिम्मेवारी शासन की है! कुछ विकलांगों में कुछ खास बुद्धिमत्ता होती है उसका प्रोत्साहन करना भी समाज और शासन के लिए भी अच्छा होगा।

ऐसे विकलांगों को जिन्हें बेसहारा छोड़ दिया गया है, धार्मिक संस्थाओं और वरिष्ठ नागरिकों को प्रेरित किया जा सकता है वे विकलांगों एवं बेसहारा लोगों के लिए अच्छे एवं जीवंत केन्द्रों की स्थापना करें एवं उन्हें चलायें विकलांगों के लिए उस इलाके के धार्मिक समुदायों के प्रतिनिधि को क्रम से इस तरह के केंद्रों की जिम्मेदारी उठानी चाहिए और जब तक लोगों के स्वैच्छिक अनुदान से ये केंद्र आत्मनिर्भर नहीं हो जाते शासकीय अनुदान आवश्यकता है। सारे विकलांगों को एक ही जगह एकत्रित करने के लिए, और उन्हें भिखमंगेपन से बचाए रखने के लिए, शुरुआत में पुलिस और डॉक्टरों की मदद जरूरी होगी, परिस्थिति चाहे जो भी हो, भिक्षावृत्ति रोकी ही जानी चाहिए। जिससे कि वह अच्छा और जीवंत केन्द्रों की स्थापना करें और उन्हें चलायें।

इन स्थानों की व्यवस्थाओं का सही आकलन केवल इनके द्वारा किए गए काम से हो सकता है और बेहतर कार्य के लिए ऐसे केंद्रों के बीच प्रतियोगिताएं आयोजित की जा सकती है। बेसहारों को मदद केवल इन केद्रों के जरिए दी जानी चाहिए, इनका हिसाब–किताब रखा जाना है या नहीं रखा जाना है, इसका निर्णय केंद्रों पर ही छोड़ना उचित होगा।

दुर्भाग्य से विकलांग :

1. केवल प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए या भीख मांगने के लिए विकलांगता का दिखावा, या नौकरियां प्राप्त कर लेने या अन्य सुविधाओं के लिए वास्तव में विकलांग बन जाना, या भीख मांगने के लिए ऐसा करने का कड़ा दंड होना चाहिए, और ऐसे मामलों की संख्या शून्य लानी होगी।

2. दृष्टि दान को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। हर सफल आँखों के प्रत्यारोपण के लिए, आंखें दान देने वाले के परिवार को अधिकतम संभव आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए जो शुरूआत में पचास–सौ ग्राम सोना हो सकता है। वास्तविक विकलांगों के प्रकरण में, उनके लिए उनकी क्षमता के अनुकूल रोजगार उपलब्ध कराना एक अच्छा रास्ता है । भीख मांगना किसी भी विकलांगता के मामले में ठीक नहीं। अगर कोई रूकावट है तो इसे हटाना होगा। सौ विस्तरों से अधिक वाले अस्पतालों को दृष्टि दान संबंधी सुविधायें रखने के बारे में

कहा जा सकता है।

3. अगर किसी क्षेत्र में कोई भी भीख मांगता हुआ मिले तो, उस क्षेत्र के राजनैतिक प्रतिनिधि और पूरी शासकीय तंत्र को जिम्मेदार ठहराते हुए, उस पर आर्थिक दंड का प्रावधान करना होगा, और इस दंड को किसी भी तरह जरूर जमा करवाया जाना होगा।

4. विकलांगता निवारण नकली पैरों हाथों इत्यादि के लगाने के लिए किए जा रहे सारे प्रयासों को पूरी शासकीय सहायता करना होगा।

विकलांगों के लिए शोध और विकास को इतना शासकीय सहयोग जरूर देना होगा जिससे कि वर्तमान का विकलांग आराम की जिन्दगी जी सके।

***

जनसंख्या

निष्ठाएं और अपनी नस्ल को आगे बढ़ाने की इच्छा सारे ही जीवित प्राणियों में निहित है, मादाओं में नरों की तुलना में ज्यादा। हम देख ही सकते हैं कि महिलाएं ज्यादा धार्मिक हैं और उनमें बच्चों की चाह भी ज्यादा है। इनमें कोई भी हस्तक्षेप, प्रकृति विरोधी काम करना ही है।

पश्चिम में जहां चर्च अपने नौजवानों को दिशा नहीं दे सके, या यूं कहें कि दिशा देने में असफल हो गए, और पश्चिम के युवा चर्चों में संतोष की प्राप्ति न कर पाए, तो उन्हें एक खालीपन का अनुभव हुआ, और चूंकि प्रकृति खालीपन को नामंजूर कर देती है, इसकी जगह भरने के लिए हिप्पी संस्कृति और यौन संतुष्टि बैठ गई है, और इस नई यौनमुक्ति को बनाए रखने के लिए, महिलाओं ने बच्चे पैदा करने से इंकार कर दिया। इस परिस्थिति को तलाकों की बढ़ती संख्या और अकेले मां या बाप के परिवारों ने और खराब कर दिया। बच्चों के विकास के लिए बचाए गए पैसे को, अकेलेपन की बोरियत से बचने के लिए, आधुनिकतम और हरदम नए–नए उत्तेजना प्रदान करने वाले तकनीकी खिलौनों को खरीदने में लगा दिया गया।

पश्चिम में घटती हुई जनसंख्या से हांलाकि पश्चिम का बौद्धिक जगत चौकन्ना हो गया, लेकिन वे तो अपनी भीतरी नस्ली समस्याओं को सुलझा पाने में ही अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं। पश्चिम की घटती हुई जनसंख्या और पूर्व की बढ़ती हुई जनसंख्या से उनमें डर बैठ गया है कि, कहीं यह जनसंख्या उनके ही देशो पर नियंत्रण न करने लगे। भविष्य के प्रति इस अनावश्यक और निराधार भय से संचालित, पश्चिम के किताबी शास्त्रियों ने छोटे परिवार और परिवार नियोजन के गाने को बजाना शुरू कर दिया। इस प्रचार को समर्थन देने के लिए, इसने परिवारनियोजन और जन्म पर नियंत्रण के तरीके विकसित कर लिए, अपने प्रचार को और पुख्ता बनाने के लिए, माध्यमों का इस तरह प्रयोग किया गया कि जैसे देशों के विकास के सामने खड़ी एकमात्र समस्या उनकी जनसंख्या ही है।

ऊपर लिखे विचार को देखकर, कुछ दूसरे देशों और उनके कुछ दूसरे शास्त्रियों ने यह निष्कर्ष निकालना और उसे मानना शुरू किया कि अगर हमारे देश या हमारी जाति के लोगों की जनसंख्या सबसे ज्यादा होगी, तो फिर हम ही दुनिया पर राज्य करेंगे। कुदरत में, जो कुछ भी हम दबाते हैं, वही चीज़ें हमें घेरती चली जाती है, और जिस भी चीज को हम प्रोत्साहन देते हैं वह कमजोर होती चली जाती है, और यह पूर्व के लिए सच है और पश्चिम के लिए भी, एक जगह कम जनसख्या एक समस्या और दूसरी और ज्यादा जनसख्या एक समस्या!

1. शासन को जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम बंद करना चाहिए। बड़े और संयुक्त परिवारों पर लगे सारे प्रतिबंध और छोटे परिवार को प्रोत्साहन देने की व्यवस्थाएं वापिस ली जानी चाहिए। बच्चें हो या न हों यह व्यक्तिगत चुनाव होना चाहिए, हांलाकि यह जरूरी है कि इच्छुक व्यक्तियों के लिए गर्भ निरोध की व्यवस्थाएं रहें। शासकीय सहयोग या विरोध पर

शासकीय दण्ड जो पूर्व में ज्यादा बच्चे पैदा करने पर है और पश्चिम में कम बच्चे पैदा करने पर है, को हटाया जाना उचित है।

2. शासन को, आमतौर पर धार्मिक संस्थाओं के द्वारा, लोगों को प्रोत्साहित करना चाहिए कि उनके मानने वाले बिना भिक्षावृत्ति किए आनंदमय और स्वस्थ जीवन जियें, और फिर वे कैसी संतानें पैदा करते हैं, यह उनके ही ऊपर है, शासन को इससे क्या लेना–देना एवं समाज भी बचा रहे।

3. दुनिया की जनसंख्या पिछले साठ वर्षों में दो सौ करोड़ से लगभग तीन–चार गुना बढ़कर साढ़े छः सौ–सात करोड़ के पास पहुँच गई है, इस जनसंख्या बढ़ने का मुख्य कारण बिजली एवं पेट्रोलियम पदार्थो का जीवन के हर क्षेत्र में प्रविष्ट होना है, (फिर चाहे वह स्वास्थ्य सुविधायें हो, महानगरों का हो एवं इनमें ऊँची इमारते है एंव झोपड़ पट्टी हो ध्रुव के निकट गर्म रखने की व्यवस्था हो या मरूस्थल के पास ठंडा रखने की व्यवस्था हो) जनसंख्या का इस तरह बढ़ना इनके बने रहने के बारे में बड़ी शंका पैदा करता है।

धार्मिक संस्थाओं जैसे चर्चों, मस्जिद, मंदिरों, गुरूद्वारों को आगे आना होगा जिससे समाज में संतुलित परिवार का प्रचलन बने एवं बना रहे।

***

आर्थिक सिद्धान्त

सभी के सभी आर्थिक सिद्धांत वस्तुओं के आदान–प्रदान से लेकर, पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, क्लासिकी आर्थिक सिद्धान्त और अब नवक्लासिकी आर्थिक सिद्धान्त, एक या दूसरी वजह से, अपने पैदा होने की जगह पर भी, और एक वैश्विक प्रणाली की तरह भी असफल सिद्ध हुए हैं। इस समय जो आर्थिक सिद्धांत आम प्रचलन में है वह इन सबकी खिचड़ी और नवक्लासिकी आर्थिक सिद्धान्त की झूठन ही है। इनमें से किसी भी सिद्धान्त के प्रवक्ता वे ही लोग हैं, जो अपने–अपने सिद्धान्त के क्षेत्र में नवसिखिये हैं, और फिर कई लोगों को बुझती हुई बीड़ियाँ पीने की आदत भी होती है।

आज तक विकसित सारे आर्थिक सिद्धान्तों की असफलता की वजह यही है कि किसी भी आर्थिक सिद्धान्त ने अर्थशास्त्र की बुनियादी परिभाषा को ही ध्यान में नहीं रखा। हरेक अर्थशास्त्री ने अर्थशास्त्र को अपनी परिस्थिति की आवश्यकता और उपयुक्तता के आधार पर ही अर्थशास्त्र की अपनी परिभाषा गढ़ ली और एक छोटे से सीमित देशकाल में उसको सफल होते हुए देख, इसको वैश्विक बना देने का प्रस्ताव रख मारा। ''ईको'' के बुनियादी सूत्रों को ध्यान में रखे बिना विकसित किया गया सिद्धान्त तो असफल होना ही है, और ऐसा अवश्सम्भावी है, विना किसी अपवाद के।

आज तक दी गई अनिगिनत परिभाषाओं में से, ''ऑक्सफोर्ड सॉर्टर'' या ''संस्कृत शब्दकोश'' ही है जो कि बुनियादी परिभाषाएं देते हैं, और यह निश्चित है कि भविष्य का आर्थिक सिद्धान्त इससे ही विकसित होगा, इसे सराहा और स्वीकृत किया जायेगा और विश्वव्यापी स्तर पर लागू भी।

अंग्रेजी में अर्थशास्त्र को ईकोनॉमिक्स कहते हैं। ईको शब्द का उद्‌भव इको पर्यावरण की ध्वनि से हुआ है, और नॉमिक्स शब्द कार्यविधियों, प्रक्रियाओं, योजनाओं और उनके परिणामों का लिखित रूप में संकलन है।

अर्थशास्त्र शब्द, अर्थ के शास्त्र की ओर इंगित करता है। अर्थ शब्द मीनिंग और मनी (मतलब एवं मुद्रा) दोनों ही अर्थों में प्रयोग में आता है। जबकि शास्त्र शब्द कार्यविधियों, प्रक्रियाओं, योजनाओं और उनके परिणामों का लिखित रूप में भी संकलन है और श्रुति और स्मृति के रूप में उनकी लोकमानस में उपस्थिति का भी, मोटे तौर पर जहाँ इसके लिये प्रयोग में आनेवाले अंग्रेजी शब्द में वातावरण के ज्ञान का महत्व है वहीं इसके लिये प्रयुक्त किये जानेवाले भारतीय शब्द में श्रुति और स्मृति के रूप में लोकमानस में मौजूद नीतिगत (नीति जो नियामक –प्रकृति पर्यावरण से आती है) ज्ञान है।

1. शासन को सामान्य और प्राकृतिक अर्थशास्त्रियों और इसके साथ ही विभिन्न आर्थिक सिद्धान्तों के प्रवक्ताओं का मिला–जुला समूह बनाना होगा, जो कि हरेक सिद्धान्त का दी गई परिस्थितियों में आकलन करें और भविष्य के लिये ताजे आर्थिक सिद्धान्त का निर्माण कर दें। सुख पूर्वक बैठकर, आसमान को निहारते हुए दूसरों से प्रार्थना करने से कुछ

नहीं होता, कि वे हमारे लिये अनुकरण करने हेतु सिद्धान्त का निर्माण कर सकें।

2. उक्त समूह को– ऐसी अराजकता पूर्ण स्थिति में, जबकि हरेक बड़ा दूसरों को लूट लेने के लिये उतारू है और हरेक छोटा अपने आपको बचाता फिर रहा है– तत्कालीन प्रभावी कदम भी सुझाने के लिये प्रेरित किया जाना चाहिये।

***

(व्यापार) विजनिस और कार्य

वह व्यस्तता जिसका सार निकलता है, या वह व्यस्तता जो दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करें उन्हें पार लगायें व्यापार कहलाता है और ऐसी व्यस्तता अच्छी होती है, विजनिस में रहना कार्यशील होना है, और कार्यशील होना ठीक है, लेकिन हमेशा ही व्यस्तता (विजनिस) में रहना ठीक नहीं है, फल को बाँटकर खाने का समय एवं उस ब्रह्म को याद करने का समय भी जरूरी है। विश्राम भी आवश्यक है। हम उन लोगों को समझ सकते हैं जो अपने आपको विजनिस/व्यापार मैन या वोमैन व्यापारी (पुरूष या महिला) कहते हैं : तनाव और थकान उनके निरंतर साथी हैं, वे तो इनसे घिरे ही रहते हैं और फिर ये तनाव एवं थकान उनके चेहरे और शरीर सब जगह से टपकते रहते हैं।

एक दिग्भ्रमित समाज में वाणिज्य स्वाभावतः शिखर पर होगा, सेवा दूसरे स्थान पर, खेती तीसरे पर और भीख चौथे और अंतिम आश्रय की तरह। जब कोई समाज डूबना शुरू करता है, तो वह इस स्थिति में होता है या इसी की तरह लेकिन जब समाज में गिरावट का दौर खत्म होने लगता है एवं पुनरोत्थान शुरू होने लगता है तो वहाँ प्रवृत्तियों में भिक्षावृत्ति सर्वोत्तम होती है, सेवा दूसरे स्थान पर, वाणिज्य इससे नीचे और खेती अंतिम आश्रय के रूप में जैसे कि अधिकांश देशों की आज हालत है।

(1.) किसी भी कार्य में संलग्नता शरीर के स्वस्थ बने रहने के लिए आवश्यक है, और जब यह कार्य स्वतंत्रता और प्रकृति के सान्निध्य में हो तो सर्वोत्तम। इसी कारण से पूर्वज अपनी प्राथमिकताओं को इस तरह से देखा है कि, खेती श्रेष्ठ है, वाणिज्य दूसरे स्थान पर, नौकरी निकृष्ट और भीख तो निदान लेकिन सर्वदा निंदनीय।

(2.) जब लक्ष्य स्पष्ट हो, दिशा तय, तो संसाधन आ जाते हैं और सांख्यिकी परिणाम दिखाने लगती है। वास्तव में अर्थशास्त्र वही है–जिसका अर्थ हो और जिससे अर्थ निकले (जो प्रकृति और इसके संतुलन में से निकलता है)।

(3.) माँ कहती है– प्रातः काला यह याद करो कि यह विश्व कर्म प्रधान है , जो जैसा करेगा वैसा पायेगा, और अपने ध्येयित कार्य पर लग जाओ एवं रात्रिकाल यह याद करो कि हम कुछ भी करे होगा वही जो राम/अल्लाह चाहते हैं अतः चर्चा या चिन्ता की कोई जरूरत नहीं और आराम से सो जाओ।

प्रसन्न समाज में ऐसा था और ऐसा ही सामान्यतः होगा।

***

निजी, संयुक्त, सार्वजनिक और शासकीय क्षेत्र

हमे जनता की जनता के द्वारा जनता के लिए सरकार, में विश्वास केवल तब पैदा होता है, जबकि चीजें वास्तव में शासन की होती हैं या जनता के निकायों की, किसी व्यक्ति की नहीं। जब चीजें विदेशी होती हैं, तो स्वाभाविक रूप से शंका का संचार हो जाता है और जब चीजें बहुराष्ट्रीय और संदेहास्पद हो तो ये शंकाएं तीव्र हो जाती हैं।

व्यक्तिगत रूप से हम सब चाहते हैं कि घरों की तिजोरियां भरी रहें, और सामूहिक रूप से हम यह चाहते हैं कि शासकीय खजाना लबालब हो। घर की तिजारियां व्यक्तियों को सुरक्षा और आत्मविश्वास देती हैं, और सरकार का खजना पूरे समाज को।

हम अपने घरों में, अपने पूरे परिवारों को उपादेय कामों में लगाकर रखते हैं, और अपने धन और समय को ऐसा कर पाने के लिए खर्च करते हैं। सामूहिक तौर पर शासन भी यही काम करता है, वह भी सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समय और धन का निवेश करता है। विनिवेश थोड़े समय तक चले तो सनक है और अगर लंबे समय तक चले तो आत्महत्या के समतुल्य (यहां तक कि वे औद्योगिक परिवार जो बाजार को अपने हथकंडों से जखीरेबाजी और मालिकियत की स्थापना के लिए इस्तेमाल करते हैं, उनके लिए भी)।

हम जब अपने–अपने घरों में किसी काम में लगे होते हैं, तो हरेक किसी को अपनी दक्षता और क्षमता के हिसाब से काम मिल ही जाता है, या दे दिया जाता है, और हम उसे एक न्यासी के स्तर और हैसियत से अंजाम देते हैं, शासकीय क्षेत्रों में भी ऐसा ही किया जाना जरूरी है, कि इसकी प्रक्रियाओं के सभी भागीदार ट्रस्टी हैं, सिर्फ ऐसे कर्मचारी नहीं, जिन्हें ऊंचे ओहदों पर बैठे दूसरे कर्मचारियों द्वारा मैनेज या प्रशासित होने की आवश्यकता पड़े। संगठन के लाभ और हानियों में भागीदारी, फिर चाहे ये लाभ और हानियां दृश्य हों या अदृश्य, इन ट्रस्टियों के हिस्सों में झलकनी चाहिए।

प्रबन्ध प्रकार :

(अ) अमरीका में कार्यशक्ति अधिकांशतः अनुबन्ध (संविदा) पर चलती है, चीन में शक्ति से, जापान में कुछ–कुछ स्थायी रोजगारों और परिवार की तरह लगाव से– जापानी ट्रस्टी और परिवार की तरह के प्रबन्धन (कम्यून) को देश में आधारित किया जाना है, ताकि यह अपनी महिमा के अनुरूप ऊँचा उठ सके और दुनिया को सामूहिक प्रसन्नता के लिए दिशा दे सके।

(ब) व्यक्तिगत नवोन्मेषी के विचार की शक्ति वृद्धि और विकास का केन्द्रीय तत्व है। इस तरह के व्यक्ति को सद्भावनाएँ सहारा देने से ही पूँजीवादी प्रणाली को विकास सम्भव हो सका था, इसको देश के विकास में लगा देने से एक दूसरी प्रणाली विकसित हुई, व्यक्ति से विचार लेकर उसको सहारा देने, उसका कम्पनी के नाम पर पेटेन्ट करा लेने और खुले बाजार में खुली प्रतियोगिता के लिए इससे बने उत्पाद को उतारने से

नवक्लासिकी आर्थिक सिद्धान्त की सबसे ताजातरीन लेकिन असफल प्रणाली विकसित हुई)।

(स) सुविधाओं का निर्माण, रोजगार, का सृजन और नेताओं के जरिए असली मालिक अर्थात् जनता को अवगत कराना शासकीय क्षेत्र का लक्ष्य हुआ करता था। गुणवत्ता, काम में सिद्धहस्तता, और उचित रखरखाव के द्वारा सेवा प्रदाय की निरन्तरता, लोकतंत्र के प्रारंभिक दौर में लक्ष्य नहीं थे और इसी लिए शासकीय क्षेत्र असफल हो गया।

(द) विकास केवल तभी होता है जबकि व्यक्तिगत नवोन्मेषी के विचार उसकी कल्पना और उसकी दृष्टि को समाज और शासन द्वारा, व्यापक रूप से सारी मनुष्यता के हित के लिए, समर्थन दिया जाता है और स्वीकृति किया जाता है। समांग और लयबद्ध विकास केवल तब होगा जबकि सारे शरीर को पूरा–पूरा सम्मान मिले और इसका उचित हिस्सा, केवल सिर को नहीं। (बौद्धिक सम्पदा अधिकार और पेटेन्टों को तो निकट भविष्य में समाप्त हो ही जाना पड़ेगा)। हमको इन्हें हटा दिए जाने और अर्न्तसम्बन्धित तरीके से आगे बढ़ने के लिए नेतृत्व सम्भालना होगा।

1. विकास और इसको बनाए रखने के लिए अनेकता में एकता अच्छी है, लघु क्षेत्र व्यक्ति के लिए, संयुक्त उपक्रम के लिए मध्यम क्षेत्र जनभागीदारी के लिए बड़े क्षेत्र, भविष्य के विकास और महिमा के लिए केन्द्रीय भूमिका निबाहेंगे।

2. छोटे स्तर पर प्रतिस्पर्धा, और बड़े मुहावरे में प्रतिस्पर्धा के परे जाने से, जीता–जागता स्वर्ग एक वास्तविकता बन सकता है। मात्रा, गुणवत्ता, उचित मूल्य और स्थापना, इस रूप में जो कि लम्बे समय तक चलाए जा सकें, उत्पादों और साख दोनों में ही सबसे अच्छे परिणाम देते हैं।

3. हांलाकि कठोरता सही आधार प्रदान करती हैं, लेकिन जड़ता तो केवल मरे हुओं को शोभा देती है। शासन और नियमों में जीवन्तता और गतिशीलता सबसे अच्छे परिणाम देती है, अगर यह प्रेम और सद्भावना की ठोस जमीन पर खड़े हों। इसी पद्धति से कार्य चमत्कारिक परिणाम दे सकता है, और यह हमारा स्वाभाविक तरीका होना चाहिए।

4. दूसरों को आने देने और खुद के बाहर जाने के लिए खिड़कियाँ और दरवाजे खुले होने चाहिए, हमारा दिल और दिमाग तो बता ही देता है किसका स्वागत किया जाना है और कहाँ जाना है, किस विदेशी को बुलाना है या किस विदेशी मुल्क की यात्रा करनी है, वि व व्यापर संस्था या अन्य सन्धियों को स्वीकृत करना है या इनसे इन्कार, इन्हें तो झेन, ध्यान के रास्ते की तात्कालिकता के आधार पर ही निर्णीत किया जा सकता है।

5. शासन को अपनी प्रणाली को इस आधार से हटाकर कि हरेक कोई चोर है (इसलिए कड़ी व्यवस्था होनी चाहिए), से इस आधार पर स्थापित करना होगा कि हरेक कोई ईमानदार है (और इसलिए व्यवस्था हल्की होनी चाहिए)। पहले प्रकरण में नियम तोड़ने वाले अर्थात् ईमानदार को पुरस्कार दिया जाता है, जबकि दूसरे प्रकरण में चोरों को दण्ड (हालाकि अराजकता मची हो तो ईमानदारों को दण्ड मिल जाता है और चोर और हथकण्डेबाज पुरस्कार प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं)।

6. अर्थशास्त्र इकोलॉजी और पर्यावरण का ही क्षेत्र है, और यह अर्थशास्त्र इनसे लयबद्ध तरीके, और सरल सीधे मार्गों के द्वारा अधिकतम संभव प्राप्त कर पाने के रास्ते सुझाता है।

7. राजा (सत्ता) व्यापारी तो प्रजा भिखारी। सत्ता को व्यापारियों को आधार, सहयोग एवं सुरक्षा देनी चाहिए और व्यापारी अपना सामाजिक कर्तव्य पालन करे इसके लिए स्वच्छ एवं कठोर प्र ाासन को बनाये रखना होगा। जरूरत पड़ने पर ही सत्ता को व्यापार का प्रबंधन करना चाहिए वह भी जरूरत की दृश्टि से न कि मुनाफा कमाने की दृश्टि से।

8. संविदा एवं सामग्री की वर्तमान प्रणाली से सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र जो सबसे सस्ता, त्वरित जरूरतो के लिए, बेचने वाले एवं सेवा देने वाले का ज्यादा ख्याल रखकर बनाई गई मैं परिवर्तन/सुधार की आवश्यकता है । संविदा एंव सामग्री खरीद। फरोख्त की प्रणाली में

   गुणवत्ता एवं कीमत, एक ही तरह की सेवा या सामान के लिए लंबे समय के अनुबंध, बड़ी कंपनियों के लिए सहयोगी छोटी कंपनियां (एंसीलियरी) बनाकर या अनुबंधित करके चलाना, नये विकास के लिए सुविधा आगे बढ़ाने के बारे में तीसरी दुनियां के देशों को ही होगा।

9. कोर्ट कचहरियों के बेकार एवं आलसी रवैया ने तीसरी दुनिया के देशों में सरकारी एवं सार्वजनिक क्षेत्र में अनावश्यक, बेकार, अक्षम, अतिरिक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों का जमावड़ा बनाने में मदद की है। इसमें निर्णय एवं बृहद सुधार की जरूरत है।

सामूहिक प्रगति ही हमारे लिए प्रेरणा का मंत्र होना चाहिए।

***

25

मुद्रा

पैसा पैसा ही है।

कुछ कहते हैं कि ''टका ही कर्मम् , टका ही धर्मम, टका ही मोक्ष प्रदायते,

टका बिन टकटकम यति, टक–टक टकटकायते।''

वह कहते है कि पैसा ही कर्म है, पैसा ही धर्म है और पैसा ही मोक्ष को प्रदान करने वाला है, पैसे के बिना घबराहट बनी रहती है और आदमी या तो घड़ी की टिक–टिक सुनता है या फिर आसमान पर टकटकी लगाकर घूरता है। दूसरे कहते हैं कि पैसा ही शक्ति है और पंचतंत्र की एक कथा के अनुसार इसकी ताकत पर तो चूहे भी उछाल मारते हैं, साँप इसके पास कुन्डली मारे बैठे रखवाली किया करते हैं, कुबेर का सम्मान होता है और देवी लक्ष्मी की प्रार्थना एवं पूजा।

अंतराष्ट्रीय स्तर पर ऐसी स्थिति आ गई है कि सारे स्वर्णिम सिद्धान्त धूल धूसरित हो रहे हैं और स्वर्ण का नियम ही सर्वसत्ताधिकारी है। सुखों पर हमारा कहना है कि स्वस्थ शरीर पहला सुख है और पैसा दूसरा, और सभी धर्म ग्रन्थ पैसे के बारे में कहते हैं कि ''नहि गरीब सम दुख जग माहीं, सन्त मिलन सम जग सुख नाहीं''। इन सारी बातों के बावजूद, यह वास्तव में आश्चर्य का विषय है कि हम क्यों और कैसे गरीब हो गये ? और अभी भी गरीब माने जाते हैं।

हमारी अर्थ व्यवस्था केवल तब गतिमान हो सकती है जबकि हम अपनी गरीबी और मुद्रा विहीनता के बुनियादी कारणों को पहचानें।

महाभारत के बाद हमने कोई बड़ा युद्ध नहीं लड़ा। और युद्ध के बाद जीते हुए लोगों के सगोत्र और उनके वंशज मदहोश एवं फिर स्मृतिहीन हो गये, जिससे लोग कमजोर से कमजोर होते चले गये, कोई वास्तविक काम नहीं केवल राम और महान भागवत की कथाएं। कृष्ण और राम को भी यह अच्छा न लगता होगा कि बिना कोई वास्तविक काम किए उनकी कथाओं को इतना दोहराया जाये, जबकि हम जानते हैं कि यह कर्म ही है जो जीवन के रास्ते पर जरूरी है।

1. यह कुछ तो शून्य की खोज के साथ ही शुरू हो गया था, और इसको महत्व दिये जाने के बाद। जबकि तथ्य यह है कि, इसका कोई भी महत्व तब है जबकि इसे किसी संख्या के बाद रखा जाये। स्वयं में यह मूल्य विहिन या शून्य है ही।
2. राज्य का त्याग कर, भिक्षु बनकर, बुद्ध ने लोगो में इस आम अनुभूति को पैदा किया, कि पैसा अभिशाप है, और ये राजा इतने शक्तिशाली थे और अपनी बात के प्रति इतने समर्पित कि ऐसा लगने लगा कि उन्होंने इसे सिद्ध कर ही दिया। दुर्भाग्य से इससे भिक्षावृत्ति की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला और कभी–कभी तो भिखारियों ने भी राजाओं से अपनी तुलना शुरू कर दी।
3. कुछ धर्म ग्रन्थ कहते हैं : कि धन्य हैं जो गरीब हैं क्योंकि प्रभु का सम्राज्य तो उनका ही

है : इससे गरीबी को और महिमा मण्डल प्राप्त हुआ, और जनसामान्य में उसकी स्वीकृति भी।

4. कुछ ने यह कहना शुरू किया कि गरीबी तो पिछले जन्म के पापों का परिणाम है, और फलतः इससे असहायता की भावना उत्पन्न हो गई और उसकी स्वीकृति भी, और साथ ही यह कहना भी शुरू हुआ कि सन्तों के आर्शिवाद से इस परिदृश्य से मुक्ति मिल सकती है, इसके परिणाम में शुरू हुआ ठगों को सर्कस, लुटेरे तथा कथित चमत्कार करने वाले, और इससे आम आदमी की वास्तविक कर्म और बहादुरी से दूरी और बढ़ गई।

5. बहुतों का कहना है कि पैसे से चरित्र खराब हो जाता है इसलिए पैसा न होना बेहतर है, और अगर ऐसे लोगों को पैसा प्राप्त भी होता है तो उनके पास इसको वापिस कर देने या इससे भागने के तमाम बने बनाए तर्क होते हैं।

6. बहुत से ऐसे हैं जो पैसे वालों की आलोचना करते नहीं थकते, लेकिन फिर भी पैसे के लिए भगवान से प्रार्थना तो करते ही रहते हैं। इस तरह की अर्न्तविरोधी माँगों को प्रकृति कभी पूरा नहीं करती।

7. कुछ धर्मों में कहा गया है कि दिन में पाँच बार सार्वजनिक रूप से परमात्मा का ध्यान करें, और इनके अनुयायियों के पास धन कमाने का कोई वक्त हीं नहीं बचता, फिर भी जिनके पास पैसा होता है उनके प्रति इनके मन में घृणा ही होती है। क्या लगातार या सारे समय प्रभु का ध्यान करते रहने और फिर भी काम में लगे रहने और ज्यादा आय कर पाने में कोई समस्या है?

8. नानक कहते हैं : काज करो, वँट चखो, नाम जपो। वह समाज, जो इसके पीछे चल रहा है ''काम करो मिलजुल कर खाओ पियो और परमात्मा का ध्यान करो '' , निरन्तर समृद्ध होता चला जा रहा है। जहाँ तक दूसरों का प्रश्न है, खासतौर से वैश्य समाज का, इसके पास समृद्धि है लेकिन हमारे सांस्कृतिक मूल्यों ने ऐसा रूप ग्रहण कर लिया है कि पैसे वाला होना, भव्यता और दिखावे में विश्वास करना, बीमारी का लक्षण और नर्क ले जाने वाली गतिविधि मानी जाती है। ऐसे सारे तबके जिनके पास पैसे की उपलब्धता या उस तक पहुँच रही है, इसे लोगों की निगाह से बचाते रहें, फिर चाहे यह नष्ट ही हो जाए या दूसरा उसको हड़प ही क्यों न ले।

9. पैसा, पैसा है। वर्तमान सरकार ने पैसे को लगातार चलन में रखने के सारे रास्ते तलाशने की कोशिश की, लेकिन फिर भी यह पैसे को ''काला और सफेद'' में बाँटने में लगी रही, और परिणामतः मुद्रा के परिचालन में बाधाएँ ही पैदा होती रहीं।

जैसे ही पैसे को काला नाम प्रदान कर दिया जाता है, यह आलोचना का केन्द्र बन जाता है, और इसके साथ एक के बाद एक हतोत्साहित करने वाली कार्यवाहियाँ, और दबाव में छिपाकर रखने की प्रवृत्ति और इसके साथ छिपे हुए रास्तो में इसका चलन। ऐसा सारा पैसा जिसका आसानी से स्पष्टीकरण नहीं दिया जा सकता, और जिसके कारण बदनामी होने की आशंका है, ऐसी जगहों और देशों में जमा किया जाता है और उपयोग में लाया जाता है, जो ऐसे

खातों और खाता धारकों को सम्मान, गोपनीयता, सुरक्षा, और पैसे के सम्हालकर रखे जाने की गारन्टी दिए जाने का दावा करते हैं। एक मोटे आकलन के अनुसार इस तरह की बैंकों और ऐसे देशों, में लाखों, करोड़ रुपये जमा है । यह धन की इतनी बड़ी मात्रा है कि इसके ब्याज से देश काम चला सकता है। ऐसे छोटे–छोटे देश हैं जो केवल इसी तरह के कामों के लिए बनाए गए हैं।

कहा जा सकता है कि हमारे जैसे देश वास्तव में दया के पात्र हैं, हमें कम से कम अपने आप से तो सहानुभूति रखनी चाहिए, और कम से कम अपनी सहायता करनी चाहिए। एक तरफ हम कहते हैं, कि हम गरीब हैं और दुसरी तरफ कुछ देश केवल हमारे देश के लोगों के पैसे के ब्याज पर पल रहे हैं, क्या अन्तर विरोध है, हमारे काले धन की परिभाषा पर हमें शर्म आनी चाहिए।

पैसा, पैसा है। इसको काले या सफेद किसी भी तरह का रंग देना, हमारी अनर्गल बुद्धि की सबसे ऊँची मिशाल है। यह तो नियम और कानून मात्र की भाषा में किया जाने वाला विचार है। ऐसे लोगों ने चूँकि वे शक्तिशाली थे अपनी समझ को दुधमुहे बच्चों पर थोप दिया। फिर बच्चे चाहे वे किसी भी तरह पैदा हुए हों और उनमें ईश्वर के प्रति सम्मान होता, और पैसे के प्रति भी।

बच्चे हमेशा ही ईश्वर की रचना है, और किसी बच्चे को असहाय छोड़ देने वाले को कुदरत हमेशा दण्ड देती है, चाहे चुपचाप, लेकिन उसके पास बहुत से रास्ते हैं। धन चाहे बुरे तरीके से पैदा किया गया हो, या बच्चा चाहे वैश्यालय में ही क्यों न उपजा हो, उसको स्वीकृत करना और ससम्मान समाज में स्थान देना आवश्यक है। हमें पैसे का सम्मान करना होगा, और अपने न्याय और व्यवस्था में उन छेदों को बन्द करना होगा, जिनसे वैश्यालय फैलते हैं।

हमारी बैंक व्यवस्था को, वैसे ही गुप्त सुरक्षित खाते काउन्टर प्रदान करने होंगे, जैसे कि स्विस बैंकें करती हैं, या उनसे भी अच्छे।

***

बाजार

गतिशीलता में जिए गए जीवन की लंबाई ही महत्वपूर्ण है, न कि ताबूत या पिरामिड में पूरी तरह से सुनिश्चित कर दिए गये शरीर की लंबाई ।

बाजार का स्थायित्व व्यवहार की नैतिक संहिता से ही प्राप्त होता है, जिसके अनुसार कीमतें वही रहती हैं फिर चाहे खरीदार बच्चा हो जवान या बूढ़ा, अनुभवी या अनुभवहीन (हालाकि भुगतान के तरीके से कीमतें थोड़ी से बदलती हैं)। कीमत और गुणवत्ता के सुनिश्चित किए जाने के बाद, विक्री के बाद, बेचे गए सामान और खरीदार को भी पहचानना सुनिश्चित किया जाना जरूरी है।

उत्पादों की विक्री को प्रोत्साहित करना और उसके लिए आवश्यक विज्ञापन कुल विकास और तात्कालिक और लम्बे समय के लाभ को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए।

1. खुलेपन और बाजार की स्वतंत्रता के नाम पर जहर का महिमा मंडल नहीं किया जा सकता।
2. पहले माध्यम समाज का प्रतिबिंब हुआ करते थे और अब वह समाज का निर्माता और नष्ट करने वाला बन गया है। माध्यमों को स्वयं अपने लिए ऐसी नैतिक संहिता का विकास करना आवश्यक है कि यह वास्तव में समाज का निर्माता ही बना रहे।
3. मांग और पूर्ति के नाम पर मूल्यों में कहां तक बढ़त को हम न्यायोचित बताते रहेंगे ? क्या मांग और आपूर्ती के सिद्धांत को मानते हुए जमाखोरी, काला बाजारी, सूदखोरी, और इससे उपजी भुखमरी को सही ठहराया जा सकता है? मछलियों की दुनियां में, जहां बड़ी मछली छोटी मछली को खा ही जाती है, क्या समाज और शासन यह सुनिश्चित बनाने के लिए हस्तक्षेप कर सकते हैं कि अधिकतम खुदरा मूल्यों के साथ ही उत्पादन की कीमतें भी सार्वजनिक की जाएं और क्या हम स्टॉक की सीमाएं निश्चित कर सकते हैं, हमें ऐसा करना ही होगा। अगर हम मछलियों की दुनियां में ही हैं तो हमें अच्छी तरह स्वीकृत करना चाहिए कि बड़ी मछली छोटी को खा ही जाएगी, और अगर नहीं तो फिर हमें मछलियों के नाना प्रकारों को जिंदा रहना सुनिश्चित करना चाहिए।
4. ज्यादा मुनाफा – पेटेन्ट या उच्च सृजनात्मक क्षमता के नाम पर या वस्तुओं के एकाधिकार या अनुचित तरीके के नाम पर न्यायोचित नही है, ऐसे सभी पदार्थो चालीस फीसदी तक मुनाफा ले सकते है जिससे कि खोज एवं विकास कार्य चलता रहे। ज्यादा मुनाफाखोरी को रोकने के लिए बीच–बीच मे लागत मूल्यो का आकलन आव यक है।
5. कुछ कहते है कि बाजार में सब कुछ बिकता है, और ऐसा सोचने वाले दूसरे की ईमादारी, इज्जत खरीदने निकल पड़ते है यह सिर्फ यह दर्शाता है, वह स्वयं बिकने के लिए तैयार है दूसरे के बारे में तो भगवान ही निर्णय लेता है।

कुछ दूसरे कहते है कि सब कुछ बिकता है लेकिन खुशी/प्रसन्नता नहीं बिकती और इन्हे

लोग जवाब देते है कि इन्हे पता नही कि खुशी कहाँ खरीदना है,। ऐसे सभी लोगों के लिए यह समझाना जरूरी है कि जीवन में जो भी मूल्यवान है वह सब मुफ्त मिलता है यहाँ तक की स्वयं जीवन भी।

जब तक कि रुपए की कीमत तथाकतिथ सम्मानीय मुद्राओं के समकक्ष नहीं पहुंच जाती, किसी भी विदेशी निवेश (विदेशी परोक्ष या अपरोक्ष) को रोका जाना चाहिए। जीने के लिए गौरव आवश्यक है।

***

टैक्स (कर)

1. वर्ण व्यवस्था कहता है कि व्यक्ति के भारीर में हाथ–पेर सूद्र (सेवा) के, पेट–प्रजनन (वैशय–व्यापारी) के, छाती क्षत्रिय की, एवं सिर ब्राह्मण के हिस्से होते हैं। इसमें पेट सारा भोजन पाता है लेकिन वह उसका पाचन कर भारीर के सारे अंगो को उर्जा एवं जरूरी अवयव प्रदान करता है। इसी तरह समाज में व्यापारी पैसा कमाता है और यह उसका कर्तव्य एवं जिम्मेदारी है कि वह समाज के सभी अंगो– सूद्र (सेवादारों) छत्रिय (पुलिस, सेना, राजनीतिज्ञ) ब्राह्मण (ि ाक्षक, योजनाकार, न्यायाधी ा साधु संतों,) एवं स्वयं को धन एवं जरूरी अवयव प्रदान करे। इसमें कोई बदलाव एवं भेदभाव समाज को उस अवस्था में ले जायेगा, जो शरीर को मोटा पेट, हाथ पैर पतले–पतले, छाती धसी हुई एवं सिर झुका हुआ – जैसा द ार्यिगा।
2. आश्रम व्यवस्था में गृहस्थ धनोपार्जन करता है और यह उसकी जिम्मेदारी है कि वह सभी आश्रमों में (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ सन्यास एवं गृहस्थ) रहने वाले अपने परिवार के सदस्यो को धन एवं जरूरी अवयव प्रदान करे। ऐसा न करने से न तो बच्चे ही अच्छे निकलेगे और नही खुद का बुढ़ापा अच्छा निकलेगा और सन्यास आश्रम तक पहुॅचने की नौबत ही नही आयेगी।
3. ऋषियों को कहना है कि अगर कोई सौ रुपये कमाता है तो उसे पच्चीस रुपये माता और पिता पर उनके ऋण को चुकाने के लिए, पच्चीस रुपये लड़के और लड़की पर आगामी पीढ़ी को ऋण की तरह, पच्चीस प्रतिशत स्वयं और पत्नी पर वर्तमान के लिए, और पच्चीस प्रतिशत समाज पर सामाजिक और धार्मिक काम के लिए खर्च करने चाहिए।

उपर्युक्त कथन में हरेक हिस्से के लिए आय का साढ़े बारह प्रतिशत या आठवां हिस्सा निर्धारित है। इसमें न केवल पूरी लय बद्धता है लिंग के आधार पर समानता बल्कि लोक और परलोक का पूरा ध्यान भी। अगर ऐसा है तो न तो महिलाओं और न ही वरिष्ठ नागरिकों के लिए कोई विशेष कर निर्धारित करने की आवश्यकता है।

अगर शासन बहुत अच्छा है तो इन्कमटैक्स (आयकर) की दरे साढ़े बारह प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए और अगर यह अच्छा भी है और न्याय संगत भी तो पच्चीस प्रतिशत से ज्यादा, कभी नहीं और अगर ऐसा नहीं है तो, परिवार या समाज में से किसी के साथ तो अन्याय होना ही है। अगर शासन पच्चीस प्रतिशत से ज्यादा वसूलता है तो यह एक अक्षम शासन है, और यह एक या दूसरे तबके के प्रति उदासीन।

1. हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि इन्कमटैक्स (आयकर) की दरे पच्चीस प्रतिशत से ज्यादा न हो, और बेहतर तो यह होगा कि साढ़े बारह प्रतिशत से ज्यादा नहीं, और अगर अच्छे दिन आये तो पूरी दुनिया में इसी तरह होगा। अगर शासन टैक्स को साढ़े बारह प्रतिशत तक ला सकता है, तो व्यक्तियों और परिवारो ंसे यह आशा की जा

सकती है कि वे अपने कर्तव्य की तरह शेष साढ़े बारह प्रतिशत सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं को सीधे–सीधे दे दें। फिर भी सोने के सौ ग्राम के बराबर प्रतिवर्ष आय टैक्स से मुक्त होना चाहिए।

2. अगर किसी ने इन्कमटैक्स (आयकर) दे दिया है तो, किसी और दूसरे अप्रत्यक्ष तरीके से कोई दूसरा कर आरोपित कर देना व्यक्ति को मूर्ख बनाना और कानून निर्माताओं द्वारा कानून में ही हस्तक्षेप है और यह शासन की गैरजिम्मेदारी और अक्षमता के समतुल्य है।

3. विक्रय कर, केन्द्रीय विक्रय कर प्रोफेसनल टैक्स, अक्ट्रवायकर (चुंगी), आम वस्तुओं पर एक्साइज कर को हटा दिया जाना चाहिए (कार, सिगार, शराब, ए.सी. आदि पर एक्साइज कर आवश्यक है क्योंकि ये बहुत ऊर्जा की खपत करते हैं, प्रदूषित करते हैं और स्वास्थ्य को हानि पहुँचाते हैं)। ऐसे अधिकतर मामलों में भ्रष्टाचार को मिलाकर बहुत से करों की वसूली में लगी लागतें एकत्रित करों से ज्यादा हैं।

   आयात और निर्यात् शुल्कों को विश्व व्यापार संगठन समझौता, मित्र, देशों को होने वाले लाभ को ध्यान में रखते हुए केवल तीन श्रेणियों में वर्गीकृत कर युक्ति–युक्ति बनाना जरूरी है यानि बुरा, अच्छा और आवश्यक वर्गीकरण। आयात और निर्यात् को देशवासियों के पक्ष में होना प्राथमिक है और बाकी के पक्ष में होना द्वितीयक।

4. वैट अथवा मोडवैट को समाप्त किया जाना जरूरी है। (वाट लग गयी एक खराब अर्थ में लिया जाता है)।

5. औद्योगिक उत्पादों के लिए वितरकों और खुदरा व्यापारियों पर लागू होने वाला दो प्रतिशत का टर्न ओवर कर पर्याप्त है। सारे कार्पोरेट कर और कोऑपरेटिव करों को हटा दिया जाना चाहिए। चूँकि अन्त में सारे करों का भुगतान जनता ही करती है, कोई भी अप्रत्यक्ष कराधान बोझ है, और इसे हटाया ही जाना चाहिए। उद्योगों के लिए सारी औपचारिकताएँ और अनावश्यक हथकण्डे जैसे मूल्य ह्रास, मूल्य वृद्धि, आगे ले जाया गया घाटा और बुरा ऋण हटा दिए जाने चाहिए और एक समान दो प्रतिशत का सालाना कारोबार/टर्नओवर या कार्पोरेट टैक्स या तो एकत्रित किया जाना चाहिए या सीधे बैंक खाते में से वसूल।

6. शराब और तम्बाकू पर लगे कर को उस अन्तरविरोधी परिस्थिति का प्रतिबिम्ब नहीं होना चाहिए जिसमें टैक्स में हरेक बढ़त से उपभोक्ता को ज्यादा कष्ट होता है, वित्तमंत्रालय को कम सन्तोष होता है और विक्रेता वितरक और पैक करने वाली कम्पनी को ज्यादा और किसान को कुछ भी नहीं। अगर एक या दूसरी तरह का नशा आधुनिक मनुष्य की जरूरत बन चुका है तो हमें इसे विवेक सम्मत दृष्टि से देखना चाहिए। तम्बाकू पर टैकस अंग्रेजो द्वारा दे ाों को गुलाम बनाये रखने एवं चूसते रहने के लिए था, आजाद देशों में इस पर टैक्स एवं नियन्त्राण हटाना जरूरी है– आखिर हुक्का, सिगरेट, से तो अच्छा है ही।

7. कर एकत्र करने के लिए, तनख्वाह पर निर्भर रहने वाले तबको का कर तो स्त्रोत पर ही कट जाता है, उन्हें इन्कमटैक्स रिटर्न भरने की क्या जरूरत है, उनके संगठन का

प्रमाण पत्र ही काफी है, हालाकि बड़े कर दाताओं को टैक्स विभाग सराहना का पत्र जरूर दे सकता है।

अ) अधिक कर देने वालों को, कुछ अतिरिक्त सुविधाएँ देना आवश्यक है जैसे कि यात्राओं में प्राथमिकता के आधार पर टिकिट और मनोरन्जन के कार्यक्रमों मे आमंत्रण आदि।

आ) निजी और खुदरा क्षेत्र के लिए सारा कर या तो बैंक में जमा किया जा सकता है या बैंक एकाउन्ट में से काटा। एक बैंक खाता ही सामान्य प्रक्रिया होनी चाहिए।

8. ऐसा कहा जाता है कि, कराधान की प्रणाली को समझना सबसे कठिन है। भौतिकतावादी रुख रखने वाले देश इसे और जटिल बनाते चले जा रहे हैं, जब कि क्रान्तिकारी इसे तोड़ना चाहते हैं। अगर अर्न्तधाराओं से कोई संकेत मिलता है तो सबसे ऊँची करों की दर वाला देश फ्रान्स एक और क्रान्ति के लिए तैयार हो रहा है। प्रार्थना है कि ऐसे देश और दूसरे देश अपने तरीकों को बदलें। टैक्स की किताब को दस से ज्यादा पृष्ठ की नहीं होनी चाहिए और इसमें लगी आयत–निर्यात् वस्तुओं की सूची की अतिरिक्त सूची बीस पृष्ठ की।

9. सम्पत्ति और उपहार कर भी हटा दिए जाने चाहिए लोगों की समृद्धिएक दूसरे के लिए उपलब्ध होना ही चाहिए। (जब किसी ने अपनी आय पर कर दे ही दिया है तो उनकी बचतों और उनके खर्च करने के तरीकों पर कोई भी अतिरिक्त कर लगाना जरूरत से ज्यादा बुद्धिमत्ता ही है और इसे शासन की ओर से उठाए गए षडयंत्र जैसे कदम की तरह ही देखा जाता है)।

10. सेवा कर को भी समाप्त कर दिया जाना चाहिए, हमें सेवाओं को प्रोत्साहन देने की जरूरत है और जरूरत से ज्यादा हस्तक्षेप कर उन्हें सीमित करने की नहीं।

11. नगरीय निकायों के कर, नागरिकों को दी जा रही सेवाओं के शुल्क के रूप में प्राप्त किए जाते हैं। अगर इन सेवाओं का रख रखाव और प्रदाय उचित ढंग से नहीं हो रहा है तो यह बेहतर होगा कि इस कर को दो भागों में तय किया जाए, जिसका एक हिस्सा नागरिक कल्याण समितियों या धार्मिक संस्थाओं के लिए और दूसरा नगरीय निकायों के लिए, और प्रदत्त सेवा के अनुसार इनके समपूरक समायोजन की व्यवस्था होनी चाहिए।

12. हरेक कोई चोर है, इस तरह की बकवास के स्थान पर यह माना जाना चाहिए कि हरेक कोई ईमानदार है और ईमानदारी से कर देगा और उल्लंघन कर्ता को परिणाम भोगने होंगे।

13. सड़कों के रखरखाव के लिए पेट्रोल या ड़ीजल की कीमतों में कुछ पैसे प्रति लीटर के हिसाब से कर जोड़ दिया जाना चाहिए। हालाकि ज्यादा एवरेज देने वाले एडीटिव मिले हुए ईधनों की कीमत कम की जानी चाहिए और आम ईधनों की ज्यादा। लेकिन एक देश में कहीं भी ऑक्ट्रॉय या चुंगी लगाने की आवश्यकता नहीं है। इस कारण इनकी कीमतें एक ही देश में अलग–अलग रखने की जरूरत नहीं है।

14. मित्र देशों के स्तर को सुधारने के लिए, हमें आपस में शून्य प्रतिशत व्यापार कर पर

चलना चाहिए। और हमें आयात और निर्यातों दोनों के संबंध में एक समान कीमतों और करों की नीति अंगीकृत करना चाहिए।

15. केवल राष्ट्रीय सहायता कोष में योगदान के अलावा अन्य सभी तरह की कर छूटों को हटा दिया जाना चाहिए। ग्रह निर्माण के क्षेत्र में अभी वैसे भी स्वीकृत की जा चुकी कर छूटों को, कुल टैक्स के चार प्रतिशत पर स्थिर किए जाने की जरूरत है। स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे शोध और विकास क्षेत्र पर दी जाने वाली कर छूटों एवं बाकी सारे प्रकरणों में टैक्स पर छूट या एक मुस्त सहायता का निर्णय प्रज्ञावान लोगों के हाथ में छोड़ा जा सकता है, प्रकरण दर प्रकरण।

16. अगर वयस्क लोग अपने माता–पिताओ, पत्नी और बच्चों की देखरेख नहीं कर रहे हैं, तो फिर शासन को साढ़े बारह प्रतिशत प्रति निर्भर व्यक्ति के हिसाब से, संबंधित वयस्क की आय में से निकालकर, निर्भरों को सुविधाएं प्रदान करना चाहिए। पारिवारिक लगाव को प्रोत्साहन देने के लिए, एक बैंक खाता, और एक टैक्स रिटर्न की पद्धति को शुरू किया जाना चाहिए और ऐसी ही स्वाभाविक प्रक्रिया होनी चाहिए।

17. औद्योगिक क्षेत्र को कराधान से मुक्ति प्रदान करने की प्रक्रिया को बंद किया जाना चाहिए, इससे केवल उद्योगों के ऑफिसों भर का स्थान बदला गया और टुकड़ों–टुकड़ों में विकास को प्रोत्साहन मिला। एक समान अधोरचना और लयबद्धता का वातावरण सभी की जरूरतें हैं, और हमें यह विश्वास होना चाहिए कि हमारा देश ऐसा कर सकता है।

18. ट्रस्टों और मंदिरों को किसी भी कराधान के लिए छूने की जरूरत नहीं है ''शासन को सर्वव्यापी और सर्वसमावेशी ईश्वर की तरह व्यवहार करने की कोई जरूरत नहीं। किसी भी स्वैच्छिक संगठन, मंदिर, चर्च या मस्जिद आदि को दिया जाने वाले सहयोग को, चाहे वह विदेश से आए या देश से बाहर, शासन के माध्यम से होना चाहिए, और उसकी सूक्ष्म निगरानी और उस पर उपयुक्त कराधान की जरूरत है ताकि नीति बनी रहे और मर्यादाएं भी।

19. ज्यादा ऊंची आयों वाले लोगों और संगठनों पर ज्यादा कर लगाने की जरूरत नहीं है, जरूरत इस चीज की है कि उन्हें गांव, कस्बों और शहरों को गोद लेने के लिए प्रेरित किया जाए, उनके रखरखाव और विकास के लिए।

विदेशी या देशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों से एक सा व्यवहार करना चाहिए, फिर भी, आमतौर पर देशी कर प्रणाली ही सारी देशीय बहुराष्ट्रीय कंपनियों, उनके कर्मचारी और उनके आमंत्रित कर्मचारी के लिए मापदंड की तरह व्यवहार में लाई जानी चाहिए।

***

आय

परिवार और शासन की आय बहुत से श्रोतों से होती है। शासकीय आय को मोटे तौर पर निम्नानुसार होना चाहिए, लेकिन प्रत्येक आय के पहले उसके स्रोत पर ध्यान देना जरूरी है कि वह किसी का खून चूसकर, चोरी, डकैती, लूटपाट या रिश्वत, बेवकूफ बनाकर तो नहीं आई है।

पैसठ प्रतिशत आयकर के रूप में संग्रहित कर से जो कम से कम साढ़े बारह से एवं अधिकतम पच्चीस प्रतिशत हो।

दस प्रतिशत ऐशो आराम की वस्तुओं और नुकसानदेह उत्पादों पर लगे एक्साइज कर से।

दस प्रतिशत आयात और निर्यात् कर से जिसे कम अच्छे आवश्यक सार्वजनिक क्षेत्रों को चलाने से हुई आय से

दस प्रतिशत

शून्य दशमलव पाच प्रतिशत संपत्ति कर से जिसमें से आधा प्रतिशत संपत्ति के रखरखाव के लिए हो, लेकिन एक सीमा के बाद ही जो कम से कम आय के पचास गुना हो।

व्यक्तिगत आय के लिए खेती मुख्य, व्यापार द्वितीय, नौकरी तुतीय एवं लंगर/मंदिर आखिरी उपाय के रूप हैं सूद खोरी पर जिन्दा रहना अच्छी बात नहीं है न सिर्फ व्ययों में बल्कि आयों में भी संतुलन बनाए रखना और सतर्कता बनाए रखनाा बेहतर है।

प्रकृति का सम्मान करने से समृद्धि आती है एवं बनी रहती है,।

***

व्यय

परिवार को अपने घर में और सरकार को अपने देश में व्यय का निम्नलिखित प्रारूप रखना चाहिए।

1. पच्चीस प्रतिशत ऋण पुरानी पीढ़ी (माता–पिता) का/क्षत्रिय/वानप्रस्थ आश्रम को।
2. पच्चीस प्रतिशत उधार नयी पीढ़ी (पुत्र, पुत्री) का/सूद्र–सेवादा/ब्रह्मचर्य आश्रम को।
3. पच्चीस प्रतिशत खर्च वर्तमान पीढ़ी (पति पत्नी)का/गृहस्थ/व्यापारी वर्ग।
4. पच्चीस प्रतिशत सहयोग समाज एवं शासन को–क्षेत्र एवं धर्म को/दादा–दादी–सन्यास आश्रम/ब्राह्मण।
5. जब कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु के बाद संपत्ति के बँटवारे के बारे में लिख कर स्वर्ग सिधारता है, उसकी पूरी इज्जत होनी चाहिए, लेकिन अगर कुछ लिखे बिना ही स्वर्ग सिधार गये तब संपत्ति/उधारी का बँटवारा पर समाज में परिवार के सदस्यों समाज के वरिष्ठ एंव गणमान्य सदस्यों, शासन के वरिष्ठ अधिकारियों के बीच चर्चा होनी चाहिए और इसमें से कुछ हिस्सा सरकार एवं समाज के सहायता/राहत कोश में जरूर जाना चाहिए। और यह सब परिस्थितिक होना चाहिए।

अ) (प) शासकीय खर्च पुरानी पीढ़ी पर निम्न रूप से होना चाहिएः–

1. चौबीस प्रतिशत स्वास्थ्य पर।
2. चौबीस प्रतिशत खाना, कपड़े, मनोरंजन और सुरक्षा पर।
3. चौबीस प्रतिशत धार्मिक एवं सामाजिक कार्यो पर।
4. चौबीस प्रतिशत रिजर्व (धरोहर) के रूप में जिससे बाहर दान दिया जा सके या नाती–पोतों पर मनमर्जी खर्च किया जा सके।
5. चार प्रतिशत अन्य।

यहां प्राकृतिक रूप से अक्षम बना दिए गए, वरिष्ठ नागरिकों, या उनकी जिनकी किसी कारण घर में देखभाल संभव नहीं है के लिए शासन द्वारा सुविधाएं प्रदान किया जाना जरूरी है।

(पप) शासकीय खर्च नयी पीढ़ी पर निम्न अनुसार हो :–

1. बत्तीस प्रतिशत खाना, कपड़ा, स्वास्थ्य, सुरक्षा मनोरंजन ।
2. बत्तीस प्रतिशत शिक्षा – नीतिगत एवं व्यवहारिक।
3. बत्तीस प्रतिशत साहस एवं नयी पहल के लिये।
4. चार प्रतिशत अन्य।

(पपप) शासकीय खर्च वर्तमान पीढ़ी पर निम्न रूप से हो :–

बत्तीस प्रतिशत खाना, कपड़े, मनोरंजन एवं सुरक्षा ।

आठ प्रतिशत स्वास्थ्य।

अट्ठाइस प्रतिशत सामाजिक उत्सव, साहस एवं नयी पहल के लिये।

चौबीस प्रतिशत पारिवारिक प्रबंन्धन में।

आठ प्रतिशत रिजर्व धरोहर

(पअ) शासकीय खर्च समाज के लिए निम्न रूप से होना चाहिए :–

बत्तीस प्रतिशत समाज के सामुहिक विकास के लिए।

चालीस प्रतिशत सुरक्षा एवं सेना।

आठ प्रतिशत खोज एवं विकास।

आठ प्रतिशत खतरनाक पहल पर।

आठ न्याय व्यवस्था के लिए।

चार प्रतिशत मुद्रा कोश।

चाहे मुहावरा कुछ भी हो, तनख्वाहें सरकारी व्यय के पच्चीस प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए और शेष पचहत्तर प्रतिशत वास्तविक कार्य के लिए।

हमारे सारे वजट को उपर्युक्त समझ से ही निकलना चाहिए, और हरेक क्षेत्र और उसके हिस्सों को अपना स्वयं का वजट बनाना चाहिए और फिर सामूहिक रूप से।

(आ) देश के विकास के समय खर्च निम्न अनुसार बदल सकता हैः–

अठारह प्रतिशत पुरानी पीढ़ी को।

अठारह प्रतिशत नयी पीढ़ी को।

अठारह प्रतिशत वर्तमान पीढ़ी को।

चौबीस प्रतिशत समाज के लिए।

अठारह प्रतिशत अनदेखे खर्च एवं विकास के लिए।

चार प्रतिशत बचत।

(ई) विलासिता के समय खर्च को निम्न अनुसार होः–

पच्चीस प्रतिशत पुरानी पीढ़ी के लिए।

पच्चीस प्रतिशत नयी पीढ़ी के लिए।

बीस प्रतिशत वर्तमान पीढ़ी के लिए।

दस प्रतिशत सुरक्षा एवं सेना पर।

पांच प्रतिशत आन्तरिक सुरक्षा पर।

तीन प्रतिशत नये ढाचे पर।

दो प्रतिशत न्याय व्यवस्था पर।

एक प्रतिशत उत्सव पर।

पांच प्रतिशत बचत।

चार प्रतिशत उदारता, दान – सहयोग एवं वैश्विक कल्याण।

1. भविष्य के वजट ऋषियों के द्वारा दिए गए दिशा निर्देशों के अनुरूप ही बनेंगे।
2. रेलवे रक्षा और आम वजट के स्थान पर, हरेक मंत्रालय या क्षेत्र को अपना वजट प्रस्तुत करना चाहिए और फिर सारे क्षेत्रों के लिए संयुक्त रूप से वित्तमंत्री द्वारा सामूहिक वजट।
3. छोटी अवधि अर्थात् वार्षिक के साथ–साथ, पचास, दस और पांच वर्ष की अवधि के लंबी अवधि वाले वजटों को भी प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। समूचे वजट कार्य की त्रयमासिक समीक्षा, न सिर्फ खर्च राशि का विवरण बल्कि वास्तविक कार्य का विवरण बनाया जाना, रिर्पोट प्रस्तुतिकरण और वांछित संशोधन भी सार्वजनिक रूप से प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है।
4. वजट के प्रस्तुतिकरण के बाद, न सिर्फ सांसदों का बल्कि आमजन का मत भी लिया जाना जरूरी है ताकि इसे अंतिम रूप देने से पहले मतों को स्थान दिया जा सके : हरेक सुझाव का प्रतिउत्तर दिया जाना आम प्रक्रिया होना चाहिए। प्रस्तुति करने वाले और समीक्षक के बीच मत विरोध की स्थिति में शासक पार्टी के अध्यक्ष, मुख्य न्यायाधीश, मुख्य वित्तीय नियंत्रक एवं जाँच अधिकारी एवं धार्मिक सभा के प्रमुख को निर्णय देना चाहिए।

***

बैंकें

बैंक (नदी के किनारों की तरह) वह जमीन है जो कि, अर्थ (नदी) के बहते रहने की गारन्टी देती हैं, और लोगों के पाँवों के नीचे वह आधार बनाती हैं, जिन पर खड़े होकर, नदी का लाभ लिया जा सकता है, फिर चाहे आप इसमें नहायें, इसमें से पानी भरें, तैरें या जल में ही विश्राम करें (वर्तमान बैंक प्रणाली में ऐसी सारी सुविधाएँ जैसे सेविंग एकाउंट, त्वरित एकाउंट, उधार लेन–देन एवं लॉकर उपलब्ध हैं)।

1. यह कहा गया है कि ''जिनके पास है ईश्वर उन्हें और देता है, और, नहीं तो वह भी वापिस ले लेता है थोड़ा सा जो कुछ भी है'' और यह भी कहा गया है कि ''धन्य है गरीब, क्योंकि ईश्वर का राज्य उनके लिए है''।

   यह देखा जा सकता है कि अभी तो बैंकें इन्हीं मापदण्डों और दिशा निर्देशों पर चल रही हैं, धनिकों की सम्पत्ति को बढ़ाने के लिए और गरीबों से दूरी बनाए रखने के लिए, ताकि वे धन्य ही बने रहें। समाज में लयबद्धता बनाए रखने के लिए, दिशा निर्देशों में यह सुधार करना जरूरी है कि ''ईश्वर सभी की मदद करता है और हिसाब–किताब भी देखता रहता है। केवल विश्वास के आधार पर, बिना किसी गारन्टी के, व्यक्तिगत बैंकरों और ओमबुड्समैन (अकार्यरत मुखिया) के द्वारा, कम से कम छोटी मात्रा में पैसा दिया जाना जरूरी है, ताकि जोखिम के लिए पूँजी उपलब्ध कराई जा सके।

2. बैंकों को स्विस बैंकों के अनुरूप तथाकथित जरूरत से ज्यादा और बेहिसाबी पैसे के लिए गुप्त और सुरक्षित काउन्टर प्रदान करने चाहिए।

3. राष्ट्रीयकृत बैंकों को सोने, चाँदी, प्लेटिनम, जेवरात, हीरों और दूसरी मूल्यवान धातुओं के लिए काउन्टर खोलने चाहिए ताकि राष्ट्र की धातु , मुद्रा का भण्डार मजबूत हो सके और लोगों को इस तरह की चीजों का इस्तेमाल व्यापार और अन्य उद्देश्यों के लिए करने हेतु शासन की गारन्टी और पवित्रता की सुरक्षा प्राप्त हो सके। ऐसे बैंकों या मौजूदा बैंकों में नये विभाग की जो खाद्यान्न एंव अनाज का विनिमय कर सकने की जरूरत है, इससे न केवल फूड कार्पोरशन राष्ट्रीय खाद्य निगम–खाने पीने वाला विभाग–(फूड करप्सन–फूड कार्पोरेशन) का बेकार का एकाधिकार खत्म होगा, वरन् अनाज की बर्बादी, भंडारण के खर्चे में कमी भी होगी।

4. ए.टी.एम. और इन्टरनेट बैकिंग के इस युग में एक ही बैंक खाता पर्याप्त है, बहुत सारे खातों को प्रोत्साहन दिया जाना बन्द होना चाहिए।

5. बचतों और गुप्त सुरक्षित खातों पर ब्याज की दरों को शून्य तक लाने की जरूरत है। छोटे और मध्यम अवधि के जमा पर मामूली ब्याज दरें जारी रखनी चाहिए। बिना बारिस उत्तराधिकारी के वरिष्ठ नागरिकों के लिए आठ प्रतिशत की ब्याज दर आवश्यक है। दूसरे कामों के लिए उधार लेने और देने की ब्याज दरें दस और पांच प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए।

6. क्रेडिट कार्ड लगभग मैनिया (पागलपन) हो गया है। अमेरिका में कहा गया है कि ''क्रेडिट कार्ड के ऋण के साथ पैदा होने वाला क्रेडिट कार्ड के ऋण के साथ ही दफन हो पाता है। क्रेडिट कार्ड को प्रोत्साहन दिये जाने पर मजबूती से रोक लगाए जाने की जरूरत है। (डेविड कार्ड और किसान कार्डों को जारी रखना जरूरी होगा)। ब्याज दरें, लेट फीस, और बहुत से छिपे हुए खर्चे मध्यम वर्ग और गरीब परिवार के लिए तीस से चालीस प्रतिशत तक पहुँच जाते हैं, जबकि ऊँचे लोगों के लिए ये दरें लगभग दो से तीन प्रतिशत होती हैं। चीजों को विवेक सम्मत बनाना तात्कालिकता है। क्रेडिट कार्ड की समग्र ब्याज दरें पन्द्रह प्रतिशत से ऊपर नहीं होनी चाहिए। क्रेडिट कार्ड की दुकाने बन्द होने की चिन्ता हमें नहीं होनी चाहिए, उधारी बुरी है, उधारी के चक्रव्यूह में फँसने का रुख व्यक्ति और देश के लिए आत्मघाती। ऋण की प्रवृत्ति को कहीं भी प्रोत्साहन देना उचित नहीं। लोन (उधार) मेला का आयोजन और उससे उपजी रूकी हुई मुद्रा को औचित्यपूर्ण स्तर तक लाना जरूरी है।

7. बैंक लोनों में, पहले भी थोड़ा बहुत आज भी, यह देखा गया है कि व्यक्ति एक दिखाऊ फर्म के नाम पर ऋण लेते हैं, फर्म डूब जाती है, और व्यक्ति एक दूसरी फर्म के नाम पर दूसरी बैंक पर ऋण की अर्जी लगा देता है। फर्म, इसके डायरेक्टर और इसके पीछे मौजूद व्यक्ति के लेने–देन का चौकस हिसाब–किताब जरूरी है।

8. निजी (प्राइवेट) बैंकों, छोटे साहूकरों के ऋण की अधिकतम दरें तय की जानी होगी, और किसी भी परिस्थिति में इन्हें अठारह से बीस प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। अगर कोई भी इससे ज्यादा ब्याज लेता है तो उसे दण्डित किया जाना आवश्यक है। किसानों की एक बड़ी संख्या और छोटे व्यापारियों की एक छोटी संख्या कि आत्महत्याओं का यह मुख्य कारण है। गुप्तचर माध्यमों से इस सम्बन्ध में आत्म हत्या की घटनाओं के पूर्व ही कार्यवाही करना उचित है।

9. हरेक जिले में सृजनात्मकता और नवोन्मेष को प्रोत्साहित करने हेतु एक इकाई होनी चाहिए, जो कि औद्योगिक सृजनात्मक विचार और उद्योग के बीच में मौजूद खाई को पाट सके, विचार के व्यापारिक पक्ष पर दिशा निर्देश दे सके, और आवश्यकता पड़ने पर ऋण सुविधाएँ भी। ''हरेक ईमानदार है और बेइमान को दण्डित किया जायेगा'' यही सूत्र वाक्य होना चाहिए। ईमानदारी को बढ़ावा देने और उसका सम्मान करने के लिए ऋण सुविधाओं के नियमों का सरल होना बहुत जरूरी है।

10. संरक्षित निधि और नगदी के अनुपात में सुधार की जरूरत है, ताकि रुपये की कीमतें ऊँची बनी रह सकें, और विदेशी मुद्रा भण्डार रिक्त न हों, बैंकों द्वारा सोने का ज्यादा रिजर्व रखे जाने के अलावा, ताकि देश की वित्तीय साख अर्न्तराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ सके और राष्ट्र के नागरिक को ज्यादा सुरक्षा हो सके।

11. बैंकरों के मुनाफे, और बैंक व्यापार को प्रोत्साहित करने की गतिविधियाँ लोगों की समृद्धि के उल्टे अनुपात में बढ़ते हैं। बैंकों को खोलने का प्रोत्साहन और ए, बी, सी, कॉपरेटिव या इन्टरनेशनल जैसी बैंकों को कार्य करने की अनुमति देना, नागरिकों और अर्थव्यवस्था के लिए खतरनाक है। सन्तुलन और लयबद्धता ही सूत्र वाक्य होना चाहिए।

12. बैंकों की सामाजिक और पर्यावरण सम्बधी जिम्मेदारियाँ हैं। बैंकों को वाहनों और ऐशो–आराम की वस्तुओं पर ऋण देने की नीति पर पुर्नविचार करना चाहिए। उन्हें देशों के तेल बिलों का भी ध्यान रखना चाहिए।

13. सामाज के प्रसन्नता के सूचकांक को बढ़ाने के लिए एक दम्पत्ति एक बैंक खाता के मापदण्ड को शुरू करने की जरूरत पड़ सकती है (केवल आपात स्थिति में ही अलग खाता)। खाता धारक (कमाने वाले) की मृत्यु होने पर जमा धनराशि का एक हिस्सा मृत व्यक्ति के पालकों को दिया जाना जरूरी है (कोई मापदण्ड जैसे पालको को चौबीस प्रतिशत, बच्चों को अड़तालीस विधवा को चौबीस, शहर की धार्मिक संस्थाओं को दो और सहायता कोष को दो प्रतिशत आदि)।

14. खातों के संचालन में खाता धारक के लिए पारदर्शिता और गुणवत्ता आवश्यक हैं। सम्मानित बुजुर्गों एवं शादी–शुदा खाता धारकों को वारिश नामा भरने के लिए बैंकों को बार –बार आग्रह करते रहना अच्छा रहेगा जिससे खाताधारकों के स्वर्गवास पर बेकार की दिक्कतों से बचा जा सके एंव बैंक के पास भी बिना वजह के पैसा इकट्ठा ना रहे।

बैंकों का नदियों के किनारों की तरह सम्मान होना चाहिए, जरूरत मंदों को गर्मी, सर्दी, और बारिश में पर्याप्त सहारा देने के लिए।

***

सकल राष्ट्रीय उत्पाद या सकल खुशहाली अनुपात

कुल मिलाकर, सकल राष्ट्रीय उत्पाद हर चीज को साफ नहीं करता, इसमें आठ प्रतिशत विकास का अर्थ है :

गरीबों की गरीबी में आठ प्रतिशत वृद्धि।

विकसितों के विकास में आठ प्रतिशत वृद्धि।

अविकसितों के विकास न होने में आठ प्रतिशत वृद्धि।

लूट, अपराधों, नक्सल और मिलिटेंट आंदोलनों और इसके साथ ही पददलितों के सिर न उठा पाने और अच्छाई के सामने न आ पाने में भी आठ प्रतिशत वृद्धि।

सकल राष्ट्रीय उत्पाद पर जरूरत से ज्यादा जोर दिए जाने से समाज में असंतुलन पैदा हुआ है, गरीबों और अमीरों के बीच में खाई पड़ी है, चोरी और डकैतियों में वृद्धि हुई है और इसके साथ दूसरी आपराधिक और नक्सलवादी किस्म की गतिविधियों में तो वृद्धि हुई ही है। पर्यावर्णीय संतुलन में हो या अर्थशास्त्र में इस तरह की वृद्धि तो असंतुलन का ही द्योतक है।

सच तो यह है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद के स्थान पर प्रसन्नता खु ाहाली/अनुपात को लाया जाए। बढ़ी हुई खु ाहाली प्रसन्नता अनुपात और इसको बढ़ाने के लिए लगातार कार्य, हम सभी को जीवित बने रहने की ज्यादा शक्ति प्रदान करेगा।

खुशहाली प्रसन्नता अनुपात = अ/ब

अः– भोजन, फैसन, कसरत, मनोरंजन, ढाचागत संरचना, सजावट, अनुसंधान एवं विकास, दूसरो की सहायता पर किया गया जनता एवं सरकार द्वारा किया गया कुल खर्च।

बः–स्वास्थ्य, कोर्ट कचहरी, प्रवचनों, आपदा प्रबंधन एवं शमशान घाट पर किया गया जनता एवं सरकार द्वार किया गया मुल खर्च।

जब चीजें नीचें की ओर जाना शुरू होती हैं, बिमारियों, लड़ाई–झगड़ों, कोर्ट–कचेहरियों, पाखंडों में प्रवचनों और श्मसानों में धंधा बढ़ जाता है।

जब उत्थान शुरू होता है तो अधोरचना, भोजन और शारीरिक शक्ति बनाने, व्यंजनों और डिजाइनों, फैशन और मनोरंजन, स्त्रोतों की अधिकता और शोध, विकास और परिसज्जा में धंधा बढ़ जाता है

***

राजनीति

अंग्रेजी शब्द पॉलिटिक्स ग्रीक से लिया गया है, जिसका अर्थ पुलिस के अनुरूप है। यह किसी संस्था द्वारा स्थापित कर दिए गए तयशुदा मापदंडों के अंतर्गत काम करती है, और विपरीत परिस्थितियों में भी शायद ही कभी उस कानून की पवित्रता पर सवाल उठाती है, जिसके अंतर्गत यह काम कर रही है। बदलती हुई दुनिया में, यह एक ठहरी हुई चीज है, या फिर एक शासन को ऐसे नियमों से चलाते रहने की जिद है जो हो सकता है कि मर ही चुके हों। इसके लिए कानून की पुस्तक पवित्रता का अंतिम स्त्रोत है और इसीलिए इसका काम कानून की किसी किताब या संविधान की शपथ लेकर शुरू होता है। ऐसे परिदृश्य में न्यायप्रणाली या तो विकलांग हो जाती है, या फिर जरूरत से ज्यादा स्मार्ट, और जनता की दशा सक्रिय और चैतन्य समूह के स्थान पर मिट्टी के एक ऐसे लौदे की तरह हो जाती है, जो कुछ कर ही नहीं सकता, और केवल हरेक किसी को गालियां और श्राप देते हुए अपना जीवन गुजार देती हैं।

राजनीति (अंग्रेजी शब्द पॉलिटिक्स के विपरीत) पुलिस से नहीं निकली, यह ठीक इसकी उल्टी है, राज्य की नीति, नीति शब्द इकोलॉजी, पर्यावरण या प्रकृति से निकलता है (नीति नियामक से आती है) और इसीलिए यह हमेशा स्वाभाविक कदम उठाती है, और हमेशा गतिशील, स्पंदनयुक्त और जीवंत बनी रहती है। हम सब समझते हैं कि शब्दों में ऊर्जा की तरंगे चला करती हैं, और हम श्रृष्टि को शब्द ब्रह्म भी कहते हैं, आज की पॉलिटिक्स जिसको गलती से लोग राजनीति कहते है ,की बहुत सारी बीमारियों की जड़ इसमें निहित है, कि बहुत बार शब्द बाहुल्य को ही सत्य समझ लिया जाता है।

1. आज से हमको शासन के काम के लिए राजनीति शब्द का ही प्रयोग करना चाहिए, पॉलिटिक्स शब्द का प्रयोग पुलिस के लिए करें या फिर इसे छोड़ ही दें, या अधिक से अधिक तब जबकि राजनीति एक व्यवसाय हो, जो सिर्फ उन अधिकारियों के लिए प्रयुक्त हो जो राजनैतिक नेताओं को सहयोग देने भर का काम करते है।
2. अंग्रेजी और अन्य दूसरी भाषाएं इसलिए ही प्रगति करती हैं कि वे परिस्थिति के अनुसार अपने को बदलने में सक्षम है, ये भाषाएं इस और इस तरह के दूसरे शब्दों को अपने में स्वीकार करेंगी, और इससे विश्व समुदाय के सामने इसका प्रयोग करने और इससे लाभान्वित होने का रास्ता खुलेगा।
3. महारती एवं शिक्षक, पालकों एवं उपदेशकों को इस दिशा में ज्यादा ध्यान देने एवं करने की जरूरत है बजाय तथाकथित नेताओं के।

***

मूल्य आधारित राजनीति

राजनैतिक क्षेत्रों, कार्पोरेट जगत और बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में, आजकल इस शब्द का काफी इस्तेमाल हो रहा है, वे कहते हैं कि नेतृत्व अर्थात् राजनीति मूल्यों पर आधारित होनी चाहिए। अधिकांशतः, वे तय नहीं कर पाते कि महत्वपूर्ण क्या है वह जिन्हें वे मूल्य कहते हैं, या नेतृत्व। आमतौर पर कोई नेतृत्व या मूल्यों में से किसको अधिक महत्व देता है, इसी से हमारे काम की दिशा तय हो जाती है। अगर कोई, मूल्यों को जरूरत से ज्यादा महत्व देता है तो उसके लिए, हो सकता है, कि नेतृत्व महत्वहीन हो जाए, और वह मूल्यों को बनाए रखने के लिए, बहुत सारी चीजों को बलिदान कर दे। (देश का स्वाधीनता आंदोलन इसकी सर्वोत्तम मिसाल है) और अगर किसी के लिए सिर्फ नेतृत्व ही महत्वपूर्ण है तब तो बिल्कुल साफ ही है कि वह नेतृत्व को बनाए रखने के लिए पहले कुछ मूल्यों का बलिदान देगा, और फिर धीरे–धीरे उन सारे मूल्यों का बलिदान दे देगा, जो उसके नेतृत्व के मार्ग में बाधा हैं, या उसे बाधा की तरह दिखाई देते हैं।

व्यवहारिकता बताती है कि कुछ मूल्य देश और काल के अनुसार बदलते हैं, युद्ध में शांति में दुख में और खुशी में, क्षेत्रों और धर्मों के हिसाब से दृष्टिकोण बदलते रहते हैं, और कुछ मूल्य सनातन हैं, और इसलिए समाज के लिए यह जरूरी होता है कि दूरगामी दृष्टि और लक्ष्यों को देखते हुए, अगर जरूरी हो तो, नेतृत्व से भी मुक्ति पाई जाए। ऋशि के आशीर्वादों से नया नेतृत्व जल्दी ही खड़ा हो जाता है और नये नेतृत्व को दृष्टि और लक्ष्य के अनुरूप (सनातन मूल्यों को जीवंत रखते हुए) कार्य करने के लिए तैयार किया जा सकता है।

1. नेतृत्व की स्वाभाविक जन्मजात क्षमता से युक्त व्यक्तियों को उनकी प्रतिभा को और निखारने के लिए नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, और इसके लिए नेतृत्व क्षमता विकसित करने के महाविद्यालय खोले जाने चाहिए, इनमें राजनीति, व्यापार, मानव संसाधन का प्रशासन, भूगोल, संक्षिप्त इतिहास, विश्व के धर्मों की झलकियां और मानव क्षमताओं और संभावनाओं का बोध कराया जाना चाहिए।
2. आशा है और प्रार्थना, कि भारत ऐसे नेतृत्व को विकसित कर सकेगा और बरकरार रख सकेगा, जो कि इसकी दृष्टि और लक्ष्यों के अनुरूप है। मूल्यों पर आधारित जीवन एवं राजनीति विकसित करने के लिए यह जरूरी है कि हम प्राथमिकी से उच्च ि ाक्षा के स्तर तक सार्वभौमिक एवं समसामयिक मूल्यों की ि ाक्षा एवं प्रि ाक्षण अपने बच्चों को दे एवं भौक्षणिक संस्थानों में इसका प्रबंध कराये।
3. कार्पोरेट जगत में यह देखा जा सका है कि प्रबंधन के सिद्धांत लगातार असफल होते चले जा रहे हैं, और केवल वही उद्योगों में प्रचलित परिवार के तरह का माहौल अभी भी अच्छे परिणाम दे रहा है और भागीदार लोगों को आत्मीयता की अुनभूति। हमारे लिए यह सर्वोत्तम होगा कि हम ऐसे उद्योगों के प्रयासों को मजबूती दे और इन्हें औद्योगिक क्षेत्र में लागू करे। हमारे लिए इसके बेहतर परिणाम होंगे और दूसरे के लिए मिसाल।

4. राजनीति में, जो राजनीति का व्यवसाय करते हैं, उनमें अपने व्यवसाय के लगाव के हिसाब से लगन दिखाई देती है, लेकिन जब यह लगन जरूरत से ज्यादा है तो उसके भीतर या तो गहरी असुरक्षा काम कर रही है, या प्रेम छलक रहा है। इनके बीच में अंतर कर पाना कठिन नहीं है, क्योंकि अगर असुरक्षा ही चालक शक्ति है तो ऐसे नेता के साथ जुड़े हुए लोग भी असुरक्षा की अनुभूति करते हैं, यहां तक की यह भावना सारे संगठन में बैठ जाती है, लेकिन जो राजनीति गहरे समर्पण और प्रेम से पैदा होती है, जो नेताओं को लक्ष्य के लिए बलिदान देने की ओर प्रेरित करते हैं, तो ऐसी राजनीति से कार्यकर्ताओ में उत्साह और हिम्मत बनी रहती है।

प्रार्थना है कि, हम इस अंतर को देखें, और तभी स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने रास्ते और नेता का चुनाव करें। यात्रा हमेशा अपने आप से शुरू होती है, फिर अपने धर्म और क्षेत्र की मजबूति से होती हुई राष्ट्र और फिर अंततः विश्व के कल्याण एवं धर्म राज्य की ओर जाती है।

***

भारत : विश्व का स्वाभाविक नेता

भारत (भा. + रत), भा : रोशनी, प्रकाश, ज्योति, भा : रोशनी, प्रकाश, ज्योति,

भारतः प्रकाशित करने में संलग्न)

भारत वह है जो अपने श्वेत आभामंडल के साथ प्रकाशित करने में संलग्न है, ऐसा आभामंडल जिसमें जीवन का हर रंग समाहित है।

भारत स्वाभाविक नेता है। इसीलिए भारत को विश्व के परिदृश्य में अपनी सारी गतिशीलता, ऊर्जा और शक्ति के साथ, एक नेता की तरह ही व्यवहार करना चाहिए। इसमें सारी दुनिया की भी भलाई है और भारत की भी।

1. अगर नेता, नेता की तरह व्यवहार न करे तो, न सिर्फ अराजकता फैलती है, बल्कि बड़ी आपदाओं का खतरा भी हो जाता है।
2. नेता जानते हैं कि नेतृत्व का मार्ग हृदय से मस्तिष्क, फिर शब्दों और कार्यो से शरीर तक आता है। भारत हृदय, मन, वचन और कर्म की एकता को सदैव बनाए रखता है और वह ऐसा ही करेगा।
3. दृष्टा स्वाभाविक नेता होते हैं। वे साफ देखते हैं और फिर उसे प्रगट करते हैं। उनकी दृष्टि हमारे लक्ष्यों का स्त्रोत है। लक्ष्य अपनी ओर खींचता ही है और स्वयं को प्राप्त कर लेने का मार्ग भी दिखाता है।
4. हमें दुनियां के लिए दृष्टि से संपन्न लोगों, ऋषियों, संतों और सूफियों का सम्मान करना होगा और अपने जीवन को सार्थक बनाए रखने के लिए उनके आदेशों का पालन करना होगा। यह दूसरा सवाल है कि उन्हें हमारे सम्मान और उनकी बात के पालन की भूख नहीं होती।
5. उच्चतम नियोजन और उसका कार्यान्वयन और समन्वय करने वाली संस्थाओं को ऐसे लोगों का आर्शीवाद प्राप्त करते हुए संयमित व्यवहार करना चाहिए।
6. चूंकि उपरोक्त लोग विश्व की अंतर्निहित प्रज्ञा का प्रस्फुटन हैं इसलिए मौजूदा कानूनों को उनकी दृष्टि के प्राकृतिक न्याय के संदर्भ में देखा जाना ही उचित है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि गतिशीलता बनी रहे और उपलब्ध प्राकृतिक नेतृत्व अपना उचित स्थान प्राप्त कर सके। हमें यह देखना चाहिए कि ऐसे व्यक्तियों के वचन हमें आपदाओं, युद्धों और उत्सवपूर्ण समयों की पूर्व सूचना देते हैं, इसके पहले कि हम स्वयं उन्हें जान पाए।
7. नेता एक संस्था है, जिसे परिस्थितियां गढ़ती हैं, संत जिसे आर्शीवाद देते हैं, गुरुओं का जिसे समर्थन प्राप्त होता है, बौद्धिक वर्ग जिसे आगे बढ़ाता है, जो अनुगामियों के बीच लगातार संपर्क में रहते हुए विचरण करता है, और पूरे परिदृश्य के एक समान भवितव्य के लिए काम करता है। नेता की परिघटना की एक स्पष्ट संरचना होती है, और जो इसी तरह काम करती हैं। कोई भी विचलन विपत्ति को ही आमंत्रण है और इससे हर कीमत

पर बचा जाना चाहिए। ऐसा तो विरले ही होता है कि कोई एक व्यक्ति ही पूरी संस्था बन जाए, ऐसी सामर्थ्य तो कृष्ण जैसों की ही है।

***

सेक्यूलर और धर्मनिरपेक्ष

भारतीय धर्मनिरपेक्षता धर्म ग्रंथों से निकली है, यहां इस शब्द का अर्थ है, किसी के सापेक्ष नहीं, न तो हिंदू न मुसलमान, न बौद्ध, न ईसाई, न यहूदी, और न किसी और के सापेक्ष। इसका अर्थ है ऐसी धार्मिकता जो न किसी के संदर्भ में है न किसी के विरोध में, इसमें सारा और सारे धर्म समाहित हो जाते हैं। जबकि सेक्युलर शब्द से भ्रम पैदा होता है, क्योंकि इसका अर्थ है गैर धार्मिक और व्यवहारिक रूप में पूरी तरह पैसे के चारों तरफ घूमती हुई सरकार, अंग्रेजी में धर्मनिरपेक्षता के समतुल्य कोई शब्द नहीं है।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ है पूरी तरह से धार्मिक, लेकिन यह धार्मिकता किन्हीं जड़ सूत्रों पर आधारित नहीं है। भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश की तरह, एक पूरी तरह से धार्मिक देश होने की ओर इंगित करता है, इसे हम भारत– एक धर्मराष्ट्र भी कह सकते हैं। भारत शब्द की उत्पत्ति, विभिन्न ऋषियों के द्वारा, इसके पूरी दुनिया को प्रकाशित करने के लंबे समय तक चलने वाले इतिहास के कारण हुई है।

इसके लिए हिंदुस्तान या इंडिया शब्दों का प्रयोग तो दूसरों के द्वारा किया गया है, उन लोगों के द्वारा जो सिर्फ इतना जानते थे कि यह सिंधु नदी के पार मौजूद जमीन है।

वह नाम जो किसी के काम, गुणों, दृष्टिकोण और व्यवहार से पैदा होता है, वह आम नामों की तुलना में कहीं बहुत ज्यादा महत्व रखता है। जैसे– लालू, कालू, दिल्ली, मुंबई जैसे आम नामों की तुलना में डॉक्टर, स्वर्णकार, भवन निर्माता, व मंत्री जैसे शब्द कहीं ज्यादा महत्व रखते हैं।

हम आसानी से तय कर सकते हैं कि हम अपने देश को किस नाम से पुकारा जाना पसंद करेंगे, हिन्दुस्तां, इंडिया या कि भारत।

भारत तो शुभ्र श्वेत और मंगलमय प्रकाश देता है, जिसमें जीवन के और अनगिनत जीवनों के सारे रंग समाहित हैं। लोग अपने–अपने चश्मों के रंग के मुताबिक इसमें अपनी इच्छा का रंग ढूंढ़ सकते हैं, और उसी के अनुरूप जी सकते हैं। सनातन शब्द पुराने और नए, दोनों तरह के भारतों के लिए, समान रूप से सत्य है।

1. भारत धर्मनिरपेक्ष था, है, और हमेशा रहेगा, हमारे लिए धर्मनिरपेक्षता कोई सीखने की चीज नहीं है, यह तो हरेक भारतीय के रक्त में समाहित है, इसलिए इसके साथ कोई भी खिलवाड़ या बाहरी दबावों में इसे सेक्यूलर कहने का प्रयास, हमारे लिए दुख का ही कारण होगा।
2. दुनिया के विभिन्न धर्माबलंबियों के बीच चल रही अंतः क्रियाएं, चाहे वे हमलावार हों, जबरदस्ती धमांतरण की, या स्वैच्छिक रूप से योग, ध्यान या साधना के अंगीकार की, यही इंगित करती हैं कि आखिरकार यह सब कुछ पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष या पूरी तरह से धार्मिक वैश्विक व्यवस्था की ओर प्रस्थान के लिए ही हो रहा है।
3. माध्यमों (मीडिया) से यह आशा है, कि चूंकि आज वे जीवन के निर्माता बन गए हैं, वे

धर्मनिरपेक्ष व्यवहार करें।

***

धर्मनिरपेक्षता और जनतंत्र

दुनिया के सबसे बड़े जनतंत्र ने धर्मनिरपेक्ष रहने का संकल्प लिया, इसमें दुनिया के मुसलमानों की वह सबसे बड़ी आबादी, जिसने विभाजन के वक्त अपने पड़ोसी हिंदुओं द्वारा सुनिश्चित कर दी गई सुरक्षा और प्रेम के अंतर्गत भारत में ही रहने का चुनाव किया, दुनिया के हिंदुओं की सबसे बड़ी जनसंख्या, और इसके साथ ही ईसाई, यहूदी, पारसी और भारत में पैदा हुए अन्य धर्मों के लोग जैसे बौद्ध, जैन और सिक्ख शामिल हुए, समय के साथ यह देश धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक ही बना रहा, यह भविष्य में ऐसा ही रहेगा, और दुनिया को सह अस्तित्व का संदेश देता रहेगा।

1. भारत को धर्मनिरपेक्षता के संबंध में देश के भीतर और सारी दुनिया में भी विचार विमर्श को प्रोत्साहन देना होगा।
2. चूंकि हम इस आस्था के सूत्रधार एवं पहरेदार हैं, अमल में, इसलिए भारत को इसके रास्ते में आनेवाली रुकावटों को हटाना होगा, और इस आस्था को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आगे बढ़ाना होगा।
3. हम सब उस परिस्थिति की ओर आंखें गढ़ाए हुए हैं, जब भारत, जो एक धर्मनिरपेक्ष देश है, और जो दुनिया की सबसे बड़ी मुस्लिम जनसंख्या वाला भी देश है, दुनिया की सारी मुस्लिम जनसंख्या एवं अन्य धर्मों के लोगों को भी मार्गदर्शन दे रहा होगा।
4. शासन को ऐसी परिस्थिति के निर्माण का प्रयास करना चाहिए कि चर्च ईसाई देशों की गिरफ्त से मुक्त हो सकें, और वेटिकन को दिया जाने वाला सहयोग, जो एक किस्म का जजिया कर ही है, देना बंद करें।

हमें ऊपर दी गई बात को ध्यान में रखकर भारत को वेटिकन से बेहतर देश बनाने पर विचार करना चाहिए ताकि धार्मिक स्थलों के जरिए विश्वव्यापी स्तर पर वास्तविक धर्मनिरपेक्षता को प्रोत्साहित करने का काम किया जा सकें।

***

37

राजनीति में जाने वाले लोग

अगर घर में पॉलिटिक्स की परंपरा और विरासत न हो तो, यह देखा गया है कि अधिकांशतः केवल वे ही लोग पॉलिटिक्स में जाते हैं जो कि शिक्षा में सबसे नीचे रह गए और फिर उन्हें पॉलिटिक्स एक अच्छा धंधा दिखाई देने लगे। इन लोगों से ज्यादा आशा करना ठीक नहीं।

छात्र आजकल बढ़िया कैरियर के बारे में सोचते हैं, इंजीनियर, डॉक्टर, प्रबंधन, प्रशासन, शिक्षा और शोध, खुद का धंधा, फिर बचे रहते हैं सबसे नीचे के लोग जिनके पास कुछ शक्ति बची रहती है और खुला आकाश ताकि वे ''ईसा'' के उस कथन को चरितार्थ करें कि वे धन्य हैं जो कतार में सबसे पीछे खड़े हैं, आज तो इसी तरह के धन्य लोग अपने अंतिम विकल्प की तरह राजनीति में प्रवेश लेकर, बड़े–बड़े तबकों कि '' रहनुमाई '' कर रहे हैं।

1. चूंकि हर किसी को भोजन चाहिए, कपड़ा और मकान और इसके अलावा तथाकथित ''थोड़ा बहुत सम्मानजनक जीवन'', इसलिए कोई भी माता–पिता अपने बच्चों को राजनीति को अपना पहला विकल्प बनाने के लिए क्यों प्रेरित करेगा ?

   परिस्थिति खतरे की सीमा के परे चली गई है, एक विश्वविद्यालय में तीस साल से राजनीति विज्ञान पढ़ा रहे एक प्रोफेसर को अपने पूरे जीवन में एक भी ऐसा छात्र नहीं मिलता, जो अपनी इच्छा और देश समाज के लिए कुछ करने की ललक से राजनीति में गया हो। अगर चिकित्सा महाविद्यालय का एक प्राध्यापक डॉक्टर तैयार नहीं कर सकता, तो उसके वहां रहने का अर्थ क्या है। राजनीति की कला और विज्ञान का शिक्षण केवल ऐसे छात्रों के लिए होना चाहिए, जो राजनीति के जरिए देश एवं समाज के लिए कुछ करने का विचार रखते हैं।

2. इन तथ्यों और प्रवृत्यिों को देखकर ऐसा जरूरी लगता है कि, सरकारी कर्मचारियों '' जनता के तथाकथित ट्रस्टियों को राजनीति में जाने, चुनाव लड़ने और वे अगर चाहें तो दुबारा शासकीय नौकरी में जाने की छूट होनी चाहिए।

हमें राजनीति के लिए शिक्षण और प्रशिक्षण के अलग से केन्द्र खड़े करने होंगे।

***

राजनैतिक शक्ति, गठजोड़ और शीर्षस्थ नेता

लगभग सब मानने लगे हैं कि राजनीति कुटिल, चकरम, ठग, लुटेरे और आंखों में धूल झोकनें वालों का काम है। लेकिन अगर हम गौर से देखे तो हम समझ पाएंगे कि ऐसे लोग कभी भी सबसे ऊपर नहीं पहुंचे, और अगर खुदा न खास्ता पहुंच भी गए तो टिक नहीं पाए, चूंकि वे बिना किसी आम सहमति के खड़े हुए थे, इसलिए टिकते भी कैसे।

1. कहा गया है कि '' जिनको कछू न चाहिए वे ही शहंशाह ''।

   ऐसा न माना जाए कि ऐसे लोगों को कुछ मिलता ही नहीं, मिलता है और सब कुछ मिलता है, केवल इतना कि उनके काम किसी इच्छा की उत्पत्ति नहीं होते, न तो धन न नाम न यश। भारत के अपने लंबे इतिहास में ऐसे बहुत से लोग रहे हैं, और अभी भी उससे ज्यादा हैं, और कल उससे भी ज्यादा होंगे।

2. ''नियत साफ तो मंजिल आसान'' जब भी उद्देश्य की पवित्रता होती है, और इसके पीछे गहरे समर्पण, लंबे धैर्य और लक्ष्य की ओर मजबूती से चलते हुए कदम, तो सच्चे नेताओं का जन्म होता है, लोगों की उनमें आस्था, और लोग अपनी संपूर्ण शक्ति से उनका साथ देते हैं। भारत में कांग्रेस को उस तरह का समर्थन कभी नहीं मिला, जैसा कि उसे अस्सी के दशक में तब मिला जबकि लोगों ने देख लिया कि इसके नेता के चेहरे पर मासूमियत है, ऊर्जा है और देश के लिए कुछ कर गुजरने की ललक, हांलाकि उसकी कुछ बनने की इच्छा न थी। जब भी ऐसा होता है लोग अपनी पूरी शक्ति से ऐसे नेता के साथ खड़े होगें, पार्टी चाहे कोई भी क्यों न हो पुरानी हो या एकदम नयी यह एक ऐसा तथ्य है जो सारी राजनीतिक समीरणों और कलाबाजियों से ज्यादा शक्ति रखता है।

3. ''समझदार कौआ गोबर खाए, भोला बछड़ा दूध पिए। ''

   सर्वोच्च शक्ति निरीहता की है, एक ऐसी सरकार जो निरीह होने के बाद भी भय से मुक्त हो और भविष्य की ओर देखने में सक्षम। ऐसी सरकार केवल तब बनती है जबकि ऋषियों के चरण (खँड़ाऊ) उसके सिंहासन पर हों, केवल तब लंबे समय तक चल सकने वाली और चारों ओर प्रसन्नता का संचार करने वाली सरकार बन सकती है।

4. बहुत सी पार्टियों को कभी बहुमत या पूर्ण बहुमत केवल इसलिए नहीं मिलता, क्योंकि उनको ऐसा विचार ही नहीं आता। सारे गठजोड़ अक्षमता और कमजोरी की उपज हैं। गठजोड़ों की सरकार केवल फौरी सच्चाई है केवल तब तक जब तक की देश अपनी भावनाओं के अनुरूप नेता को तलाश नहीं पाया है।

5. बपौती पर चलती राजनैतिक पार्टियों का कोई भविष्य नहीं, प्राइवेट लिमिटेड पार्टियों का बहुत थोड़ा, और सीमित सरोकार रखने वाली पार्टियों का सीमित, जबकि ऐसी राजनैतिक पार्टी का भविष्य जो कि सबको साथ लेकर चल सके, देश की भावनाओं को

समझती हो, और अथक समर्पण और अनथक कर्मशीलता का परिचय दे सके हमेशा था है और हमेशा बना रहेगा, सबके ऊपर।

ये तो प्रगति के प्राकृतिक नियम है– जंगल के जहां केवल ताकत ही अधिकार है से कंक्रीट के जंगल के जहां मुनाफा अधिकार है और धोखाधड़ी शक्ति, से एक ऐसे समाज का भी जिसकी सुसंगत संरचना है जहॉ इज्जत सही है और नीति ताकत।

***

कानून

(अ) चीन और जापान में बनाई गई एक प्रसिद्ध पेंटिंग में एक झेन मास्टर को धम्मपद को जलाते हुए दिखाया गया है, उसी पुस्तक को जिसको उसी झेन मास्टर ने अपने पूरे जीवन अपनी पथ प्रदर्शक पुस्तक की तरह पूजा था। जब कोई प्रकाशित हो जाता है तो, उसके लिए पुस्तकें, शास्त्र जैसे धम्मपद, कुरान, बाइबिल, गुरुग्रंथ साहिब, रामायण और गीता अपना पुराना अर्थ खो देते हैं, या यूं कहें कि जब कोई पहुंच ही जाता है तो सारे रास्ते उसके लिए स्वयं ही प्रकाशित हैं। ऐसे लोग प्रकृति के साथ स्पंदित होते हैं, सारी सृष्टि ही उनके लिए व्यवस्थाबद्ध होती है। चूंकि ऐसे लोग प्रकृति के साथ लयबद्ध हैं, और उसकी पूरी व्यवस्था को संपूर्ण रूप से मानने और जानने वाले, इसलिए ऐसे लोगों के शब्द ही आदेश हैं, और घटनाएं उनके अनुसार ही घटती हैं, फिर चाहे उनका नियमों की किताबों में उल्लेख हो अथवा नहीं। ऐसे लोग चरित्र की सीमाओं से ऊपर उठ जाते हैं, उनके बारे में पूर्वानुमान नहीं लगाए जा सकते, लेकिन फिर भी वे पूरी तरह रिस्पॉसबिल/जवाब देह होते हैं, परिस्थितियों का समग्र बोध रखने और उनके प्रति समुचित प्रति उत्तर देने में सक्षम।

(ब) लेकिन उनके लिए जो अभी पहुंचे नहीं हैं नियम और कानून जरूरी है। बचकाने लोगों के लिए तो कानूनों की पूरी किताबें चाहिए। जिन देशों के कानून और उनकी किताबें जितनी बड़ी हैं उन्हें उतना ही बचकाना माना जा सकता है, और अगर ये किताबें ही अराजकता पैदा कर रही हों तो कहा जा सकता है कि अब कानूनों की किताबों को नए सिरे से लिखने का समय आ गया है। पुराने ज्ञान और अनुभव का निचोड़ निकालकर, अराजकता में से ही सृजन होगा।

(स) जवान देश अपनी कानून कर पुस्तकों में सुघड़ता, दृढ़ता और खुलपन की चाहत रखते हैं, और इनमें बदलाव की संभावना की भी।

1. भारत, वह देश जहां राम, कृश्ण, महाबीर, बुद्ध का जन्म हुआ, आज बहुत से क्षेत्रों में अराजकता में है। कानून की किताबे भी एक ऐसा ही क्षेत्र हैं। यदि नियम कठिन है तो माना जाता है कि न्याय कम होगा। आज कानून की किताबें कमरा भर कर है और न्याय के हाथ खाली (करीब दो करोण मुकदमें लंबित हैं)। कहा जाता है कि जिसका भाासन होगा न्याय उसी का होगा या इसको ऐसा कहे कि जिसके नियम चल रहे है तो उसका ही भाासन होगा चाहे परोक्ष या अपरोक्ष– आज यदि अंग्रेजी नियम चल रहे हैं तो कहा जा सकता है कि आज भी अपरोक्ष रूप से अंग्रेजी भाासन चल रहा है। हमें भारतीय/देशी नियम लाने होगें। नियम सार्वभैमिकता एवं समसामयिकता का मिश्रण होना चाहिए एवं न्याय तुरंत राहत एवं दूरगामी न्यायप्रिय समाज की स्थापना करने वाला होना चाहिए।
2. शासन ऐसे विचार विमर्श को प्रोत्साहन देगा, ऐसे व्यक्तियों और समूहों को सामने आने में

मदद करेगा जो हमारी बुद्धिमत्ता और अनुभव का निचोड़ निकालकर, कानून की लगभग सारी किताबों को, हमारे संविधान को मिलाकर, नई तरह से लिख सकें।

3. शासन को वकीलों और जजों को भी शामिल कर ऐसी कमेटियों का गठन करना होगा, जो दूसरों के कानून, उनकी अनुशंसाओं का अध्ययन कर सके, और ऐसी सामूहिक अनुशंसाएं दे सकें, जिन्हें लोग समझें और स्वीकार कर सकें।
4. कानून के अलावा, शासन को हरेक ब्लॉक और जिले के लिए लोगों को ऐसे सम्माननीय व्यक्तियों की खोज के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए, जिनके शब्दों को जनता अपने लिए आदेश की तरह स्वीकार करती है।
5. शासन को अपने अंतर्राष्ट्रीय भाइयों और बहनों के साथ विचार विमर्श को जारी रखना चाहिए, ताकि अनुभवों का आदान–प्रदान हो सके, और व्यापक कल्याण के लिए अभिव्यक्ति के मंच बने रह सकें।

लॉ शब्द में हमें तो मांगने वाले की ध्वनि ही सुनाई देती है, जबकि नियम शब्द चूंकि वह नियामक से आता है अपना लगता है, तो क्यों नहीं कि अंग्रेजी में भी इसे ऐसा ही स्वीकार किया जा सके।

***

व्यवस्था

तंत्र कहता है कि वे जो पूरी तरह व्यवस्थित हैं, अगर कुछ भी कहते हैं तो वही आदेश हो जाता है, और केवल उन्हीं को आदेश देने का अधिकार है, जो कि स्वयं आदेश से संयमित हैं।

कोई भी प्रणाली (यहाँ तक की मशीने भी) जो स्वयं व्यवस्थित नहीं है, आदेशों का पालन नहीं कर सकती। अव्यवस्थितों को आदेश देना या अव्यवस्थित प्रणाली और व्यक्तियों के आदेश, तो और भी अव्यवस्था पैदा करते हैं। इससे तो समाधान ही समस्यायें हो जाते हैं, और हरके नई खोज और भी ज्यादा हस्तक्षेप को प्रोत्साहन देने लगती है।

यह वक्तव्य कि "आवश्यकता आविष्कार की जननी है", एक अव्यवस्थित प्रणाली में इस तरह बदल जाती है कि "आवश्यकता आविश्कार की सन्तान है"।

1. तंत्र स्वयं और प्रणाली को व्यवस्थिति करने के एक सौ बारह तरीके बताता है, इनमें सारे धर्मों और सारे समयों में खोजे जा सके, सारे परीक्षित तरीके शामिल हैं।

   किसी भी चीज को लागू करने के लिए आदेश जरूरी हैं। और जब कोई प्रकृति के साथ पूरी तरह अनुनादित होता है, केवल तभी आदेशों का पालन होता है और मनुष्य की प्रणाली उसे जैसे की तैसी लागू करती है। अगर कोई व्यवस्था में नहीं है, तो शायद ही कभी सही आदेश दिया जाता है और शायद ही कभी एक अव्यवस्थित प्रणाली उसे लागू करती है।

2. समाज को स्वयं और शासन को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया और व्यवहार को प्रोत्साहन देना होगा, ताकि आदेशों का सम्मान हो और उन्हें लागू किया जा सके।

3. जो स्वयं व्यवस्थित हों उन्हें ही सत्ता में होना चाहिए या फिर पथ प्रदर्शक, समालोचक या फिर मूल्यों के रक्षक या इनमें से सब। हमें प्रणाली की जाँच करनी चाहिए और अव्यवस्था पैदा करने वाले अवरोधों को हटाना चाहिए। एक व्यवस्थित प्रणाली में लोग अव्यवस्थित आदेशों से इनकार कर देंगे, और व्यवस्थित आदेशों को अंगीकार।

आइये हम व्यवस्थित होने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करें।

***

राजनीति का तथाकथित अपराधीकरण

शक्ति ज्ञान से बेहतर है।

''सैकड़ों बुद्धिमान ज्ञानी एक शक्तिशाली से डरते हैं, केवल शक्तिशाली ही अपने पैरों पर खड़े हो सकते हैं, अपने पैरों पर खड़े होने से ही गुरु की सेवा करने की शक्ति आती है, गुरु की सेवा करते–करते गुरु के पास बैठ सकने की क्षमता विकसित होती है, गुरु के पास बैठने से सुनने, सोचने और कर्म की शक्ति, और तभी कोई चैतन्य ज्ञानी अर्थात् विज्ञानी बनता है।

अगर कोई अपराधी है तो वह खुले में क्यों है ? उसे खुले में छोड़ने के लिए क्या हम खुद अपराधी या डरपोक नहीं है ? क्या उस आदमी का दिमाग ही अपराधी है या फिर हमने उस पर खुले घूमते किसी दूसरे अपराधी के विरोध करने के कारण अपराध का प्रकरण दर्ज कर दिया है ? फिर तो अच्छा ही होगा अगर हम तथाकथित अपराधियों को (अगर उनके दिल अच्छे हैं) आगे आने का मौका दें, इसकी जगह की सफेदपोश अपराधी वकीलों की फौज और उनके तर्को से सुरक्षित अपने आपको गऊ बताते हुए सिहांसनों पर विराजमान बने रहे।

1. राजनैतिक पार्टियों को यह देखना चाहिए कि क्या कोई वास्तव में अपराधी दिमाग का है, या सिर्फ साहसी दिल के अच्छे होने के कारण फंस भर गया है, ऐसे अच्छे लोगों को टिकिट (आगे आने का मौका) मिलने चाहिए, बुद्धिमान पाखण्डियों और संभ्रांत हरामखोरों के टिकिट कटने चाहिए।
2. न्याय को गतिशील बनाने के प्रयास जरूरी हैं, और न्याय को यह देखना कि क्या किसी व्यक्ति को जबरदस्ती अपराधी बनाया गया है, या फिर वह वास्तव में अपराधी ही है।

जहां वाल्मीकि और अंगुलीमाल ने जन्म लिया, वहां और क्या कहा जा सकता है ? यह उन सारे शक्तिशाली लोगों के लिए है जो दिल के अच्छे हैं, फिर चाहे उन्हें सजा ही क्यों न हो गई हो।

***

शपथ

भीष्म पितामह का जीवन यह बताता है कि शपथों से बंध जाना कितना खतरनाक हो सकता है।

बहुतों का कहना है कि शपथें तो तोड़नें के लिए ही ली जाती हैं, और बहुत से कहते हैं कि शपथें केवल दूसरों का विश्वास दिलाने के लिए ली जाती हैं, यानि या तो उनको धोखा देने के लिए या खुद को।

अगर शपथ लेना जरूरी है तो फिर सिर्फ ईश्वर का नाम काफी है।

आमतौर पर धर्म और धार्मिक संहिताएं हमसे शपथ लेने की मांग नहीं करतीं।

1. चुने हुए या नामांकित सदस्यों से शपथ का आग्रह आवश्यक नहीं, सिर्फ सहमति और प्रतिबद्धता का वक्तव्य हस्ताक्षर काफी है।
2. न्यायालयों में शपथ लेने की प्रणाली को बंद करना जरूरी है, तथा इसके स्थान पर कुछ और रख देना जरूरी नहीं, ऐसा न्यायालय में शपथ दिलाना ओर फिर उसे झूठ साबित करना अंतर्विरोधी है।
3. स्कूलों, शासकीय रोजगारों में सिर्फ प्रतिबद्धता के वक्तव्य काफी है, और इनको भी आवश्यक नहीं बनाया जाना चाहिए। बेहूदा तब लगता है जब हर वर्ष एक ही शपथ को दोहराया जाता है (जैसे आतंक विरोधी, भ्रष्टाचार विरोधी, इत्यादि) इसे बन्द कर इसके स्थान पर प्रतिबद्धता की सहमति लेना जरूरी है।

***

सरकार

कुछ भी संयोगवश नहीं है, कोई भी चीज दुर्घटनावश नहीं और न ही ऐसे ही, हरेक चीज प्रकृति की एक विराट योजना का हिस्सा है। चूंकि प्रकृति की योजना इतनी विराट है कि घटनाएं और प्रक्रियाएं संयोग नजर आती हैं, लेकिन जो प्रकृति के साथ स्पंदित हैं, उनके लिए जन्म से मृत्यु और फिर पुनर्जन्म तक हरेक चीज में एक क्रम है, एक लीला है।

जो प्रकृति में प्रयोग करते हैं, और जो प्रकृति का प्रयोग करते है और जो नहीं करते, वे सबके सब प्रकृति के प्रयोग/उद्‌भव/विकास के हिस्से हैं।

लिखित इतिहास में, शासन, जो पूरी अराजकता में से पैदा हुआ, एक के बाद एक धनुर्धारियों, धनुर्धारियों के समूहों, शरीर के धनुर्धारियों से मानसिक धनुर्धारियों, मानसिक धनुर्धारियों से सम्राटों और फिर कुलीन धनुर्धारियों के समूहों के हाथ जाता रहा। इन कुलीनों के शासन से, उनका अधिनायकत्व निकला, व्यक्तिगत या छोटे से समूहों के अधिनायकत्व से बहुमत का अधिनायकत्व पैदा हुआ, और इससे पैदा हुआ, वर्तमान लोकतंत्र (डेमोक्रेसी), और इससे निकलेगा दूसरों को दिखाने के लिए कुलीनता (लोकतंत्र) का शासन, आशा है कि आनेवाले अच्छे वक्त में लोक शासन में दिव्यता का द र्शन होगा एवं उसके बाद होगा दिव्यता का लोक ाासन।

अभी तो धरती पर शासन के सारे रूप मौजूद हैं, छोटे से बड़े स्तर तक, और चीजें अभी विकसित हो ही रहीं हैं। भारत वास्तविक अर्थ में प्रजातंत्र से, जनप्रिय कुलीनता की दिशा में गतिमान है, और ऐसी आशा है कि भविष्य में वह जनप्रिय कुलीनता में दिव्यता के तत्वों का समावेश करेगा, (निश्चित ही पुरोहितवाद का नहीं)।

1. शासकीय कर्मचारी (चाहे वह न्यायाधी ा ही क्यों न हो), जिन्हें हम आज शासकीय सेवक कहते हैं, उन्हें ऐसे ट्रस्टियों की जिम्मेदारी लेनी होगी जिन्हें अपने कार्य का पारिश्रमिक मिलता है। इस तरह के ट्रस्टियों के अलावा, वयोवृद्ध नागरिकों, धार्मिक प्रमुखों, और सार्वजनिक न्यासियों को साथ–साथ मिलकर शासन के प्रतिनिधियों का नामांकन, चयन निर्वाचन और अगर आवश्यक हो तो उनकी बर्खास्तगी और पुर्नर्निवाचन की जिम्मेदारी लेनी होगी।
2. जनप्रतिनिधित्व ऐसे लोगों के द्वारा होना चाहिए जिनके पास वैसे भी आय के पर्याप्त स्त्रोत हैं, ऐसे स्त्रोत जो सबकी जानकारी में हों। ऐसे जनप्रतिनिधियों को वापिस अपने पुराने कार्य को चुन लेने की पूरी छूट होनी चाहिए और वह भी पूरे सम्मान के साथ।
3. सर्वप्रथम हमें अपने आप पर अच्छा अनुकरणीय शासन स्थापित करना होगा, और तथा कथित सर्वख्याल रखने वाली (वेलफेयर स्टेट) के मोह से निकल कर समाज को सुदृण

करना होगा, तब जो भी शासन होगा वह अच्छा ही होगा और वह लोकतंत्र में दिव्यता का दर्शन करायेगी ही।

***

44

शासन की संघीय संरचना

अगर वोट प्रतिशत कोई संकेत देते हैं तो हम समझ ही सकते हैं कि, वर्तमान में केन्द्र सरकार के चुनावों में वोटों का प्रतिशत ऊँचा है, राज्य सरकारों के चुनावों में थोड़ा कम नगरीय निकायों के चुनावों में उससे भी कम, लेकिन ग्राम पंचायतों के चुनावों में यह प्रतिशत सबसे ऊँचा है। एक तरह से लोग सबसे पास की और सबसे बड़ी घटनाओं की सबसे ज्यादा चिन्ता करते हैं। बीच में मौजूद संस्थाओं के चुनावों के प्रति आमजन उदासीन होता चला जा रहा है इस प्रवृत्ति से न सिर्फ यह सवाल उठता है कि क्या राज्य सरकारें और नगरीय निकाय ठीक से काम कर रहे हैं या नहीं, बल्कि यह भी कि क्या इन संस्थाओं की कोई जरूरत है ?

1. बुद्धिमान और गरिमाशाली कहते हैं कि राष्ट्रीय परिदृश्य ऐसा हो गया है कि जैसे कि फटा पैन्ट और शर्ट, बिना बनियान के, उलझे और बिखरे हुए बाल, चेहरे पर थोक में पोती हुई क्रीम और साथ में निश्चित ही सोने और हीरों के जवाहरात, अनेकता में एकता के हमारे नारे का ऐसा दुष्परिणाम हो गया है। देश की हैलीकाप्टर से यात्रा करने पर भी ऐसे ही असामान्य विकास को देखा जा सकता है। असामान्य विकास, केन्द्रीय सरकार द्वारा उनके चहेती राज्य सरकारों को ज्यादा पैसा देने के कारण और भी बढ़ रहा है।
2. विभिन्न राजयों के ऐसे परिदृश्य के भीतर भी, आश्चर्य है कि, पोस्टऑफिस, रेलें, बैंक, पेट्रोल पम्प और सार्वजनिक क्षेत्र अखिल भारतीय स्तर पर बेहतरीन ढंग से काम कर रहे हैं। इसके लिए उनके सीमांतक और क्षेत्रीय कार्यालय ही पर्याप्त हैं।
3. हमें इन विषयों पर विचार विमर्श को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि हमारे राज्य हमारे लक्ष्य के अनुरूप संगठित हो सकें, हमें दस साल में एक विकसित भारत बनाना है और फिर धरती पर स्वर्ग जैसे भारत को साकार करना है। ये वे लक्ष्य हैं, जो भारत के लोगों ने अपने आप के लिए वैसे भी निर्धारित कर लिए हैं।

हमारे देश में न सिर्फ अच्छे नेताओं की कमी की समस्या है, बल्कि जरूरत से ज्यादा संख्या में नेताओं की। विभिन्न गतिविधियों के बीच आपसी समन्वय स्थापित करने के लिए, और आकार को परिस्थिति अनुकूल बनाने की दृष्टि से संस्थाओं के निर्माण के लिए और तथाकथित नेताओं के अनावश्यक बोझ से मुक्ति पाने के लिए, विचार विमर्श को प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

***

संविधान

1. हमारे यहाँ और वैश्विक गांव में बदलती हुई परिस्थितियां संकेत देती हैं कि हमें एक सरल, संक्षिप्त, लचीला संविधान बनाना चाहिए, जो कि वैश्विक दृष्टि रखता हो, लेकिन फिर भी अपने प्रयोग में पूरी स्थानीयता। हर बढ़िया खाद्य पदार्थ में से थोड़ा–थोड़ा ले लेकर जो पकवान हम बनाते हैं वे या तो सिर्फ कूड़ा हो सकते हैं, या फिर खिचड़ी, जो बीमार लोगों के लिए या पशुओं के लिए ही बेहतर है। पूरी दुनिया के सबसे बेहतरीन नमूनों में से चुन–चुनकर इकट्ठी कर ली गई चीजें केवल संग्रहालयों के लिए अच्छी हैं। दुनिया के सबसे बेहतरीन संकलन जैसे एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका बच्चों और आम आदमी के शायद ही किसी काम के हो, हां अगर जिंदगी कौन बनेगा करोड़पति के उत्तर देने के लिए ही बनी हो तो और बात है।

   कोई भी ऐसा संविधान जिसकी कोर्टो न्यायालयों द्वारा पुर्नव्याख्या की जा सके, जिसके आधार पर एक संसद सदस्य को सिर्फ लाभ का पद की परिभाषा और उसकी उपयोगिता के कारण हटाया जा सके, या जो संसद और सर्वोच्च न्यायालय के बीच में जिम्मेदारियों और अधिकारों के विभाजन के प्रश्न पर दरार पैदा कर सके, एक ऐसा संविधान माना जा सकता है, जिसके एक वाक्य के कई अर्थ निकलना संभव हैं। ऐसे बहुअर्थी वाक्यों से भरे हुए संविधान अपने घटकों की कोई सहायता नहीं कर सकता, और न ही ये प्रकृति के साथ और वक्त के साथ चल सकता है ओर तरोताजा दिख/रह सकता है।

2. इस तरह के पूरी तरह पवित्र लेकिन फिर भी लगातार संसोधित किए जाते, साफ लेकिन फिर भी हर समय पुर्नपरिभाषित होते, अच्छी तरह से वितरित लेकिन फिर भी शायद ही कभी संदर्भित संविधान के प्रति, हमें एक सम्यक दृष्टिकोण लेने की आवश्यकता है, और अगर संभव हो तो बहुत से स्वतंत्र रूप से काम कर रहे समूहों को संविधान के निर्माण, इसके रूपांतरण या एक बिल्कुल ही नए संविधान के निर्माण के काम में लगाने की जरूरत है, और तब उनके संयुक्त प्रयासों के प्रतिफल को सर्वसम्मति के लिए देश के सामने रखने की।

3. हम चुनाव पर चुनाव किए जाते हैं, और संविधान में परिभाषित, लोकाज्ञा को ढूंढते फिरते हैं, लेकिन आश्चर्यजनक तो यह है कि देश के पुरुषों और महिलाओं से इस संविधान को ही आजतक कोई सीधी स्वकृति प्राप्त नहीं हुई। बहुत अच्छा होगा अगर हम अपनी पुरानी गल्तियों को सुधारें और स्वयं संविधान की लोकस्वीकृति के लिए जनादेश प्राप्त करने हेतु , इसे देश की जनता के सामने रखें।

***

राष्ट्रीय ध्वज/राष्ट्रीय गीत एवं राजधानी

तीन रंगों के बहुत गहरे अर्थ हैं, चक्र गतिशीलता का द्योतक है और नीला रंग स्थिरता का। सफेद पृष्ठभूमि में नीले रंग का चक्र अंर्तविरोधी है और ऐसे अंर्तविरोध इस ध्वज को उठाकर चलनेवाले और उसके रास्ते को भी अंर्तविरोध से भर देते हैं। केशरिया ध्वजा पर, श्वेत चक्र अपनी जाजल्यमान लाल परिधि के साथ सर्वोत्तम है।

बहुत से देश अलग होने या फिर मिल जाने के रास्ते पर हैं, और इससे दुनिया के बहुत से हिस्सों में राष्ट्रीय ध्वजों में परिवर्तन की जरूरत पैदा हुई है, हमारा क्षेत्र, अफ्रीका, अमेरिका और अंततः यूरोप भी इस जरूरत को अनुभव करेंगे।

अगर हमारा पाकिस्तान और बंग्लादेश के साथ एकीकरण होता है तो हमें भी राष्ट्रीय ध्वज, गीत एवं राजधानी में परिवर्तन की जरूरत पड़ सकती है।

***

47

संसद

संसद को हमने भूतों का अड्डा बना दिया है, हर कोने में प्रतिमाएं। इतनी सारी प्रतिमाओं में संसद की जीवंतता समाप्त कर दी है। धरती भारत माता की एक मूर्ति भी जरूरत से ज्यादा होती, इससे तो धर्म ग्रंथों (गीता, कुरान, गुरूग्रंथ साहिब आदि) के उद्धरण और हमारे देवी–देवताओं के चित्र ही बेहतर होते, और वे हमारी धर्मनिरपेक्षता को भी ज्यादा अच्छी तरह दिखाते।

1. बहुतों को लगता है कि संसद और सर्वोच्च न्यायालय अंग्रेजों द्वारा छोड़ी गई विरासत के दो अंतिम शेष प्रतीक हैं, जो उनकी ही उपस्थिति के द्योतक हैं, उनको तो ध्वस्त करना ही उचित है, और सभी धर्मो के बुनियादी सूत्रों के ऊपर आधारित, और प्रकृति के साथ संवेदित होने वाली एक पूरी नई प्रणाली के निर्माण का प्रारंभ आवश्यक।
2. अगर हमें लगता कि देश को–विजेता सब कुछ ले लेता है और हारा हुआ सब हार जाता है कि धारणा से आगे बढाना है एवं चुनावों में दूसरे और तीसरे स्थान पर आये हुए दल/पार्टियों एवं प्रत्याशियों के कार्य का भी सहयोग हितकर होगा तो इसके लिए हमें देश में संसद के एक–दो और संस्करण की स्थापना करनी होगी।

***

योजना आयोग (प्लानिंग कमीशन)

यह नाम प्लानिंग कमीशन अच्छा नहीं है, योजना निर्माण पर कमीशन देने की क्या आवश्यकता है, इसमें तो योजना में से बहुत सी आवश्यक चीजें छूट जाने और अनावश्यक शामिल हो जाने का पूरा खतरा निहित है, इस बात की पूरी संभावना है कि इस तरह का आयोग देश के कुछ समूहों का ही ध्यान रखें, न कि पूरे देश का।

चाहे सरकार किसी की भी बनें या इसका कैसा भी स्वरूप हो योजना आयोग में सम्माननीय और योग्य, गुरुओं की तरह आदरणीय व्यक्तियों को शामिल किया जाना जरूरी है, चाहे उनकी जाति, धर्म और क्षेत्र से संबंधित प्रतिबद्धताएं कुछ भी क्यों न हों। आज के कंसल्लटेंट (सलाहकार–राय देनेवाले) किसी भी काम के नहीं हैं, नीली छतरी के नीचे मौजूद किसी भी चीज के बारे में कोई भी कंसल्लटेंट कुछ भी राय दे सकता है, बस फीसें भारी होना चाहिए, उन्हें योजना की पूरी प्रक्रिया से बाहर रखना सबसे ज्यादा जरूरी है।

योजना और योजना में राजनैतिक प्रतिबद्धता दो स्तर पर जरूरी है–

1. कि हम जब एक सामान्य जिन्दगी गुजारते है तो हमारी आवश्कतायें क्या हैं, और इन्हें जाँचा परखा गया है या नही देखना जरूरी है।
2. क्या यह आवश्यकतायें जायज हैं, इन्हें पूरा भी किया जा सकता है या नहीं और इन्हें राष्ट्र स्तर पर लागू करने के पहले छोटे एवं स्थानीय स्तर पर प्रयोग के रूप में लागू करके देखना जरूरी है ।

स्थानीय, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर समन्वित योजना केंद्र ही आदर्श हैं।

***

राजनैतिक पार्टियों को राजकीय अनुदान

हर किसी को मालूम है, हर कोई यह समझता है किसी भी संगठन या संगठनात्मक गतिविधि को चलाने के लिए लोग भी लगते हैं और पैसा भी, और जैसे–जैसे काम जिम्मेदारियां और इसके साथ जुड़ी हुई मानवीय श्रमशक्ति वृहदाकार होती चली जाती है, जरूरतें बढ़ती चली जाती हैं।

आज की स्थिति में जहां राजनीतिक पार्टियां अप्रत्यक्ष रास्तों से धन इकट्ठा करने के लिए बाध्य हैं, वे उन्हें चंदा देने वाले लोगों की इच्छा के अनुरूप उनके चंदे के अनुसार उन्हें प्रतिदान देने के लिए भी वे बाध्य हैं और सामान्यतः यह प्रतिदान चंदा देने वालों को सरकारी पक्षपात के रूप में दिया जाता है, इसका स्वाभाविक परिणाम है शासन का पक्षपातपूर्ण रवैया और इस पक्षपात पर पर्दा डालने के लिए पारदर्शिता को पिछले दरवाजे से बाहर कर देना। राजनैतिक पार्टियों का धन प्राप्त करने का यह अप्रत्यक्ष ढंग किसी भी देश के नागरिकों और करदाताओं पर करों का भार घटाने की बजाय और ज्यादा दबाव पैदा करता है।

राजनैतिक पार्टियों की जरूरतों, उन्हें सीधा राजकीय अनुदान देने के फायदों और इन अनुदानों पर अंकुश लगाने के तरीकों पर विचार करने के बाद, इसे लागू किया जाना और मोटे तौर पर आठ साल के बाद इसकी समीक्षा करना जरूरी है। शुरूआत के लिए सांसदों की संख्या, पार्टी के सदस्यों की संख्या, पार्टी की उम्र एवं अन्य कुछ पैमाने पर सकल घरेलू आय का एक फीसदी पैसा दिया जा सकता है।

इस कार्य में मीडिया की बड़ी भूमिका है और जिम्मेदारी।

***

चयन/चुनाव प्रक्रिया

भारत और पूरी दुनिया में भी छात्रों को आम परीक्षाओं में पैंतीस प्रतिशत और उन परीक्षाओं में जिनके परिणाम में जिंदगी दांव पर लगी होती है पचास प्रतिशत अंकों पर पास कर दिया जाता है, और इसके बाद भी अगर कोई पहली बार में फेल भी हो जाता है तो उसे दुबारा बैठने का मौका भी मिलता है। जनतंत्र में, राजनैतिक पार्टियों के लिए चिकित्सा परीक्षाओं के पचास प्रतिशत अंकों और पूरक परीक्षाओं की पात्रता के जैसे मापदंडों का हम अपने जनतंत्र में प्रयोग कर सकते हैं।

(अ) ऐसा देखा गया है कि चयन प्रक्रिया द्वारा चुने हुए व्यक्ति, चुनाव प्रक्रिया द्वारा चुने हुए व्यक्तिओं से बेहतर परिणाम देते हैं, इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि हम आपस में सलाह, चर्चा और फिर चुनाव प्रक्रिया के स्थान पर चयन प्रक्रिया को लोकतंत्र में स्थापित/लागू करें। भ्रुरूवाती दौर में विधायक से नीचे के (जनता के प्रतिनिधियों) सभी पद चयन प्रक्रिया से भरे जाये एवं इसके सफल परिणामों के बाद विधायक एवं सांसद भी इसी प्रक्रिया द्वारा चुने जाये।

1. बैंक एकाउण्ट से सत्यापित हो सकने वाले पासवर्ड के द्वारा इंटरनेट के जरिए भविष्य के चुनाव कराए जा सकते हैं। इन चुनावों में इस बात का प्रावधान होना चाहिए कि मतदाता किसी को भी न चुनें, उम्मीदवारों में से किसी को भी चुन लें, या अपने पसंद के किसी और ही आदमी के पक्ष में वोट दे दें। इसके लिए शिक्षा विभाग की परीक्षाओं के डाटाबेस, बैंक एकाउंट, भूअभिलेख, कर विभाग, पासपोर्ट और राशनकार्ड आदि की मदद ली जा सकती है। अगर किसी को भी न चुनने वाले वोट किसी भी अन्य को दिये गये वोट से ज्यादा है तो राजनैतिक पार्टियों को उम्मीदवार बदलना होगा और चुनाव अधिकारी को फिर से चुनाव करवाना होगा।

2. अगर कोई चुनाव में भागीदारी नहीं करता तो ऐसे हरेक करदाता पर कुछ आर्थिक दंड जरूर लगाया जाना चाहिए, करदाताओं से जागरूक व्यक्ति होने की अपेक्षा की जाती है और अगर ऐसे लोग अपनी जिम्मेदारियों को पूरा नहीं करते तो उनके लिए दंड आवश्यक है। चुनाव के वर्ष में आयकर के वक्तव्य में चुनाव में वोट दे देने की पर्ची जरूर शामिल की जानी चाहिए।

3. इस प्रणाली को भी जीतने वाले को सब मिल जाता है, और हारने वाला सब खो देता है, बदलने की जरूरत है। खेलों में जीतने वाले को स्वर्णपदक दूसरे स्थान पर रहने वाले को रजतपदक और तीसरे स्थान पर रहने वाले को कांस्यपदक मिलता है और सांतावना पुरुषकार भी, ऐसा ही राजनीति में होना जरूरी है, जो जिस स्थान पर आया है उसे उसके अनुरूप जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। इस विषय पर राजनीतिक पार्टियों के बीच में

आमसहमति आवश्यक है। दस टन सोने से बड़े किसी भी राष्ट्रीय निवेश में या युद्ध संबंधी किसी भी निर्णय में सभी स्तर पर राजनीतिक पार्टियों के बीच में मतैक्य आवश्यक है या इसके लिए सीधे जनता से सहमति ली जा सकती है।

4. जनतंत्र की हमारी प्रणाली में अच्छे नेताओं की कमी से भी बड़ी समस्या है नेताओं की बड़ी फौज की। जरूरत इस बात की है कि हम अपनी संपूर्ण प्रणाली में से चयनित संस्थाओं और नेताओं की संख्या को कम करें। इतने सारे निर्वाचित नेता, समस्या यह हो गई है कि बहुत सारे रसोइए न सिर्फ खाने को खराब कर देते हैं बल्कि खाना बनने के पहले ही खत्म एवं हजम हो जाता है, भूखों को भोजन देने की बात तो बहुत दूर है।

5. चूंकि जनतंत्र इस बात का आइना है कि मतदाता बुद्धिमान हैं, और अगर मतदाता बुद्धिमान हैं तो भारत के हरेक स्थाई नागरिक को (कार्यरत शासकीय कर्मचारी को भी) चुनाव लड़ने का अधिकार होना चाहिए, निश्चित ही (जेलों में बंद, दिवालियों और शारीरिक और मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों को छोड़कर)। जिस पद के लिए चुनाव लड़ा जा रहा है, उससे प्राप्त होने वाली आयों का चार गुना सुरक्षानिधि के रूप में जमा होना चाहिए। विदेशी नागरिक, बीस साल तक भारत की नागारिकता का प्रमाणपत्र रखने पर देश का स्थाई नागरिक और चुनाव लड़ने में सक्षम व्यक्ति हो जाना चाहिए।

6. चयन/चुनावों की जिम्मेदारी देश के राष्ट्रपति की तरह किसी चयनित व्यक्ति को ही दी जानी चाहिए, और किसी भी विवाद की स्थिति में उसका मत अंतिम होना चाहिए, इन विवादों में न्यायालयों को घसीटना ठीक नहीं।

7. राष्ट्रीय चुनाव की प्रक्रिया के दौरान केवल राष्ट्रीय मंत्रिमंडल को छोड़कर, सारे निर्वाचित निकायों को भंग कर दिया जाना चाहिए ताकि स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव संभव हों।

हमें अपनी चुनाव/चयन प्रक्रिया को और सुदृढ़ करना है, और इसे अप्रत्यक्ष दबावों से मुक्त बनाना है जिससे हम अच्छे चयनित नेता देश को दे सकें।

***

अंतर्राष्ट्रीय भाईचारा

अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे या परिवार की भावना जिसे हम वसुधैवकुटुम्बकम् कहते हैं, दुनिया में अभी भी देखने को मिलती है। जब भी कहीं कोई आपदा आती है सुनामी, भूकंप या चक्रवात सारी दुनिया के हर कोने से सहायता आनी शुरू हो जाती है। फिर भी कौन कितनी सहायता देगा, यह उसकी क्षमता पर निर्भर है और आपदा स्थल के देश से उसके संबंध पर भी। उदासीन, परिचित, घृणा करने वाले और फिर प्रेम करने वाले, इसी क्रम से लोगों की मदद बढ़ती चली जाती है।

दया, घृणा और प्रेम का मिलाजुला रूप है। जब दया और प्रेम एक साथ आते हैं तो सहानुभूति उमड़ती है। सहानुभूति और प्रेम सर्वकल्याण की भावना बन जाते हैं। सर्वकल्याण की भावना बढ़ती है तो वह प्रेम ही हो जाता है,

जिन समाजों और देशों में उदासीनता फैल गई है, उनका क्या किया जा सकता है। लेकिन जहां दुश्मनी और घृणा अभी भी जारी है, वहां कुछ समय बाद या तो उदासीनता होगी या प्रेम। अगर बढ़ते हुए संबंधों में उदासीनता आने लगती है तो फिर संबंध फिर से परिभाषित होने लगते हैं, लेकिन अगर लगातार बढ़ती हुई घृणा या प्रेम का वातावरण है वहां युद्ध या आपसी समझदारी, किसी न किसी तरह से एकीकरण तो होना ही है।

1. सारी दुनिया में उदीयमान प्रवृत्तियां हमें यह संकेत दे रही हैं कि समाजों धर्मों और देशों के बीच में समावेशीकरण की प्रक्रिया शुरू हो चुकी है। इसे घृणा और प्रेम दोनों के ही विस्तार में देखा जा सकता है।
2. जो धर्म और देश किसी खास समय पर पैदा हुए थे, उन्हें तो ऐसे धर्मों और देशों में डूब ही जाना है, जिनका काल और इतिहास सनातन है, प्राकृतिक और नितनूतन।

चूंकि भारत ही वसुधैवकुटुम्बकम की भावना का जन्मदाता है, इसलिए उसे ही देश को सारी दुनिया के बृहत्तर परिवार के भीतर एक छोटे परिवार की तरह देखना सीखना है, और सिखाना हैं।

आने वाले किसी अच्छे दिन वैश्विक परिवार एक सच्चाई होगी।

***

कर्म, भक्ति, ज्ञान, राजयोग और इनके संयोग

1 मोटा आदमी ज्यादा खाता है, और इसीलिए उसे ज्यादा नींद आती है, और फिर वह कम काम कर पाता है, जिससे उसका वजन और बढ़ जाता है, इस तरह चक्र चलता रहता है। दूसरी तरफ काम करने वाले लोग हैं, वे ज्यादा काम करते हैं इसलिए ज्यादा चुस्त/फुर्तीले रहते हैं, इसलिए वे और ज्यादा काम कर सकते हैं, इस तरह निरंतर अधिक से अधिक काम करते हुए, अपने कर्म के द्वारा वे जो कुछ चाहते हैं प्राप्त कर लेते हैं। इन्हें हम कर्मयोगी कह सकते हैं।

2 दूसरे इस तरह के लोग हैं जो पढ़ते–लिखते हैं, वे ज्यादा योजनाएं बनाते हैं, और इनके परिणाम में इनके पास समाधान के लिए शंकाएं इकट्ठी होती चली जाती हैं। इस तरह के लोग जो अपनी बुद्धि, ज्ञान और अध्ययन के आधार पर अपना सहयोग देते हैं और कुछ प्राप्त करते हैं इन्हें हम ज्ञान योगी कह सकते हैं।

3 तीसरे तरह के लोग अपने मालिक की खुशामदी, मक्खनबाजी और उनका गुणगान करते रहते हैं और ऐसा करने से उन्हें अपने मालिक की अधिक से अधिक सेवा का अवसर प्राप्त होता है और फिर जो कुछ भी वे चाहते हैं, वह उन्हें अपने वरिष्ठों, मालिक या परमात्मा की भक्ति से प्राप्त हो जाता है, इन्हें हम भक्ति योगी कह सकते है।

4 चौथी तरह के लोग उपरोक्त तीनों तरह के लोगों की सेवाओं का उपयोग इस तरह करते हैं कि इनका भी भला हो और उनका भी, और वे जो कुछ चाहते हैं उसे वे इस सामूहिकता को बनाकर प्राप्त कर लेते हैं, इन्हें हम राजयोगी कह सकते हैं।

5 पाँचवीं तरह के ऐसे भी लोग हैं जो ऊपर लिखे सारे लोगों को समझते हैं, उन्हें ध्यान से देखते हैं, उनमें से किसी के या सभी के साथ काम कर सकते हैं, लेकिन फिर भी हमेशा स्वतंत्र बने रहते हैं, इन्हें हम संत या सूफी कह सकते हैं।

(अ) अगर पहले चार तरह के लोग अपना काम बंद कर दें तो वे शून्य में जा गिरेंगे और अगर वे आगे की ओर यात्रा करते रहें तो ये परम कामना की ओर आगे शून्य हो या अनंत बढ़ेंगे। चाहे यह कामना पैसे की हो, नाम की या यश की। पांचवीं तरह के लोग तो चाहे कुछ न हो या सब कुछ हो जाए अपने में लगातार जीवंत बने रहेंगे।

(आ) सभी प्रकार के योगों में से किसी एक प्रकार के योग में प्रविश्ट करने और फिर उसमें स्थिर होने तक निम्न लिखित चरण हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और फिर समाधि। योग– प्रण (यम) से भुारू होकर नियमों (आहार–प्रत्याहार) से निकलता हुआ आसन (बैठना सीखना) से प्रणायाम (प्राण–दिल लगाकर करना) के द्वारा ध्यान (चित्त) से धारण (समाहित) करने पर समाधि (स्थिरता, मुक्ति) घटित होती है। उदाहरण

के लिए अगर कार चलाना हो तो पहले प्रण, फिर नियम, फिर कार में बैठना, फिर दिल लगाकर सीखना, फिर ध्यान से चलाने से धीरे–धीरे धारणा (ारीर में समाहित) बनती जाती है और फिर इन सबसे मुक्ति मिलती है और हम समाधिस्ठ (स्थिर) होकर कार चलाते है– ऐसे ही सभी प्रकार के योगों के लिए क्रम है।

योग केवल भारीर और सॉसों की व्यायाम या कसरत ही नही है योग मतलब भारीर, दिल, दिमाग, चेतना को एक साथ एक क्रम में करना या आंतरिक एवं वाह्य चेतना को जोड़ना है।

ये सब व्यक्तियों की ही प्रवृत्तियां हैं, इनमें शासन/सरकार क्या कर सकता है, सिवा उन्हें समझने के।

पांचवीं तरह के लोगों का आर्शीवाद बना रहे यह एक स्वस्थ समृद्ध और पवित्र देश और समाज के लिए एवं समाज के जिंदा बने रहने के लिए जरूरी है।

***

जीवनकाल और इसका विभाजन (आश्रम व्यवस्था)

हरेक बारह साल में सूर्य में एक छोटा नाभिकीय विखण्डन होता है और इनमें से हरेक आठवें यानि करीब छियानवे साल में बड़ा नाभिकीय विखण्डन। पहले अड़तालिस साल तक सूर्य की ऊर्जा बढ़ती चली जाती है और बाद के अड़तालिस सालों में यह ऊर्जा कम होती चली जाती है। छोटे विखण्डनों के बीच के बारह साल के समय में भी, शुरू के छः साल ऊर्जा बढ़ती है और बाद के छः साल में कम होती जाती है। इस तरह दो बड़े विखण्डनों के बीच में, दो धाराय० होंगी, आठ चक्र और सोलह उपचक्र। सौर ज्योतिष के सिद्धांतकार, सूर्य के आये इन परिवर्तनों को मानव जीवन की अवस्थाओं के साथ जोड़कर देखते हैं और इनसे ही भारतीय आश्रम व्यवस्था पैदा हुई है।

मनुष्यों में जीवन के पहले बारह साल बाल्यावस्था होती है, इस दौरान लड़के और लड़कियां एक ही तरह से बढ़ते हैं। बारह से चौबीस साल तक को हम किशोरावस्था और नवयुवास्था कह सकते हैं, इस दौरान यौन ऊर्जा जागृति होती है, अध्ययन और ज्ञान बढ़ता है। चौबीस से अड़तालिस साल तक यौन की ऊर्जा का संतानोत्पत्ति एवं उनके लालन–पालन के लिए प्रयोग होता है, घर में बच्चों का जन्म होता है और पारिवारिक जीवन। अड़तालिस से चौव्वन साल के बीच में यौन ऊर्जा विदा होती है और एक नया जीवन शुरू हो जाता है। अब तक बच्चे भी बड़े हो गए होते हैं और वे घर की जिम्मेदारियां संभाल लेते हैं और इस उम्र में अब आदमी को बाहर देख पाने की मोहलत मिलती है और इसके लिए प्रेरित भी किया जाता है। बहत्तर से अठहत्तर साल की उम्र के बीच तो बच्चों के बच्चे भी शादी लायक हो जाते है। जब बच्चों के बच्चे भी बाहर निकलने के काबिल हो जायें, तो समझ लेना चाहिए कि अब परिवार की जिम्मेदारियों को पूरी तरह छोड़ने का वक्त आ गया है, और यह माना जा सकता है कि व्यक्ति ने अपने परिवार के प्रति अपनी सारी जिम्मेदारियां पूरी कर दी हैं, यह अपनी मर्जी से जीने का ;सन्यासद्ध का समय आ गया है और यह सब बहत्तर–अठहत्तर वर्ष की उम्र तक चलता है।

1. आश्रम व्यवस्था एक अच्छी श्रम व्यवस्था है। आश्रम व्यवस्था व्यक्तियों के लिए जाति व्यवस्था की तरह ही एक श्रम व्यवस्था है ।
2. आश्रम व्यवस्था को ध्यान में रखे तो, शादी लगभग चौबीस साल की उम्र में होनी चाहिए।

3. शासकीय सेवा से निवृत्ति लगभग अड़तालिस–चौव्वन साल की उम्र में शुरू हो सकती है।

4. बच्चों की शिक्षा को छः साल की उम्र से शुरू किया जाना चाहिए, और उन्हें बारह साल की उम्र तक एक समान शिक्षा मिलनी चाहिए। बारह से चौबीस साल की उम्र तक लड़कों और लड़कियों की शिक्षा अलग–अलग होनी चाहिए। यौन और पारिवारिक शिक्षा अठारह से चौबीस साल की उम्र जिसमें शादी भी हो सकती है में उचित है।

5. अड़तालिस से बहत्तर साल तक उम्र में लोगों को परिवार और सामाजिक सेवा में शामिल किया जाना चाहिए, ये लोग सलाहकार बन सकते हैं, इन्हें चीजों की देखरेख करना आता है, ये राजनीति, प्रशासनिकए शिक्षा, सर्तकताए सुझाव एवं गुणवत्ता नियंत्रण और न्याय व्यवस्था में भूमिका निभा सकते हैं।

6. बहत्तर साल की उम्र के बाद तो लोगों को शिक्षा प्रणाली में शामिल होकर अपने जीवन अनुभव नए लोगों को सौंपना ही उचित है।

7. आश्रम व्यवस्था में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में भगवान की पूजा एवं पूजा पद्धतियों का ज्ञान अर्जन करना चाहिए, ब्रह्मचर्य आश्रम में कर्म जी पूजा है एवं कर्म ही योग और फिर गृहस्थ आश्रम में मूर्ति पूजा करनी चाहिए। मंदिरों, मस्जिदों, गुरूद्वारों, चर्चो को अगर ध्यान से देखे तो पायेंगे कि सारे मंदिर पद्मासन में बैठी हुई गर्भवती स्त्री के आकार के होते है और गर्भगृह गर्भ के समकक्ष स्थान पर ही होता है। गृहस्थ आश्रम में मूर्ति पूजा इसलिए बताई गई है कि गृहस्थ स्त्री पुरूश आने वाली संतानों मे अल्ला/ब्रह्म का रूप देखें, गृहस्थ आश्रम में पूजा/भक्ति योग ही प्रमुख है। इसके बाद वानप्रस्थ आश्रम में जप स्त्रोत (मंच उच्चारण, माला जपना) एवं ज्ञान योग की प्रमुखता होती है। उसके बाद सन्यास आश्रम में निराकार की अराधना करनी चाहिए और इसमें राजयोग की प्रमुखता होनी चाहिए और इसके बाद कोई भातायु पार करता है तो कहा जाता है कि वह स्वयं की अराधना/पूजा कर सकता है या कोई और तरीका जो उन्हें पसंद हो।

फिर अपवाद आखिरकार अपवाद ही हैं।

***

वर्ग, जाति या वर्ण व्यवस्था

(क) अगर हम पश्चिमी समाज को देखें तो वहाँ में लोगों के निम्नलिखित तरह के समूह दिखेंगेः–

1 योजना शोध एवं विकास, विज्ञान में लगे लोग यानि कि बुद्धि और प्रज्ञा का उपयोग करने वाले व्यक्ति और इनमें से बुद्धि और प्रज्ञा का उपयोग एक बाहर की ओर करता है और दूसरा भीतर की ओर। यह वर्ग अपनी बुद्धि और प्रज्ञा के द्वारा सत्ताधारी और व्यापारी वर्ग को समाज को ठीक–ठीक चलाते रहने के लिए सहयोग देता है।

2 सत्ताधारी वर्ग (अधिकांशतः गोर वर्ण) राजनैतिज्ञ, – सेनाएं और पुलिस। इनमें से एक की वीरता ज्यादा परिष्कृत होती है जबकि दूसरे की ज्यादा मोथरी और शारीरिक। इनमें से एक के शासन का तरीका उच्चस्तर का होता है जबकि दूसरे का निम्नस्तरीय। यह वर्ग योजना–शोध द्वारा बनाए गए नियम और प्रावधानों के द्वारा समाज को ठीक–ठीक चलाने की जिम्मेदारी लेते हैं।

3 व्यापारी वर्ग, इनमें एक ओर उद्योगपति हैं, नया करने का साहस रखने वाले और दूसरी ओर स्टॉक एक्सचेन्ज केक्त ब्रोकर्स/दलाल हैं केवल गुणन्तान और दिमागों खेलों में लगे व्यापारी लोगों के ये दो समूह हैं, एक साहस का उपयोग ज्यादा करता है और दूसरा बुद्धि का।

4 और सेवा नौकरी करने वाले लोग, ऊपर के तीनों वर्गों का काम चलाते, ज्यादा कर्मशील लेकिन निर्भर वर्ग के लोग।

हांलाकि अमेरिका में यह विभाजन क्षैतिज है, लेकिन इतनी ज्यादा आजादी के बाद भी इसमें भी ऊंचे और नीचे का विभाजन हो रहा है। अगर हम सारी दुनिया को देखे, तो भी ऐसा ही दिखाई देता है, यहां तक कि इसको कुदरती माना जा सकता है। हम यह भी देख सकते हैं कि, हांलाकि एक वर्ग के लोग दूसरे में आते–जाते रहते हैं, जैसे कि उद्यमी ,व्यापारी औद्योगिक, घराने के लोग राजनीति में जाते हैं, या फिर स्टॉक के दलाल शोध एवं विकास के कार्य में जाते है, लेकिन शायद ही कभी कोई व्यापारी वर्ग, निम्नस्तर के पुलिस, सेना, मजदूरी के काम में जाता हो।

(ख) यह पश्चिम की स्थिति है, अगर इसकी भारतीय जाति व्यवस्था से तुलना करें तो ऐसा लगता है कि यह हमारी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्व और शूद्र की व्यवस्था से किसी भी तरह अलग नहीं है, और हम यह भी कह सकते हैं कि इस तरह के क्षैतिज विभाजन के

प्राकृतिक अस्तित्व को, पहले से जान लेने के कारण हम अपने पर गर्व कर सकते हैं। वक्त के साथ, जैसा कि हर जगह हुआ है, भारत में भी इस व्यवस्था ने क्षैतिज के स्थान पर ऊंच–नीच का रूप ग्रहण कर लिया, लेकिन यह विभाजन अब फिर से क्षैतिज होता चला जा रहा है। शर्मा बूट हाउस या अहिरवार ज्योतिष केंद्र इसके उदाहरण है, लेकिन इस प्रक्रिया पर ध्यान देने एवं नियंत्रण रखने की आवश्यकता है।

(ग) ऐसा कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवनकाल में इन चारों वर्गो/जातियों से गुजरता है। चौबीस वर्श तक सेवा (सूद्र), चौबीस–अड़तालिस तक वै य (व्यापारी), अड़तालिस–बहत्तर तक क्षत्रिय एवं बहत्तर–छियानवे तक ब्राह्मण।

फिर ऐसा भी कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भारीर में ही इन चारों वर्गों (जातियों) को समाये हुए है, हाथ–पैर (सूद्र–सेवा , पेट–प्रजनन (वैशय–व्यापारी), छाती (क्षत्रिय), सिर (ब्राह्मण)।

इन दोनो को देखते हुए ऐसा कहा गया है कि जैसे भारीर में खाना पेट के पास आता है और वह आव यक उर्जा हथों–पैरों (सूद्र) , पेट–प्रजनन (वैशय), छाती (क्षत्रिय), एवं सिर (ब्राह्मण) को देता है इसी तरह यह चौबीस–अड़तालिस वर्श के व्यक्तियों (गृहस्थ आश्रम) की जिम्मेदारी है कि वह परिवार के ब्रह्मचारियों, गुहस्थ, वानप्रस्थियों एवं सन्यासियों की देख–रेख करें।

ऐसा ही समाज में वै य (व्यापारी) वर्ग की यह जिम्मेदारी है कि वह सूद्रों (सेवा), वैशय (व्यापारी) स्वयं, क्षत्रियों की एवं ब्राह्मणों की देख–रेख करें। इसी तरह सभी वर्गों की जिम्मेंदारी है कि वह अपनी एवं अन्य वर्गों के प्रति अपनी जवाबदेही का निर्वाह करे।

अगर वै य कहे कि सारा मै ही खाउॅगा, या क्षत्रिय कहे कि मै हाथ–पैर–सिर की रक्षा नही करूॅगा, या ब्राह्मण (सिर) कहे कि मैं सबका ख्याल नहीं रखूॅगा, हाथ–पैर कहे कि भारीर की सेवा नही करूॅगा तो यह भारीर में बड़ी विकृति ले आयेगा। ऐसा ही परिवार में गृहस्थ कहे कि वह अपनी और अपने बच्चों का, वै य कहे कि वह अपनी एवं अपने कामगारों का ही खयाल रखेंगा तो यह परिवार एवं समाज में विकृति ले आयेगा एवं कुछ समय बाद ऐसा भारीर, परिवार एवं समाज खत्म हो जाता है।

(घ) भारत मे साधुओं के पॉचवें वर्ग को भी स्थान दिया गया है :

'' जात न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान,

मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान ''।

साधुओं के अलावा एक और वर्ग भी है। यह किसी भी वर्ग का काम कर सकने में सक्षम है, लेकिन एक समय में केवल एक ही का। इस वर्ग का गुरुओं और ऋषियों की तरह सम्मान किया जाता है। अंतिम वर्ग तो निश्चित ही परमात्मा का ही क्षेत्र है।

पवित्रता के साथ हमें इस सार्वत्रिक विभाजन को स्वीकार करना चाहिए।

1. शासन को उन सारे अदृश्य तरीकों को हटा देने के काम को समर्थन देना चाहिए, जो इस विभाजन को ऊंच और नीच में बदल देते हैं। सारे पूजा स्थलों को हरेक जाति और

वर्ग के लोगों के लिए खुला होना चाहिए, और उल्लंघकर्ता को कड़ा दंड। भारत को अछूत प्रणाली को पूरी दुनिया से हटाने के काम को अपने हाथ में लेना चाहिए। जैसा कि यरूशेलम, मक्का या मदीना में होता है, लेकिन इसके लिए यहां आने वाले श्रद्धालुओं के लिए भी जरूरी है कि वे स्थान की पवित्रता का ध्यान रखें।

2. आरक्षण कुल रोजगारों के केवल दो प्रतिशत, शासकीय रोजगारों के लिए हैं, इससे दलितों की स्थिति किस तरह सुधर सकती है ? वर्गों और धर्मों के बीच में सेवा करने वाले वर्ग, जिन्हें शूद्र (कर्मचारी/नौकर शासकीय या अशासकीय) कहा जाता है, की स्थिति में सुधार के लिए विचार–विमर्श चलाया जाना चाहिए, क्योंकि इस वर्ग और पूरे देश के उत्थान के रास्ते में मानसिक रोड़े ही अड़ जाते हैं।

3. वर्तमान में जारी आरक्षण पर विचार–विमर्श को आठ–दस साल के लिए छोड़ देना चाहिए, ताकि उपरोक्त प्रयासों के प्रभाव को ठीक–ठीक देखा जा सके। सारे ही गरीब लोगों को अध्ययन और रोजगार के लिए, आर्थिक सहायता पर विचार–विमर्श आवश्यक है।

4. हांलाकि शासन ने अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़ावर्ग और अल्पसंख्यों के लिए आरक्षणों की व्यवस्था की, लेकिन जमीनी सच्चाई तो यह है कि मंहगी शिक्षा प्रणाली खड़ी कर धनी और प्रसिद्ध लोगों ने अनठानवे प्रतिशत चमकदार रोजगार वैसे ही अपने लिए आरक्षित कर लिए हैं। ये मंहगे प्राइवेट स्कूल और कॉलेज तथा कथित आरक्षित वर्ग के बच्चों को शुरू से ही बाहर कर देते हैं। इसके व्यापक परिणामों की उन्हें कोई चिंता नहीं। ऐसी परिस्थिति से मुक्ति के लिए हमें शिक्षा को हर स्तर पर योग्यता पर आधारित और मुफ्त करना चाहिए।

5. गुणों पर आधारित जाति ही प्रमुख है, जन्म पर नहीं। कोई भी व्यापार करने वाला आखिरकार बनिया ही है, कोई भी सेवाकर्मी आखिरकार शूद्र। सेनाओं में काम करने वाला क्षत्रिय नहीं तो क्या है। योजना, शोध और विकास में काम में लगा ब्राह्मण ही कहा जाएगा। जैसे धर्म बदलने की स्वतंत्रता है वैसे ही जाति बदलने की भी होनी चाहिये।

6. वर्ण व्यवस्था के अनुसार वै यों को मूर्ति पूजा/भक्ति योग एवं मंदिरों/मस्जिदों/गुरूद्वारों एवं अन्य संरचनाओं की देखभाल करनी चाहिए।

   वै य–गृहस्थ– भक्तियोगी नौकरी पे ा/सेवादारों/सूद्रो को कर्म ही पूजा एवं कर्म योग में नियत रहना चाहिए।

   सूद्र–ब्रह्मचारी– कर्मयोगी। क्षत्रियो को प्रार्थना (तंत्र, मंत्र, जप, स्त्रोत) एवं ज्ञान योग में नियत रहना चाहिए एवं इन्हे मंदिरो/गुरूद्वारों के वाह्य कार्य का निश्पादन करना चाहिए। ब्राह्मणों को निराकार की प्रार्थना करनी चाहिए, कर्मयोग, भक्तियोग एवं ज्ञानयोग का अनुभव लिए इन व्यक्तियों को राजयोग में प्रवृश्ट होना चाहिए। इसके अतिरिक्त भारत ने जो एक अन्य समूह साधुओं/संतो/महात्माओं का बताया है उनके लिए सारे रास्ते खुले है और यह उनकी मर्जी है कि वह क्या करते हैं।

7. वह सभी जो ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद विवाह करके सूद्र/सेवा/नौकरी, वै य (व्यापार) क्षत्रिय ((पुलिस सेना नेतृत्व) तथा ब्रह्मण (अध्यापक, योजनाकार) का व्यवसाय जीवन

यापन के लिए अपनाते उन सभी को अपने घर पर अपने जीवन साथी के साथ गृहस्थ (मूर्तिपूजा, भक्तियोग) को अपनाना अच्छा है, एवं घर के बाहर अपने व्यवसाय के अनुसार व्यवहार (जैसे– नौकरी वाले–कर्म ही पूजा– कर्मयोगी), वैशय– (मूर्तिपूजा, भक्तियोग,) क्षत्रिय– (प्रार्थना–ज्ञानयोग) एवं ब्राह्मण–(निराकार– राजयोग) करना अच्छा है। यही धर्म कहता है।

हर किसी को अपनी काम करने की विशेष क्षमताओं पर गर्व होना चाहिए। फिर यह काम चाहे चर्मकार का हो, स्वर्णकार का, सौंदर्य विशेषज्ञ का या फिर राजनितिज्ञ का ही। शासन को यह देखना चाहिए कि हर किसी को अपने काम के एवज में पर्याप्त मिलता रहे, काम चाहे शारीरिक हो या मानसिक। उच्चतम और न्यूनतम परिश्रमिकों में पन्द्रह गुने से ज्यादा अंतर नहीं होना चाहिए।

***

55

समाज के विकास की प्रावस्थाएं

आंतरिक आस्था के आधार पर स्वाभाविक रूप से निहित जीवन के विकास की चार अवस्थाएं हैं – अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष। प्रथम, अर्थ अर्थात् जीविकोपार्जन के रास्ते, उपकरण और सारगर्भित जीविकोपार्जन, द्वितीय काम अर्थात् कामनाएं, इच्छाएं, आकांक्षाएं और महत्वाकांक्षाएं, तृतीय धर्म अर्थात् जीवन के साथ व्यापक रूप से संबद्ध होने का प्रयास, और मोक्ष चतुर्थ अर्थात् मुक्तता स्वतन्त्रता।

अर्थ (तरीके और पैसा) किसी भी सभ्यता के उत्थान की नींव है और यही सभ्यता के उत्थान की सीमाएं तय कर देता है, अर्थ निर्धारित करता है कि कौन सी सभ्यता सिर्फ पैसे पर टिकी रहती है या कर्म पर रूक जायेगी या धर्म तक पहुॅचेगी या शिखर की स्वतन्त्रता को छू पायेगी और उस पर बने रह पायेगी।

यह भी कहा गया है कि किसी भी सभ्यता के मंदिर का सुनहरा शिखर इसके आधार पर ही निर्भर है, जो कि अर्थ (मायने एवं मुद्रा) है, कामनाएं इसके स्तंभ हैं, धर्म स्वयं शिखर और मोक्ष वह पताका जो कि मंदिर के स्वर्णिम शिखर पर फहराती हैं। किसी भी अवस्था स्तम्भ के महत्व को कम कर आकने में सभ्यता का मंदिर कभी भी भरभराकर गिर सकता है। ऐसा आमतौर पर होता है कि जब कोई शीर्ष पर पहुंच जाता है तो नीचे की पायदानों पर मंदिर को संभालने में लगे हुए लोगों को भूल ही जाता है, उन्हें सम्मान देना, उन्हें ऊपर खींचे रखने का प्रयास करते रहने में भूल या कमी होने के कारण सभ्यतायें स्वयं भी नीचे गिर पड़ती है।

यह देखा गया है कि धूल धूसरित हो गई सभ्यताएं आमतौर पर लगातार भूतकाल के अपने गौरव का राग अलापती रहती हैं, हो सकता है कि शताब्दियों तक वे भूली ही रहें कि वे धूलधूसरित हो गईं, और निःसंदेह दूसरे लोग उनकी सभ्यता के ढहते हुए खंडहरों की पुरानी ईटों को अपने साम्राज्य की नीवों में भरने के लिए ले जाते रहें, और धूल धूसरित हुए समाज के लोगों को और भी ज्यादा आत्मसम्मोहित, कमजोर और असहाय बनाकर छोड़ दें।

फिर से शुरू करने या सिर्फ शुरू करने, या फिर आत्मसुधार के लिए :

1. हमें नेतृत्वकारी समूहों को एक साथ बैठाकर, अपने लिए तथ्य परक तिथि सहित लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता है। यथार्थ प्रक्रियाएं ही प्रमुख हैं, काल्पनिक तारीखें नहीं। समूहों में अपने–अपने क्षेत्र के शीर्षस्थ व्यक्तियों को शामिल होना चाहिए, चाहे वे जज हों या सजायाफ्ता, संत हों या अपराधी, ताकि एकीकृत दृष्टिकोण विकसित हो सके।

2. हमें इन समूहों को रास्ते और तरीके सुझााने एवं सुलझाने के लिए भी प्रेरित करना चाहिए। हमारे ध्येय जितने साफ होंगे, यात्रा उतनी ही आनंदपूर्ण और आसान।
3. दुनिया का वर्तमान परिदृश्य हमें संकेत दे रहा है कि केवल वैश्विक दृष्टि ही आने वाले समय में टिक पाएगी, इसीलिए वैश्विक दृष्टि और ध्येयों की प्राप्ति ही हमारा प्रयास होना चाहिए, इस तरह कि स्थानीय और सारी दुनिया का एक साथ हित हो सके।

जैसा आधार होगा वैसे ही इमारत, शीर्श पर पहुँचने के चक्कर में हमें पत्थरों पर खड़े हुए गिरती/झुकती हुई, इमारतें बनाने से बचना होगा। हमें जो भी बनाना है वह आपसी विश्वास, सहयोग और परस्पर इज्जत के आधार पर बनाना है जिससे हमारी इमारत लम्बे समय तक चले। हमें आवश्यक विचार विमर्श और योजना बनाने के बाद चीजों को तुरंत तय करना होगा, और परमात्मा से प्रार्थना करते हुए अमल में लाना होगा।

***

56

विश्वास, आस्था भरोसा और सत्य

नानक कहते हैं '' जिस किसी भी चीज को काटा जा सके वह सत्य नहीं है।'' अहिंसा की अवधारणा हर बार युद्धों में कट जाती है इसलिए सत्य नहीं है। हम जन्म लेते हैं, जीते हैं और फिर मर जाते हैं, जीवन भी कट जाता है, और इस तरह ग्रंथ कहता है '' जीवन–लीला, माया या नाटक है। जीवन और मृत्यु के बीच में जो दिखाई देता है, वह सनातन सत्य के भीतर मौजूद एक परिस्थिति विशेष तक सत्य है, और इसको ऐसे ही देखा जाता है। ये दोनों ही सत्य प्रकृति में निरंतर प्रवाहमान हैं, और व्यक्ति में आस्था की तरह प्रगट होते हैं।

जो आस्था को मानते हैं वह कह सकते हैं कि धरती चपटी है और जो इस अनुभव को जान चुके हैं कि धरती गोल है और ऊर्जा के स्त्रोत सूर्य के चारों ओर घूमती है वे अपने इस अनुभव पर विश्वास रखते हैं।

अगर किसी व्यक्ति या समाज को तोड़ना है तो उसकी आस्था को तोड़ दो और इस कार्य के लिए आसान तरीका है उसके आस्था केन्द्रों (मंदिर, मस्जिद, चर्च) को पंगु (नपुंसक) बना दो। और अगर व्यक्ति या समाज को जोड़ना है तो उसके आस्था के केन्द्रों को खड़ा कर दो।

अनुभव से ही विश्वास पैदा होता है, भारत प्रचलित धारणाओं पर नहीं बल्कि अपने अनुभव से प्राप्त विश्वास के आधार पर काम करेगा।

***

57

आदर्श और विचारधारा

(अ) कुछ का कहना है कि आदर्श सिर्फ मूर्तियों का शोभा देते हैं, जबकि दूसरे कहते हैं कि आदर्श मूर्तियों की तरह पूजे जाते हैं। कुछ का कहना है कि बदलती और गतिशील दुनिया में भी आदर्श वैसे ही स्थिर बने रहते हैं, जबकि दूसरे कहते हैं कि सारे ही दिक् और कालों में आदर्शों के आधार एक समान बने रहते हैं केवल उनका प्रगट रूप देश और काल के रंगों से रंग जाता है।

(ब) सामान्यतः विचार ऊर्जा का एक पुंज है, लेकिन कभी–कभी यह कुछ लोगों के मस्तिष्क में अणुओं का एक विक्षोभ भी है जिसको वह सृजनात्मकता कहते हैं। अगर विचार मजबूत है तो यह ऊर्जा की एक धारा को अपने साथ खींचता हुआ चलता है, जिससे कि यह आदर्श में बदल जाये। आदर्श की ओर अपनी यात्रा के मार्ग में किसी विचार को सारे मौसमों का स्वाद चखना पड़ता है। हर तरह के तर्कों, तनावों और निराशाओं को झेलते हुए, सुख–दुख और लीला का अनुभव करते हुए ही कोई विचार अपनी आदर्श स्थिति तक पहुंचता है आदर्श स्थिति में पहुंचने के बाद विचार तिरोहित हो जाता है (या हो जाना चाहिए) और फिर इसके बाद कोई सामान्य जिन्दगी जी सकता है या उसके अंदर कोई नया विचार इसकी जगह ले सकता है।

लेकिन अगर अपनी आदर्श स्थिति में पहुंचने के बाद भी कोई व्यक्ति या संगठन मूल विचार से ही चिपका ही रहता है, तब यही विचार उसे पीछे खींच लेता है, और तब इसको फिर से वही यात्रा करनी पड़ती है, और हो सकता है कि (इस बीच) कोई दूसरी धारा विचार पर हावी हो जाए और इसका प्रवाह ही थम जाए।

आदर्श की स्थिति में सारी धाराएं समाहित हो जाती हैं, और आदर्श को हर धारा को उचित सम्मान देना पड़ता है, नहीं तो आदर्श, आदर्श ही नहीं है, और अगर ऐसा है तो इसके लिए शासन का संचालन असंभव है।

(स) किसी भी विचारधारा की सफलता की सीमा खुद उसकी व्यापकता ही तय कर देती है, वर्गों, अगलों, और पिछलों, क्षेत्रों और धर्मों से बंधी विचार धाराओं की शक्ति, उस समूह की सामूहिक शक्ति पर निर्भर करती है, और अगर कोई भी समूह किसी तरह शासन के स्तर तक पहुंच जाता है तब उसको अपनी स्थिति की असहजता का बोध होता है।

जैसे ही कोई समूह शासन करने लगता है तो उसे अपने विरोधी का भी वैसा ही ध्यान रखना पड़ता है, जैसा कि उस समूह का जिसने उसे उठाकर शासक बनाया। यह संघर्ष इतना भीषण होता है कि बहुतेरे तो घबड़ाकर अपनी आंखें बंद कर लेते हैं और फिर उसी कामचलाऊ ढर्रे पर लौट जाते हैं, और कुछ तब भी अपने ही समूह का हित साधन करते रहते हैं और इसके नतीजे में पैदा होती हैं हड़तालें, बेचैनी और विरोध प्रदर्शन की लहरें, और जो अपनी स्थिति और दृष्टिकोण को इस तरह बदलने की कोशिश करते हैं कि दूसरे समूह भी साथ आ जाएं उन्हें उनके अपने समूह से मिलने वाला समर्थन कम होता जाता है और इसके साथ उनमें अपना आधार ही खो देने का भय समाता जाता है।

(द) बुद्धिमानी का तकाजा है कि अगर किसी को विचारधारा आकर्षित करती है तो फिर उसे केवल उस विचारधारा के पीछे चलना चाहिए, जो न सिर्फ संबंधित राजनीतिक पार्टी को जीत दिला सके बल्कि उसे सत्ता के शिखर पर बनाए भी रख सके, और केवल सभी को शामिल करके चलने वाली धर्मनिरक्षता ही है जो कि राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय हितों का ध्यान रखते हुए, समूहों को जोड़ती और एकीकृत करती हुई चलती रह सके और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने देश में वसुधैवकुटम्बकम की भावना को अनुप्राणित करती रह सके। हम को अगर शक्तिशाली रहना है तो हमें पथप्रदर्शक, आलोचक और मूल्यरक्षक सभी भूमिकाओं का एक साथ निर्वाह करना है।

1. देश, देश के सभी नागरिकों का है, और हमें अपने बारे में स्वयं ही निर्णय लेना है, बाहर से सुझाव लिए जा सकते हैं और सुझाव आमंत्रित भी होने चाहिए लेकिन अनुगमन तो अपने धर्म का ही सर्वश्रेष्ठ रहता है।

2. हमें शासन में, देश के सभी नागरिकों की सामूहिक भलाई के लिए अपने आपको एकजुटता, धर्मनिरपेक्षता, सद्भावना और सद्व्यवहार के श्रेष्ठतम मानदण्डों के अनुरूप खड़ा रहना होगा, केवल यही एक विचारधारा और आदर्श बना रह सकता है।

कोशिश हो कि हम अपने आदर्श स्वयं बन पायें।

***

58

इतिहास और भूगोले

कहा जाता है कि जिनका इतिहास अच्छा है उनका भूगोल अच्छा नहीं होता, और जिन्होंने अपना भूगोल बढ़िया बनाकर रखा है, उनके इतिहास कभी अच्छे नहीं रहे। ऐसे लोग जिनका न तो इतिहास अच्छा है न भूगोल, किसी आशा के कबिल नहीं और ऐसे जिनके इतिहास और भूगोल दोनों ही अच्छे हैं सबके लिए सम्माननीय हैं।

अ) अगर हम पिछले छः हजार साल का इतिहास देखें तो हमें पहले छोटे से ग्रामीण राज्य नजर आते हैं, फिर गांवों के एक समूह के राज्य, फिर नदी राज्य, शहर राज्य और फिर शहरों के समूह के राज्य हांलाकि हरेक राज्य ने प्राणपण से युद्ध किए, कि वह अपनी अखंडता और स्वतंत्रता को बनाकर रखे, इसके लिए उन्होंने हर संभव प्रयास किए, लेकिन अंततः वे अपने इस प्रयास में असफल सिद्ध हुए कि वे अपनी तत्कालिक भू–राजनैतिक स्थिति को बनाकर रख सके। आज कोई भी देश यह कहने की सामर्थ्य नहीं रखता कि वह पूरी तरह आत्मनिर्भर है, अगर एक पैदा करता है तो दूसरा बाजार देता है, और अगर उत्पादक को सहयोग चाहिए तो यह सहयोग और मार्गदर्शन उसे बाजार ही देता है।

इस तरह भौगोलिक इतिहास बदल रहा है, और नववैश्वीकरण के लिए रास्ता बना रहा है। हम इस तथ्य को पवित्रता के साथ देखते और स्वीकृत करते हैं, और ऐसा करते हुए परमात्मा के ही रास्ते पर आगे बढ़ते जाते हैं।

आ) इतिहास एक रहस्य है और भूगोल सच्चाई, इतिहास गुजर गया जबकि भूगोल वर्तमान है, इतिहास से मनुष्यों ने यही सीखा है कि मनुष्यों ने इतिहास से कुछ नहीं सीखा, और बहुत से कहते हैं कि इतिहास अपने आपको दोहराता है।

सारे नवजात शिशुओं के दिमाग में मनुष्य का पूरा इतिहास छपा है, वे अपने माता–पिताओं के कंधों पर बैठकर दुनिया को देखते हैं, और इसीलिए वे अपने बुजुर्गों से ज्यादा दूर तक देखते हैं। सारे नए लोग तो भूगोल देखते हैं, इसका व्यवहार, दृष्टिकोण, संस्कृति, परंपरा और अपने भूगोल की ऊर्जा और लयबद्धता से शक्ति प्राप्त करते हैं। दुख या खुशी, इस लगातार बदलती दुनिया में, ऊर्जा के स्पंदनों के फैलाव और इसके हमारे भीतर मौजूद केंद्र पर पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर है।

इ) अग्रणी वर्गों ने कभी इतिहास की चिंता नहीं की, वे तो भूगोल में ही थे और इतिहास

के निर्माण में संलग्न। पीछे छूट गए वर्ग, जड़ों की तलाश में लगे हैं, यह ढूढ़ने में कि जिसका इतिहास पुराना है केवल वही ऊपर जा सकता है, वे तो इतिहास के लेखन और मानव विकास की शोधों में लगे हैं। अगर कोई भी देश ऐसा कर रहा है, तो फिर बड़ी साफतौर पर कहा जा सकता है कि अब इसके पतन के दिन आ गए। वे भूल ही जाते हैं कि इसमें ढूढ़ने जैसा क्या है, जिनकी जड़े गहरी हैं वे ही उतने ऊपर जा रहे हैं। लुप्त हो गए लैमूरिया की संस्कृति, पश्चिम की ओर जाती हुई एक धारा के साथ, मिश्र में अटलांटिस की संस्कृति से जा मिली, और फिर यह संस्कृति, निकट पूर्व के बहुत से दूरस्थ इलाकों तक फैली। लैमूरियावासी पहले मिश्र के उत्तरी इलाकों में बस गए और अटलांटिस के निवासी दक्षिणी हिस्से में, और इस तरह ये दो साम्राज्य एक लंबे समय तक बने रहे, जब तक कि ऐतिहासिक काल ने उन्हें मिला न दिया।

भारत के दक्षिणी भाग में मौजूद पुराने मंदिरों के शिखरों और दरवाजों में, कोई भी, मिश्र के पाइलेनों से एक तरह ही समानता को आसानी से देख सकता है, वही ढलावदार बंगलें, वही कोनाकार (ट्रंकेटिड) शिखर, और वही इमारत के भीतर मौजूद सक्रिय सीढ़ियां। तमिल परंपरा आज भी यह दावा करती है कि तब तक तो हिमालय बना भी नहीं था। पूरी दुनिया के लिए भारत की परंपरा और संस्कृति की स्पष्ट गहराई को समझना हितकर होगा।

भारत को यह मालूम था, और इसीलिए उसने इतिहास की ज्यादा चिंता नहीं की। भारत केवल उस बात की चिंता करता है कि जिसमें कोई सार है और कि किसमे क्या सार है। चूंकि हमारे खून में ये चीजें बहती हैं, इसीलिए भारत कभी नहीं ढूढ़ता घूमता कि राम के नानाजी का क्या नाम था और कि उनके नाती–पोते का हैं। यह तो राम के बारे में भी ज्यादा चिंता नहीं करता, यह केवल इस बात की चिंता करता है कि क्या बुनियादी चीज थी जो हुई, इसे तो अक्सर यह भी भ्रम हो जाता है कि कोई खास घटना राम की है, कृष्ण की या गणेश की।

ई) अगर हम इतिहास की किताबों को देखें तो, उनमें हमें कृष्ण राम, गणेश, बुद्ध, महावीर, लाओत्से या ईसा के नाम नहीं मिलेंगे, और अगर मिलेंगे भी तो केवल टिप्पणियों के रूप में। हम इस मामले में इतिहास लेखकों के प्रति सदाशय हो सकते हैं कि कम से कम उन्होंने इन महापुरुषों को ऐतिहासिक मात्र बना देने का काम नहीं किया। इन्हें हम हमेशा बाल या अधिक से अधिक किशोर या युवा रूपों में चित्रित करते हैं, कभी भी बूढ़ा नहीं। अगर हम यह समझते हैं तो फिर नादान बच्चों जैसे इतिहास लिखने वाले देशों की प्रतिस्पर्धा में हमें कम से कम इतिहास लिखने तो नहीं ही बैठ जाना चाहिए।

उ) आज जबकि दुनिया आगे चलती जाती है और भविष्य के प्रति स्पष्ट दृष्टि और उसके साथ भूत के अनुभव का मिलान करना जरूरी है, तब इतिहास प्रेमी और पुराने लोग भूत की ओर अपनी दृष्टि घुमाते हैं और अपने छोटे–छोटे गहरे कुओं में बंद होकर गरिमामय अतीत के पावन श्लोकों का पाठ करते रहते हैं, और अपने आपको स्वयं नेता नियुक्त कर स्वाभाविक रूप से उज्जवल भविष्य की प्राप्ति के दावे करते रहते हैं। लेकिन वे जो वर्तमान भूगोल को ध्यान में रख रहे हैं, वास्तविक भविष्य दृष्टा हैं वे

संभावित खतरों को देखते हैं, वे अपनी व्यवस्थाओं को इन खतरों के लिए तैयार करते हैं और यहां तक की अज्ञात खतरों के लिए भी, और इस तरह के वास्तविक भूगोल प्रेमियों के लिए अपनी भौगोलिक सीमाओं को फैलाने का विचार जरूरी नहीं होता, वे अपने भूगोल से संतुष्ट होते हैं, लेकिन फिर भी इसके प्रति सतर्क।

भूगोल के प्रेमी को यह मालूम होता है कि फैलते चले जाना आसान है और अपने रूप को बनाए रखना कठिन। हमें अपने आपको अपने भूगोल को ठीक करने, उसके प्रति संतुष्ट रहने, और सजगता और ऊर्जस्विता से बनाए रखने के काम के प्रति प्रतिबद्ध करना चाहिए। अगर हम पेड़ों को देखें तो, ऐसे भी पेड़ हैं जो अपनी पत्तियां कभी नहीं झड़ाते, ऐसे भी जिनकी पत्तियां हमेशा गिरती और नई निकलती रहती हैं और ऐसे भी जो साल में एक बार अपनी सारी पत्तियां झड़ाते हैं। पीपल साल मे एक बार अपनी सारी पत्तियां बदल लेता है और चौबीस घंटे ताजी हवा देता रहता है, और बरगद जिसमें इसके अलावा शाखाओं से द्वितीयक जड़ें भी निकलती हैं, सबसे लंबी उम्र का और सबसे पूज्य पेड़ होता है।

1. हम देश के विशाल भूगोल और इसके भूगोल की अद्वितीयता पर गर्व करते हैं। अपने भूगोल की विशालता और अपनी भूमि के वैविध्य और अद्वितीयता का विषय प्राथमिक कक्षाओं से लेकर महाविद्यालाओं तक, हर स्तर पर शिक्षण का भाग होना चाहिए।
2. प्राकृतिक विरासत को बनाए रखने की जरूरत है, औद्योगिक विकास की कीमत पर भी, और अंतर्राष्ट्रीय दबावों को तो छोड़ ही दें, दुनिया द्वारा दिखाए जा रहे लुभावने सपनों को एक तरफ खिसका कर भी।
3. देश में इसके प्राकृतिक भूगोल को बचाए रखने के लिए व्यापक विचार विमर्श को प्रोत्साहन देना जरूरी है।
4. नदी को आपस में जोड़ने के कार्य को किसी भी कीमत पर लिया नहीं जाना चाहिए। नहरों और अगर आवश्यक हो तो पाइप लाइनों जरिए ही जल प्रवाहों को जोड़ना ठीक है, चाहे इसके लिए ज्यादा बिजली लगती हो या फिर जल को उल्टी दिशा में बहाने के लिए कृत्रिम ऊंचाई बढ़ाने वाले बांध।
5. बाह्य उद्देश्यों के लिए सुरक्षा पहली प्राथमिकता होनी चाहिए, और व्यक्तिगत जागृति से उपजी सुरक्षा आंतरिक उद्देश्यों के लिए। शिक्षा और धार्मिक संस्थाओं द्वारा (पैरामिलिट्री) अर्धसैनिकों (पैरामिलिट्री) की तरह और सुरक्षा शिक्षा दिया जाना आवश्यक है।
6. हर आगामी पीढ़ी को यह याद दिलाना जरूरी नहीं है कि देश कभी किसी का गुलाम था, या वह जंगली था जब चीन, भारत शिखर पर था और इसीलिए दसवीं कक्षा तक इतिहास पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है, बाद में विश्व इतिहास के साथ जोड़कर थोड़ा सा इतिहास पढ़ाया जा सकता है। अगर हमें वास्तव में धर्मनिरपेक्ष रहना है तो कम से कम पन्द्रह साल की उम्र तक बच्चों के दिमाग में इतिहास ठूंसने की कोई जरूरत नहीं है। इतिहास की ि ाक्षा का वर्तमान रूप कि स्वतंत्र तक की घटनायें हम

इतिहास में लेगे/रखेगे एवं बाद की घटनायें समाज विज्ञान/ ाास्त्र में, को ठीक करना होगा एवं स्वतंत्र देश के इतिहास में हुई महत्वपूर्ण घटनायें जेसे युद्ध, अर्थव्यवस्था का खुलना इत्यादि सम्मिलित करना होगा।

7. अगर कोई इतिहास पढ़ना ही चाहता है तो उसे स्नातक स्तर तक भारत का इतिहास, और स्नात्कोत्तर स्तर पर अन्य देशों का इतिहास पढ़ाना ही उचित है। किसी भी शीर्षस्थ पद के लिए फिर चाहे प्रशासन हो या कोई और इतिहास को परीक्षाओं का विषय नहीं होना चाहिए, इसे केवल सामान्य अध्यध्न का भाग बनाना उचित है। इतिहास को, मानवशास्त्र और समाजशास्त्र के साथ जोड़ना जरूरी है। इतिहास लेखकों को, भारत के इतिहास को ध्यान में रखते हुए, विश्व इतिहास से लिए मुहावरों को, जैसे कि सिकंदर के मुहावरे को, वैसे का वैसा उधार लेना उचित नहीं।

8. भारत को चैतन्य रूप से भविष्य को ओर प्रस्थान करना है, और इसके लिए आने वाली पीढ़ियों की क्षमताओं पर विश्वास रखना जरूरी है, नई पीढ़ियों के लोगों को इतिहास के बड़े–बड़े नामों के बोझ तले दबाना नए अंकुरों के फूटने से रोकने के समतुल्य है, बरगद के पेड़ सम्माननीय हैं लेकिन यह आम कहावत है कि उनके पास फसलें नहीं उगा करतीं।

9. स्कूलों में धर्म, न्याय (तर्कशास्त्र) और नीति के विषयों को मिलाकर एक नया विषय स्कूलों के पाठ्यक्रम में शुरू किया जाना जरूरी है।

धर्मनिरपेक्षता और मजबूत संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिए, स्कूलों में यह बताया जाना जरूरी है कि सार्थक को निरर्थक से कैसे अलग किया जाए, और क्या और कितना सार्थक है इसकी पहचान कैसे हो, बच्चों के दिमागों को अनर्गल और निरर्थक ज्ञान से भरना जरूरी नहीं है।

***

59

आधुनिकीकरण और परंपरा

कोई भी नई चीज आधुनिक कहलाती है, और जब कोई इस नई चीज को लगातार व्यवहार/ व्यापार में ले आता है, तो यह परंपरा बन जाती है। मोटे तौर पर तीन पीढ़ियों से ज्यादा तक एक तरह का कार्य व्यवहार को परंपरा मान लिया जाता है। उसी स्थान के किसी अन्य कार्य व्यवहार इस तरह की परंपरा को बदलने के प्रयास अथवा किसी अन्य स्थान के धार्मिक या क्षेत्रीय कार्य व्यवहार द्वारा इसे बदला जाना ही आधुनिकता कहलाता है, और इस नई विभिन्नता का व्यवहार आधुनिकीकरण।

धार्मिक और क्षेत्रीय परंपराओं के मिलने के अलावा, आधुनिकीकरण तब भी होता है जबकि प्रकृति कोई नया स्त्रोत जैसे कि तेल, ईधन, बिजली या विद्युत चुंबकीय तरंगों का तार विहीन सम्प्रेषण खोल देती है। जब इस तरह का आधुनिकीकरण होता है तो सारे क्षेत्र और सारे घर्म इन नई विभिन्नताओं से बदल जाते हैं। वैज्ञानिक विकास में आई तेजी के कारण, जो कार्य व्यवहार तीन पीढ़ियों में परंपरा बनते थे वे अब साल भर में ही व्यापक और द्रुत वैश्विक संबद्धता के कारण बदल जाते हैं।

1. आमतौर पर हरेक नई चीज में बहुत गतिज ऊर्जा होती है, इसलिए ऐसा लगता है कि यह बहुत तेजी से फैल रही है, जबकि हर एक पुरानी चीज में काफी स्थितिक ऊर्जा होती है, और इसके बल पर यह नई चीजों को चलने देती हैं या उसे स्थापित होने के लिए आधार प्रदान करती है। यह देखा गया है कि हमेशा ही पुराना सोना (गोल्ड)नहीं होता और नया प्रखर (बोल्ड), इसलिए हमें ध्यान पूर्वक दोनों को ही अपने भीतर समाहित करना चाहिए।
2. हमें माध्यमों से यह आग्रह करना चाहिए कि वे समाज का व्यापक रूप से भला–बुरा देखे बिना नई चीजों को प्रचारित करने को प्रोत्साहन न दें।
3. हमें लंबे समय से सुपरिक्षित जीवन पद्धति, सामान्य भोजन, स्थानीयता रहन–सहन और वैश्विक समझ को प्रोत्साहित करना जारी रखना चाहिए।
4. हमें विभिन्न संस्कृतियों के लयबद्ध तरीके से सम्मिलन को ध्यान से देखना चाहिए और काल द्वारा परीक्षित संस्कृति को पूरे मानव समुदाय के हितार्थ आगे बढ़ाना चाहिए।

हमें बृहतर समाज के कल्याण के लिए बुद्धिमान लोगों की ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना

होगा जो नई आनेवाली चीजों की संपरीक्षा कर सकें, और इसके साथ ही जारी परंपरागत व्यवहार की समालोचना।

***

60

मनोविज्ञान और दर्शन

(अ) मनोविज्ञान किसी भी प्रभाव या फिर सारे ही प्रभावों के लिए कारणों की खोज करता है, जबकि दर्शन किसी भी कारण या फिर सारे ही कारणों के लिए सिद्धांत विकसित करने का प्रयास करता है, दोनों ही कोई थोड़ा कम कोई थोड़ा ज्यादा अनस्तित्व अथवा शून्यत के लिए अस्तित्वगत प्रमाण जुटाने में लगे रहते हैं, और इस तरह यथार्थ से दूर खिसकते चले जाते हैं।

मनोविज्ञान को चित्त का व्यवस्थित अध्यन माना जाता है, इसे इसके वर्तमान रूप में मानसिक रूप से विक्षुब्ध और बीमार व्यक्तियों के अध्ययन के साथ विकसित किया गया, और बाद में इसने स्वस्थ और आनंदित व्यक्तियों को भी अपनी गिरफ्त में लेने की प्रक्रिया शुरू कर दी, इसमें तो संतों को साइजोफ्रेनिया का मरीज घोषित किया, और अब खिसियाती सी हंसी हंसते हुए साइजोफ्रेनिया के मरीजों को भी संत कह रहा है। मिस्टर फ्रायर्ड ने जो इस विधा के और मनोविश्लेषण के जनक कहे जाते हैं, अपने आपको कभी भी मनोविश्लेषण के लिए प्रस्तुत नहीं किया, अपने प्रिय शिष्यों जैसे जुंग के लगातार आग्रह के बावजूद। मनोवैज्ञानिकों की मौजूदा पैदाइशें तो इस चीज का भी कारण निकाल लेना चाहती हैं कि क्यों किसी को नीली रोशनियों में प्रेम करना अच्छा लगता है और किसी दूसरे को दिन की रोशनी में।

मनोविज्ञान एक जड़ विज्ञान है, और हर उस कारण की इसके प्रभाव से संबंध की घोषणा करना चाहती है जो इसकी समझ में खोज निकाला गया है, और यही वजह है कि बहुत से मनोवैज्ञानिक खुद भी मनोरोगी हो जाते है।

मनोविज्ञान अपने आपको साधना और ध्यान से जोड़कर चलेगा तभी मनोविज्ञान एक अच्छे चैतन्य विज्ञान के रूप में विकसित हो सकता है, जबकि दर्शन तो मूर्खों की बकवास मात्र रह गया है, एक आदमी एक मूर्खतापूर्ण प्रश्न उठाता है और दूसरा उसका एक मूर्खतापूर्ण दार्शनिक समाधान प्रस्तुत कर देता है।

(आ) भारत में दर्शन शब्द का प्रयोग करते हैं, जिसका अर्थ है यथार्थ रूप से देखना, और ऐसे व्यक्तियों को हम दृष्टा कहते हैं, जर्मन में इसके लिए एक समतुल्य शब्द है फिलोसिया, उपनिषद् , झेन, ताओ और काबाला आदि दृष्टाओं की अभिव्यक्तियां हैं, और इसीलिए उनके भीतर वास्तविक मानसिक संतुलन मौजूद है, और इसीलिए वे पवित्रतापूर्ण आदेश की शक्ति रखते हैं।

1. शिक्षा और मनोवैज्ञानिक व्यवहार में शासन को ध्यान को प्रोत्साहन देना चाहिए।

2. फिलॉसॉफी को प्रोत्साहन देने की जरूरत नहीं है। दृष्टाओं और ईश्वरीय प्रवक्ताओं की वाणी को उचित सम्मान देने की आवश्यकता है, और यही धर्मनिरपेक्षता का बुनियादी सूत्र है।

3. भारत से ध्यान चीन पहुंचा और वहां यह चांन हो गया, जापान में झेन, जिसमें अनुभव और अभिव्यक्ति में तात्कालिकता का आग्रह है, इसमें से केवल जापान ने केझेन (काइजान) का विकास किया जो उनके यहां प्रचलित प्रबंधन की वर्तमान पद्धति है, ऐसे लोगों से अर्थात् दृष्टाओं और झेन मास्टर्स से देशों के शीर्षस्थ प्रबंधन पदों के लिए साक्षात्कार में भाग लेने हेतु निवेदन किया जाना चाहिए।

हमें अपने हित के लिए दृष्टाओं के अनुभव को सामने रखना होगा।

***

61

लयबद्धता

वैज्ञानिक जुंग ने एक प्राकृतिक सिद्धांत की खोज की। एक बंद कमरे में मौजूद दो पेण्डुलम घड़ियां हमेशा एक सा समय दिखाती हैं, अगर उनमें से एक का समय बदल भी दिया जाए तो भी, कुछ समय बाद छोटी घड़ी बड़ी घड़ी के साथ अपने समय का मिलान कर लेती है, हांलाकि इसमें जो समय लगता है वह दोनों घड़ियों में पैदा कर दिए गए समय के अंतर पर निर्भर करता है। ऐसा ही संगीत वाद्यों के साथ भी देखा गया है, अगर आप किसी भी एक वाद्य को बजाएं तो दूसरा अपने आप उसकी आवृति के साथ कंपन करने लगता है। विद्युत पैदा करने वाली प्रणालियों में भी ऐसा ही होता है, हरेक छोटी इकाई पूरी ग्रिड की आवृत्ति (फ्रिक्वसी) के साथ चलती है। प्रकृति में हम भी अपने आपको कुदरत के रंग (गर्मी,वर्षा, शीत इत्यादि) के साथ बदलते हैं।

रोजमर्रा के जीवन में ऊर्जा से भरे हुए लोगों के स्पंदन आम जनता को प्रभावित करते हुए चलते हैं। ऊर्जा से संपन्न गुरुओं और नेताओं की कार्यप्रणाली, उनके दृष्टिकोण व्यवहार और गतियां, लोगों के लिए अनुकरणीय हो जाते हैं, और इस तरह लोगों के लिए व्यवस्थाएं बनती रहती हैं। एक तरह से ये कहावत कि अंधेर नगरी चौपट राजा अथवा यथा राजा तथा प्रजा, लयबद्धता के सिद्धांत के आधार पर सही सिद्ध होती है।

सच तो यह है, कि कोई भी चालू प्रणाली केवल तब तोड़ी जा सकती है, जबकि प्रणाली को तोड़ने वाले व्यक्ति की ऊर्जा का स्तर प्रणाली से ज्यादा हो, फिर चाहे चालू प्रणाली कैसी भी हो। व्यवस्थाएं केवल हमारे चाहने से टूट या बन नहीं जातीं, उन्हें बदलने की शक्ति तो परमात्मा की अनुकंपा से केवल चुनिंदा लोगों को ही प्राप्त होती है। लोग ऐसे चयनित लोगों को उनकी सरलता, तात्कालिकता, दृढ़ता, मासूमियत और उनके काम करने के प्रेमपूर्ण और दूसरों की चिंता रखने वाले व्यवहार से पहचान लेते हैं।

***

पूजा स्थल– मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे

अगर किसी व्यक्ति या समाज को तोड़ना है तो उसकी आस्था को तोड़ दो और इस कार्य के लिए आसान तरीका है उसके आस्था केन्द्रों (मंदिर, मस्जिद, चर्च) को पंगु (नपुंसक) बना दो। और अगर व्यक्ति या समाज को जोड़ना है तो उसके आस्था के केन्द्रों को खड़ा कर दो।

मंदिर, मस्जिद मन के उत्कृष्टतम प्रतिफलन है।

मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे मानवीय हृदय और मस्तिष्क की सबसे सुंदर अभिव्यक्तियां हैं, यहां पूजा स्थलों का निर्माण इस तरह किया जाता है कि जैसे पद्मासन की मुद्रा में कोई देवी विराजमान हो, या इससे मिलता–जुलता। हृदय और मस्तिष्क की श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति का प्रगट रूप, और भावी शोध और अभिव्यक्ति का रास्ता।

व्यक्तियों, समाजों, समूहों या राष्ट्रों द्वारा बनाए गए मंदिर और मस्जिद, कुलमिलाकर इन्हीं की अवस्था का प्रतिबिंब है। अगर ये गंदे, खंडहरों में तब्दील होते या अनियोजित हैं तो वह समूह, देश और वह समाज भी ऐसा ही है, और अगर ये स्थान लय, ताल, नृत्य और पूजा से संपृक्त हैं और साथ ही साथ स्वच्छ भी तो इनमें आने वाले लोगों की स्थिति भी अच्छी होगी, और उन्हें सद्मार्ग भी दिखाएगी।

1. हिंदू, जैनों, ईसाई और मुस्लिमों के पूजा स्थलों की अवस्था को देखकर हम इन समुदायों की स्थिति का अंदाजा लगा ही सकते हैं।

2. ये दोनों की आपस में निर्भर और प्रत्यक्ष रूप से समानुपाती हैं। अगर समुदाय की स्थिति सुधरती है तो उसके पूजा स्थलों की भी, और अगर पूजा स्थलों की तो समुदाय की भी। बुद्धिमान लोग कहते हैं कि सीधा रास्ता यही है कि, पूजा स्थलों की स्थिति को सुधारें, समाज और देश की स्थिति स्वयमेव सुधर जाएगी। जनता को आगे आकर अपने धार्मिक स्थलो को महज पूजा स्थल की वजाय बढ़ोतरी एवं खु ाहाली का केन्द्र बनाना होगा। तब जबकि तथाकथित ख्याल रखने वाली सरकारें (वेलफेयर स्टेट) दुनिया भर में अपनी जनता को ठीक से खाना , स्वास्थ्य, शिाक्षा, व्यायाम की सुविधा, बुजुर्गो को आश्रय, जानवरों को आश्रय, स्वस्थ्य मनोरंजन देने में बुरी तरह असफल हुई है और हो रही है– यह जनता की जिम्मेदारी है कि वह अपने धार्मिक स्थलों में पाकशाला, पाठशाला, आरोग्य शाला, व्यायामशाला, धर्मशाला, गौशााला, सैन्य शाला, संगीतशााला का प्रबंध

कराये एवं उन्हे सुचारू रूप से चलाने में तन मन धन एवं प्राण प्रार्थना से सहयोग करे। इसके अतिरिक्त धर्मिक स्थल सन्यास आश्रम एवं ब्रह्मचर्य आश्रम के व्यक्तिओ/बच्चों की कर्मस्थली है इसलिए इन सभी के रहने खाने की व्यवस्था भी समाज को करनी होगी। इन सभी को करने से धार्मिक स्थल ठीक वैसे हो जायेगें जैसा हमने सुना है– "कोई तकलीफ हो मंदिर जाओ ठीक हो जाओगे" और सरकारों के दफ्तरों में बोझ कम होगा एवं भ्रश्टाचार भी।

3. शासन को शुरुआत में विकासखंड से लेकर ऊपर तक के पूजा स्थलों की स्वच्छता के काम को सहयोग प्रदान करना चाहिए, और फिर ग्राम स्तर से विकासखंड स्तर तक के। शासन को इन पूजा स्थलों को अपने इलाके की स्वच्छता की जिम्मेदारी लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वहॉ कि जनता यह काम अपने हाथ में लेने के लिए आगे आयें।

4. शासन को पूजा स्थलों को उत्तरोत्तर बढ़ती हुई जिम्मेदारियां लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जैसे–शिक्षा और स्वास्थ्य आदि। ये जिम्मेदारियां एकीकृत दृष्टिकोण रखते हुए बिना किसी भेदभाव के या पूरी तरह से धर्मनिरपेक्ष रूप से ली जानी चाहिए।

5. कबीर कहते है कि–

कांकर पाथर जोड़कर मस्जिद लयी बनाय ।

ता पर मुल्ला बॉघ दे क्या बहरा हुआ खुदाय।।

लेकिन हालात उससे भी ज्यादा खराब हो गये हैं और कहा जाता है कि–

कांकर पाथर जोड़कर मंदिर/मस्जिद लयी बनाय ।

ता पर भोंपू टॉग दें क्या बहरे करें सवाय।।

हम सभी को धार्मिक स्थलों द्वारा हो रहे ध्वनि प्रदूशणों को सीमित करना होगा।

6. प्रज्ञावान लोग कहते हैं कि जैसे मनुष्यों की एक सीमित जिंदगी होती है, वैसे ही पूजा स्थलों की भी। इन स्थलों के जीवन को हम अपनी प्रज्ञा से वहां के ऊर्जा संचार को देखकर भी जान सकते हैं, और श्रद्धालुओं की संख्या तो इसका एक सूचक है ही। शासन को अपने स्वयं के कोष से ऐसी सारी महत्वपूर्ण जगहों का जीर्णोद्धार, वहां पर जन सुविधाओं का निर्माण और उनके संचालन में सहयोग देना चाहिए, फिर वे जगहें चाहे अजमेर हों, निजामुद्दीन औलिया का स्थान, बनारस का शिव मंदिर या अयोध्या का श्रीराम मंदिर। इन सारी जगहों पर जहां शासन स्वयं सीधे हस्तक्षेप का निर्णय ले, उसे वहां विश्व के सभी धर्मों का धार्मिक अध्ययन केंद्र अवश्य बनाना चाहिए, और यह काम बिना किसी किंतु–परंतु के किया जाना चाहिए। ऐसे स्थानों को समूची मानवता के लिए बिना किसी भेदभाव के खोला जाना चाहिए। ऐसे स्थानों को जहां श्रद्धालुओं की संख्या समान है, एकीकृत धार्मिक केंद्रों में बदल दिया जाना चाहिए और इनके साथ धार्मिक अध्ययन केंद्रों की स्थापना की जानी चाहिए।

7. अयोध्या एक ऐसी जगह है जहॉ जाकर पता चलता है कि यह धार्मिक राजधानी बनने

के योग्य है, इस जमीन पर गतिशीलता भी है और लयवद्धता एवं कम्पन भी है एवं इतनी उर्जा है कि यह धार्मिक राजधानी के रूप में देश एवं दुनिया की धार्मिकता का नेतृत्व व संचालन कर सकती है और आने वाले समय में हमारे प्रयास इस दिशा में होगे जिससे अयोध्या नगरी दुनिया को जीता जागता स्वर्ग बना सकने की धार्मिक राजधानी बने।

8. पूजा/प्रार्थना स्थल की जरूरत होती है जिससे एक दिन ऐसा आये कि व्यक्ति स्वयं मंदिर/मस्जिद बन जाये और उसको शांति एंव सौहार्द, स्वास्थ्य एंव सुख पाने के लिए कही बाहर जाने की आवश्यकता खत्म हो जाये और वह जहाँ चाहे पूजा/प्रार्थना नमाज कर सके और शायद ऐसा भी हो की लोग उसके पास पूजा/प्रार्थना के लिए आयें।

जिनके लिए कार्य ही पूजा है, उनके लिए उनकी कार्य स्थल ही मंदिर है और जिनके लिए ध्यान ही पूजा है उनके लिए सर्वत्र ही मंदिर है।

***

63

ट्रस्ट और स्वैच्छिक संगठन

सारी दुनिया में मौजूद सारे समाज आम सुरक्षाओं और बहुत सी बड़े स्तर की गतिविधियों के लिए सरकारों का चयन करते हैं। यही समाज ऐसे लोगों के समूहों का चयन करते हैं, जो ट्रस्ट (आश्रम) बनाते हैं, पूजा स्थल, बनाते हैं जो रोज–रोज की घटनाओं के लिए व्यवस्थाएं और छोटी–छोटी समस्याओं से निपटते है। लोगों की सामूहिक बुद्धिमत्ता सरकारों का निर्माण करती है, और यही सामूहिक बुद्धिमत्ता (हांलाकि अलग–थलग और छोटे स्तरों पर) ट्रस्टों का निर्माण करती हैं, सुविधाएं जुटाती हैं, पूजा स्थल बनाती हैं। सरकार बनाना इनकी मजबूरी है जबकि ट्रस्ट, मंदिर और मस्जिद बनाना इनके दिल की आकांक्षा। राजनीति, मूलभूत वि वास एवं सुविधाओं पर टिकी हुई एक वृहत वाह्य संरचना है।

सरकार को कर चुकाना मजबूरी हैं, जबकि पूजा स्थलों में अपना सहयोग प्रदान करना हृदय की विशालता, और हमें दोनों के मूल्य का अच्छी तरह बोध है, और हम यह भी समझते हैं कि शासन हमारा मस्तिष्क है, और पूजा स्थल हमारा हृदय। हमको हृदय और मस्तिष्क दोनों का सम्मान करना आता है, इनमें से किसी भी एक की उपेक्षा, या किसी एक का दूसरे पर हाबी हो जाना, केवल विक्षोभ को ही जन्म देता है, और लंबे समय में इसका परिणाम है हमारे समाज और सरकार का नपुंसक और बंजर हो जाना।

हमारे औपनिवेषिक भूत में, समाज को अलग–थलग कर देने की प्रक्रिया में, पहले तो जनहितकारी शासन की अवधारणा खड़ी की गई, फिर पूजा स्थलों को सामाजिक गतिविधियों की दृष्टि से कर्महीन बना दिया गया, और अब एक ऐसी स्थिति आ गई है कि, मंदिर और ट्रस्ट ऐसे स्थानों के स्तर तक गिरा दिए गए हैं, जहां या तो कुछ कर्मकाण्ड किए जाते हैं या फिर वैसे ही सब कुछ देने वाले परमात्मा से भीख मांगी जाती है।

फिर भी, मंदिरों और मस्जिदों को कर्महीन बनाने के पूरे प्रयासों के बाद भी उन पर से लोगों की आस्था डिगाई नहीं जा सकी, उनका हृदय अभी भी वहीं है, वे अभी भी पूजा स्थलों को अपना सहयोग देते हैं।

धार्मिक स्थलों की भारी आयों की देखते हुए, कुछ वही पुराने सुझाव आने लगे हैं, इन पर कर लगना चाहिए। क्या सरकार किसी को भी कोई कर देती है ? निश्चित ही, तब जबकि यह गुलाम होती है, ठीक इसी तरह अगर सरकार अपने ही समाज को गुलाम बनाना चाहती है,

तो उसे निश्चित ही पूजा स्थलों और ट्रस्टों पर कर लगाना चाहिए।

स्वैच्छिक संगठनों पश्चिम में उन जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए शुरू किए गए थे, जो मंदिर, मस्जिदों और ट्रस्टों की सामाजिक जिम्मेदारियां थीं, और ये संगठन भारत में और शेष दुनिया में भी इंग्लैण्ड और अमेरिका को मिलाकर, इतने अच्छे तो साबित नहीं ही हुए।

1. हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पूजा स्थल किसी भी तरह के कर दायित्वों से मुक्त रहें। यह जरूरी होगा कि प्रत्येक धार्मिक स्थल एक ट्रस्ट बनाये एवं अपने प्रार्थना भवन के साथ धर्मशाला, पाकशाला, पाठशाला, व्यायामशाला, संगीतशाला, गौशाला की व्यवस्था करे।
2. हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि पूजा स्थलों की समाज निर्माण में भूमिका हो, जैसे आस्थाएं लोगों के क्रियाकलापों में ज्यादा बड़ी भूमिका अदा करती हैं। कुलमिलाकर समाज के स्वस्थ संचालन के लिए, शासन को व्यक्तियों पर करों के बोझ को कम करना चाहिए, ताकि लोगों के हृदयों को काम करने का ज्यादा मौका मिले, और वे ट्रस्टों और पूजा स्थलों को अपना ज्यादा योगदान दे सकें।
3. सुनामी, एशिया में भूकम्पों, और अमेरिका में चक्रवातों को देख लेने के बावजूद, स्वैच्छिक संगठनों पर जरूरत से ज्यादा भरोसा, हमारी बेहतरी के लिए घातक होगा। स्वैच्छिक संगठनों की जैसी गतिविधियां तो पूजा स्थलों द्वारा ही चलाया जाना उचित है, क्योंकि हम देख ही सकते हैं कि हमारे देश में मौजूद बीस लाख स्वैच्छिक संगठन भारत के पाँच लाख गांवों की दशा में रत्तीभर भी सुधार नहीं कर सके। हम स्वैच्छिक संगठनों के नाम सूचियों में से निकालने और उनको दिए जाने वाले अनुदानों को कम करने पर विचार कर सकते हैं।
4. आमतौर पर करों की कटौती, और स्वैच्छिक संगठनों को दिए जाने वाले दानों पर करों की छूट संबंधी धाराओं को विलोपित करने से, करों में किया जाने वाला सफेद पोश घोटाला कम होगा। सौ प्रतिशत कर छूट तो केवल प्रधानमंत्री राहतकोष के लिए ही होनी चाहिए।
5. विदेश से देश या देश से विदेशों को दिए जा रहे स्वैच्छिक संगठनों और पूजा स्थलों संबंधी अनुदानों को, केवल शासन के माध्यम से होना चाहिए।

अंतर्राष्ट्रीय समुदाय आने वाले समय में ये कदम उठायेगा।

***

प्रबन्ध (मैनेजमेन्ट)

अगर कोई अपना काम स्वयं कर सकता है, तो इससे अच्छा क्या हो सकता है, लेकिन अगर ज्यादा बड़ा काम करना है और बड़े पैमाने पर, और साथ ही साथ बदलती हुई परिस्थितियों में तो बुद्धिमान लोग दूसरों की शारीरिक, मानसिक और आर्थिक सहयोग और सेवाएँ जुताते हैं। लोगों की प्रतिभाओं और क्षमताओं का उपयोग कर सकने में सक्षम प्रतिभाशाली लोग, या तो

(अ) दूसरों को प्रोत्साहित करके और उनके लिए रास्ते को आसान बनाकर या,

(ब) वांछित क्रम में उपयुक्त मनुष्यों, यंत्रों, और वस्तुओं की व्यवस्था कर, अथवा

(स) लोगों, यंत्रों, पैसे, वस्तुओं और बाजार का यथायोग्य उपयोग कर या,

(द) लोगों, यंत्रों, पैसे, वस्तुओं और बाजार पर आवश्यक प्रशासकीय नियंत्रण रखकर, ऐसा कर पाने में समर्थ होते हैं, ताकि वांछित परिणााम प्राप्त हो सकें।

अगर हम उपरोक्त चार श्रेणियों को ध्यान से देखें, तो हम यह अनुभव कर सकते हैं, पहली श्रेणी में तो वह वास्तविक नेता ही है, जो कि अपने उद्देश्य और हृदय की विशालता रखता है, और सामूहिकता में ही अपने परिणामों की तलाश करता है। दूसरी श्रेणी में वे लोग हैं, जो कि लोगों और वस्तुओं को जुटा देते हैं और उनको व्यवस्थापक या प्रबन्धक कह सकते हैं। तीसरी श्रेणी वरिष्ठ कामगार (मैनेजर) की है, जो कि केवल वस्तुओं और व्यक्तियों को काम पर लगाता भर है। इस प्रबन्धकों (कामगारों) को भी मैनेज किया जाता है, और पूरा रुख यह रहता है कि किसी तरीके से या किसी भी तरीके से काम को पूरा भर कर दिया जाए। चौथी श्रेणी प्रशासक की है, जो कि प्रशासन द्वारा काम करवाने के लिए मैनेज करता है। चूँकि इन श्रेणियों को भी आदेश मिला करते हैं, अतः परिणाम के रूप में खुद की गुलामी और इसको आगे बढ़ाना ही इस श्रेणी के लोगों का परिणाम होता है। शासन को ज्यादा व्यवस्थित प्रबन्धन को प्रोत्साहन देना चाहिए।

हम, जनता की, जनता के लिए और जनता द्वारा सरकार में, विश्वास केवल तब पैदा होता है जबकि चीजें शासन की या सार्वजनिक होती हैं और किसी व्यक्ति की नहीं, जब चीजें विदेशी हो जाती है तो सन्देह पैदा होता है, और जब चीजें बहुराष्ट्रीय हो जाती हैं और शंकास्पद तो यह सन्देह और भी ज्यादा बढ़ जाता है। और भगदड़ (अफरा–तफरी) सी तब मच जाती है जब शासकीय नियम खेचूँ (सक्शन) पम्प की तरह काम करने लगती है, आम जनता से

(जनता की खैरख्वाह बनकर) पैसा वसूलती है और एक मोटी धार (जेट स्ट्रीम) के द्वारा कुछ रइसों को पैसा बाँट देती है, एक ऐसी सरकार जो पैसे वाली की सरकार पैसे वालों के लिए पैसे वालों द्वारा लोकतंत्र से पैसातंत्र में बदल जाती है।

व्यक्तिगत रूप से, हम चाहते हैं कि घर में समृद्धि हो और सामूहिक रूप से हम चाहते हैं कि शासकीय मुद्रा भण्डार भरा हो, क्योंकि इनसे व्यक्ति और समाज में आत्मविश्वास बना रहता है। हम अपने घर में उपयोगी काम में लगे रहते हैं और परिवार को भी ऐसा करने को प्रोत्साहन देते हैं, इसके लिए हम पैसे और समय का निवेश करते हैं। सामूहिक स्तर पर सरकार यह काम करती है और इसे सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समय और धन का निवेश करना होता है। जब हम घर में किसी काम में लगे होते हैं, तो हम एक ट्रस्टी के स्तर और हैसियत से अपनी दक्षताओं और क्षमताओं के अनुरुप हमें दिए गए काम को सम्पन्न करते है, और यही शासकीय क्षेत्रों में भी किया जाना जरूरी है, कि प्रक्रियाओं में भागीदार लोग ट्रस्टी की तरह हों, केवल कर्मचारियों की तरह नहीं जिन्हें उनसे वरिष्ठ कर्मचारियों द्वारा बस काम पर लगाया जाना है और शासित होना है (संगठन के फायदे और इसके नुकसान का हिस्सा, चाहे वह नापा जा सके या न नापा जा सके, को, ट्रस्टी को मिलने वाले हिस्से में प्रतिबिम्बित होना चाहिए)।

प्रबन्ध शैली

अमरीका में कार्यशक्ति अधिकांशतः अनुबन्ध पर चलती है, चीन में शक्ति से, जापान में कुछ–कुछ स्थायी रोजगारों और परिवार की तरह लगाव से– इसको ट्रस्टी और परिवार की तरह के प्रबन्धन में (कम्यून) में भारत में आधारित किया जाना है, ताकि यह अपनी महिमा के अनुरूप ऊँचा उठ सके और दुनिया को सामूहिक प्रसन्नता के लिए दिशा दे सके।

अ) (व्यक्तिगत नवोन्मेषी के विचार की शक्ति वृद्धि और विकास का केन्द्रीय तत्व है। इस तरह के व्यक्ति को सद्भावनाएँ सहारा देने से ही पूँजीवादी प्रणाली को विकास सम्भव हो सका था, इसको देश के विकास में लगा देने से एक दूसरी प्रणाली विकसित हुई, व्यक्ति से विचार लेकर उसको सहारा देने, उसका कम्पनी के नाम पर पेटेन्ट करा लेने और खुले बाजार में खुली प्रतियोगिता के लिए इससे बने उत्पाद को उतारने से नवक्लासिकी आर्थिक सिद्धान्त की सबसे ताजातरीन लेकिन असफल प्रणाली विकसित हुई)।

आ) सुविधाओं का निर्माण, रोजगार, का सृजन और नेताओं के जरिए असली मालिक अर्थात् जनता को अवगत कराना शासकीय क्षेत्र का लक्ष्य हुआ करता था। गुणवत्ता, काम में सिद्धहस्तता, और उचित रखरखाव के द्वारा सेवा प्रदाय की निरन्तरता, लक्ष्य नहीं थे और इसी लिए शासकीय क्षेत्र असफल हो गया।

इ) विकास केवल तभी होता है जबकि व्यक्तिगत नवोन्मेषी के विचार उसकी कल्पना और उसकी दृष्टि को समाज और शासन द्वारा, व्यापक रूप से सारी मनुष्यता के हित के लिए, समर्थन दिया जाता है और स्वीकृति किया जाता है। समांग और लयबद्ध विकास केवल तब होगा जबकि सारे शरीर को पूरा–पूरा सम्मान मिले और इसका उचित हिस्सा, (केवल सिर को नहीं)। (बौद्धिक सम्पदा अधिकार और पेटेन्टों को तो निकट भविष्य में समाप्त हो

ही जाना पड़ेगा)। हमको इन्हें हटा दिए जाने और अर्न्तसम्बन्धित तरीके से आगे बढ़ने के लिए नेतृत्व सम्भालना होगा।

1. विकास और इसको बनाए रखने के लिए अनेकता में एकता अच्छी है, लघु क्षेत्र व्यक्ति के लिए, संयुक्त उपक्रम के लिए मध्यम क्षेत्र और मध्यम क्षेत्र और जनभागीदारी के लिए बड़े क्षेत्र, भविष्य के विकास और महिमा के लिए केन्द्रीय भूमिका निबाहेंगे।
2. छोटे स्तर पर प्रतिस्पर्धा, और बड़े मुहावरे में प्रतिस्पर्धा के परे जाने से, जीता–जागता स्वर्ग एक वास्तविकता बन सकता है। मात्रा, गुणवत्ता, उचित मूल्य और स्थापना, इस रूप में जो कि लम्बे समय तक चलाए जा सकें, उत्पादों और साख दोनों में ही सबसे अच्छे परिणाम देते हैं।
3. हालाकि कठोरता सही आधार प्रदान करती हैं, लेकिन जड़ता तो केवल मरे हुओं को शोभा देती है। शासन और नियमों में जीवन्तता और गतिशीलता सबसे अच्छे परिणाम देती है, अगर यह प्रेम और सद्भावना की ठोस जमीन पर खड़े हों। इसी पद्धति से कार्य चमत्कारिक परिणाम दे सकता है, और यह तो हमारा स्वाभाविक तरीका होना चाहिए। भारकारी नौकरियों मे भातप्रति ात सुरक्षा, निम्न स्तर के कर्मचारियों का स्थानान्तरण न होना एवं ठेके के मजदूरो का न्यूनतम वेतन ही बनाये रखना प्रबंधन को असहनीय कश्ट देता है एवं सरकार का (अपने ही दे ा में) औपनिवे ाक चेहरा द ार्ाता है – ऐसी परिस्थिति में हमारे लिए यह जरूरी हो जाता है कि हम विस्मृत भारतीय प्रबंधन को पुनः परिभाशित करे एवं प्रयोग में लायें जिससे कि हमारा विकास, बढ़ोतरी एवं खु ाहाली चहुॅमुखी हो।
4. दूसरों को आने देने और खुद के बाहर जाने के लिए खिड़कियाँ और दरवाजे खुले होने चाहिए, हमारा दिल और दिमाग तो बता ही देता है किसका स्वागत किया जाना है और कहाँ जाना है, किस विदेशी को बुलाना है या किस विदेशी मुल्क की यात्रा करनी है, अंतर्राश्ट्रीय या अन्य सन्धियों को स्वीकृत करना है या इनसे इन्कार, इन्हें तो झेन, ध्यान के रास्ते की तात्कालिकता के आधार पर ही निर्णीत किया जा सकता है।
5. शासन को अपनी प्रणाली को इस आधार से हटाकर कि हरेक कोई चोर है (इसलिए कड़ी व्यवस्था होनी चाहिए), से इस आधार पर स्थापित करना होगा कि हरेक कोई ईमानदार है (और इसलिए व्यवस्था हल्की होनी चाहिए)। पहले प्रकरण में नियम तोड़ने वाले अर्थात् ईमानदार को पुरस्कार दिया जाता है, जबकि दूसरे प्रकरण में चोरों को दण्ड (हालाकि अराजकता मची हो तो ईमानदारों को दण्ड मिल जाता है और चोर और हथकण्डेबाज पुरस्कार प्राप्त करने में सफल हो जाते हैं)।

   इसके अलावा अक्षम एवं बेअसर अधिकारियों/कर्मचारियों को नकारा, तिरष्कृत, अतिरिक्त अधिकारी/कर्मचारी विभाग बनाकर उसमें रखना चाहिए और इस दौरान अधिकारी। स्तर के अनुरूप न उतरे तो अशासकीय क्षेत्र इन्हें सेवामुक्त कर दे एवं शासकीय क्षेत्र इन्हें सेवानिवृत्त कर दें। इस तरह का विभाग कर्मचारियों को सुधरने एवं संस्था को गलती से या जल्दीबाजी में अच्छे कर्मचारी को निकालने के कृत्य से बचाने का मौका देगा।

6. भारतीय प्रबन्ध संस्थान इसका अंग्रेजी रूप अंग्रेजी और हिन्दी में एक ही अर्थ को ध्वनित नहीं करते। प्रबन्ध का अर्थ है व्यवस्था या सुगम बनाना। हमें सही अर्थ को ध्वनित करने वाले शब्दों का चयन करना होगा। शासन सुगम बनाने वाले व्यक्तियों को इस दृष्टि से अध्ययन करने और उद्योगों और अन्य क्षेत्रों के लिए नई पुस्तकों और पद्धतियों का सृजन करने के लिए प्रोत्साहित करेगी।

7. प्रशासन कालेजों को भी नेतृत्व और प्रबन्ध संस्थानों में बदलने की जरूरत है। कलेक्टर और कमिश्नर शब्दों से राजस्व इकट्ठा करने वाले और कमीशन एजेन्ट की बू आती है, इन्हें नगर या जिला प्रबन्धक जैसे शब्दों से बदलने की जरूरत है, इन्हें कर्तव्य की ध्वनि से ओत–प्रोत होना चाहिए, सत्ता की नहीं। दूसरे क्षेत्रों में भी ऐसा करना ही आवश्यक है। पुलिस में कुछ पदों के नामों को बनाए रखा सकता है, लेकिन पुलिस के निचले सन्स्तरों के पदनाम बदले जाने चाहिए, अच्छी तनख्वाह के साथ, ताकि कर्तव्य और जिम्मेदारी की ध्वनि आ सके।

8. शासन को उद्योगों और विश्वविद्यालयों से एक्जिक्यूटिव्स को जिला प्रबन्धन में जाने के लिए, और इसके उल्टे भी प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि काम के बोझ का विभाजन हो सके, एक ही तरह के लोगों के दबाव समूह न बन सकें और सेवाओं का सबसे बेहतर इस्तेमाल किया जा सके।

9. प्रबन्ध के व्यवहार में, शोध और विकास को, जापान के काइजेन (कइक्षेन) के अनुरूप प्रोत्साहित किया जाना चाहिए (के का अर्थ है दावत और झेन शब्द का अर्थ है ध्यान) और प्रबन्ध अनुभव का वैश्विक व्यवस्था के साथ आदान–प्रदान किया जाना चाहिए।

10. उद्योगों में उत्कृष्टता के लिए जापान में प्रचलित पाँच एस मॉडल, भारतीय भावनाओं को भी ध्वनित करेगा, यानि स्वराज्य, स्वाभिमान, सुरक्षा, शुचिता और स्वेदशी।

सामूहिक प्रगति ही हमारे लिए प्रेरणा का मंत्र होना चाहिए

***

65

ईमानदार लोगों की समस्या

अधिकांश ईमानदार लोगों का सोचना है कि केवल वे ही ईमानदार हैं, बाकी तो सब चोर डकैत। अधिकांश ईमानदार लोग उन गायों की तरह है जो न दूध देती हैं और न लात मारती हैं, उन्हें लगता है कि मंजिल पर पहुंचने के लिए सिर्फ ईमानदारी ही काफी है। वे इस सत्य को भी भूल जाते हैं कि बिना खेती में पसीना बहाए फसल नहीं आती। अधिकांश जगह चोर, डकैत, लुटेरे, फरेबी और अपराधी लोगों को ही यह मालूम है कि बिना मेहनत के कुछ भी हासिल नहीं होता, और हम देख सकते हैं कि उन्हें परिणाम मिल भी रहे हैं।

दो तिहाई लोगों के लिए ईमानदार मजबूरी है, सौ में से बीस ऐसे जरूर होंगे जो कि वास्तव में ईमानदार हैं, बाकी बचे दस प्रतिशत लोग इनको वास्तविक ईमानदारों के अलावा सब गालियां देते हैं, जबकि इनमें से आधे शुरू में मजबूरी में बेइमानी करते हैं और फिर जाहिर है कि आदत पड़ जाती है। वास्तव में ईमानदार लोगों की यह जिम्मेदारी है कि वे पहले इन दस प्रतिशत को समझें, और फिर साहस के साथ और सहानुभूति के साथ परिस्थिति में सुधार का प्रयास करें।

1. हमें ईमानदार और मजबूत लोगों को नेतृत्व लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और इसमें सहयोग भी देना चाहिए। हमें चर्चा करनी होगी और जरूरत पड़े तो संविधान का वह अनुच्छेद हटाना होगा जिसके कारण भाासकीय सेवा या लाभ के पद पर बैठे व्यक्ति राजनीति में भाग नही ले सकते– इस अनुच्छेद के कारण वह सभी ईमानदार पढ़े लिखे, बुद्धिमान व्यक्ति दरकिनार कर दिये गये जो अपने परिवार की भी चिन्ता करते हैं और इस तरह सारा का सारा राजनैतिक परिदृश्य उन लोगो के भरोसे छूट जाता है– जो कमजोर, बुद्धिहीन है या जिनका राजनीति पारिवारिक व्यापार है। स्वच्छ राजनीति के लिए हमें यह बदलाव लाना ही होगा।

यह बात समझने और पहुंचाने की जरूरत है कि अच्छाई सबके लिए अच्छी है और किस तरह।

***

66

न्याय व्यवस्था

दुर्भाग्यपूर्ण है कि बीसवीं शताब्दी में भारत में और सारी दुनिया में न्याय का प्रयोग इस तरीके से हुआ है– ''अँधेरा कायम रहे, सम्राट किलविश की जय हो उजाले का नाश हो, अँधेरे का राज हो''। न्याय और व्यवस्था के नाम पर।

(अ) न्याय तो केवल बर्फ की तरह सर्द हो गया है, और हो सकता है कि पश्चिम में इसे बनाया ही इस तरह गया हो। भारतीय न्याय व्यवस्था की बुनियादी ध्वनि, नवीनता को ध्वनित करती है, और यह सरकार की जिम्मेदारी है कि वह अपनी व्यवस्था सुचारु रूप से चलाते रहने के लिए, न्याय प्रदान करे।

(ब) सामाजिक संगठन (शासन) हमारी सामूहिक बुद्धिमत्ता का पहला उत्पाद है, इस बुद्धिमत्ता से सुरक्षा और न्याय व्यवस्था का जन्म होता है। समाज और इसके शासन के लिए, सुरक्षा सर्वप्रथम है, प्रशासन और इससे जुड़ा हुआ न्याय दूसरे स्थान पर।

(स) ''सामाजिक व्यवस्थाएँ न्याय के लिए नहीं है, न्याय सामाजिक व्यवस्था के लिए है''। इसलिए न्याय की परिभाषा, अर्थ और उसका प्रयोग देशकाल के अनुरूप बदलते रहते हैं। न्याय को न्याय संगत होना चाहिए, देश और काल के अनुरूप, और किसी दिए गए भौगोलिक क्षेत्र में समय के साथ आए परिवर्तनों के अनुकूल समायोजित हो सकने के लिए गतिशील और लचीला। न्याय व्यवस्था को उच्चतम नियामक संस्थाओं को नियमित रूप से रिपोर्ट देनी चाहिए या फिर नियामक संस्थाओं को न्याय व्यवस्था की प्रतिमाह समीक्षा करनी चाहिए। फिर यह उच्चतम नियामक संस्था भारत का राष्ट्रपति हो सकता है, जिसको परिस्थिति और स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए संसद सुझाव दे भी सकती है और नहीं भी।

(द) भारत के लिए, जैसे को तैसा होना चाहिए न कि (जस्ट आइस) बर्फ की तरह सर्द इसका केन्द्रीय महत्व है, अगर हम वास्तव में ही स्वस्थ और आनंदित, प्रगति के पथ पर अग्रसर और गतिशील समाज बनना चाहते हैं। औपनिवेषिक न्याय व्यवस्था में अपना सरोकार प्रदर्शित करने और उपनिवेष को बनाए रखने, दोनों के उद्देश्यों से, न्याय "जैसे को तैसा" से "बर्फ की तरह" होता रहता था। और जब न्याय सर्द हो जाता है तो देरी और अंधेर तो स्वाभाविक परिणाम है। आज के समय के राजनैतिज्ञ को, जो हालाकि न्याय व्यवस्था के विरुद्ध मुँह खोलने से डरता है, यह समझना चाहिए कि आज जो न्यायाधीश

विद्यमान है वे भारत सरकार के पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले कर्मचारी ही हैं–केवल शासकीय सेवक, और उसे न्याय व्यवस्था के सम्बद्ध में सुधारात्मक कदम उठाने के सम्बद्ध में निर्णय लेते समय डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर संसद सुधारात्मक कदम न उठाएगी, तो यह सम्भव है कि लोग स्थानीय गुण्डों को न्याय प्रदाताओं के सिंहासन पर बैठाने लगे।

1. सबसे पहला कदम तो यह है कि न्याय की देवी की आँखों से काली पट्टी हटा दी जाए, और न्यायाधीशों और वकीलों के परिधानों से अन्धकार के प्रतीक काले रंग को।
2. सर्वोच्च न्यायालय में हमें व्यवहारिक रूप से इंग्लिश के प्रयोग को छोड़कर, राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत और कुछ स्थानीय भाषाओं को प्रवेश देना चाहिए।
3. छोटे अपराधों के लिए एक अकेले न्यायालय के द्वारा एक निश्चित समय सीमा में दिया गया निर्णय अंतिम होना चाहिए। तुच्छ अपराधों को सामने लाने के लिए, अखबारों को उन्हें प्रकाशित करने के लिए प्रोत्साहन किया जाना चाहिए, फिर चाहे ये अपराध पुलिस में दर्ज हों या नहीं। इससे देश की न्याय व्यवस्था में गतिशीलता आएगी। सभी तरह के जेलों के भीतर, सभी तरह की अपराधियों के प्रति व्यवहार मानवीय होना चाहिए, और स्वयं के सुधार की ओर इंगित।
4. जजों और न्यायाधीशों की नियुक्ति सम्माननीय, ईमानदार और बुद्धिमान नागरिकों द्वारा की जानी चाहिए, वे वकील हो भी सकते हैं और नहीं भी, और उन्हें कानूनों की शिक्षा–दीक्षा देने के साथ–साथ, प्राकृतिक न्याय और भारत की सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक आवश्यकताओं की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।
5. संसद प्रतिनिधियों, मीडिया के प्रतिनिधियों, वकीलों और जजों के बीच गैर सार्वजनिक विचार विमर्श को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, वे मोटे रूप से अपनी सहमति और असहमति के बिन्दुओं को लोगों के सामने अपना मत देने के लिए रख सकते हैं।
6. पूर्वीय ढंग से न्यायिक व्यवस्था का विकास करने के लिए एक व्यापक समिति का गठन किया जाना चाहिए, (जिसने हिन्दू, मुस्लिम, चीनी, यहूदी, पारसी और यहाँ तक कि न्याय की ईसाई प्रणालियों का भी समावेश हो), ताकि न्याय प्रकृति से निकलता हो, केवल तभी न्याय उचित भी होगा और प्राकृतिक भी।
7. कागजों और दस्तावेजों के आधारित न्याय के स्थान पर स्पष्ट रूप से देखने पर आधारित और सक्रियता से पहले से ही न्याय व्यवस्था की स्थिति को भापने वाली और गुप्तचर व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया जाएगा। इस तरह के गुप्तचरों को चिन्हित किया जाना चाहिए जो भ्रष्टाचार के लिप्त लोगों को पहचान सकें। और इन्हें बिना किसा भेदभाव के चयनित किया जाना चाहिए, और अगर ये स्वयं अपनी प्रतिबद्धता का उल्लंघन करते हैं तो इन्हें दोहरा दंड दिया जाना चाहिए।
8. न्याय सरकार की जिम्मेदारी है और यह स्वयं अपनी खोजबीन के आधार पर अपराध का पता लगाती है, तो यही सबसे अच्छा रास्ता है। अपराधी की बात सुनने में से यह तय किया जा सकता है कि उसके लिए कितना दंड उचित है। ऐसी परिस्थिति में न तो

पीड़ित की ज्यादा आवश्यकता है और न हीं वकीलों की।

9. शासन का निर्माण मनुष्य की एक बाह्य गतिविधि है, इसलिए ताकि सुरक्षा और प्रतिरक्षा की इसकी भीतरी आवश्यकताएँ पूरी हो सकें। मनुष्य इसलिए सरकार नहीं बनाता, और न ही यह शासन का विशेषाधिकार है कि वह मनुष्य के व्यक्तिगत मामलों में दखलनदाजी करने लगे। शासन को किसी के भी घर में घुसने के अपने बुनियादी और वैधानिक अधिकार की सीमाओं का ज्ञान होना चाहिए, और उसे इन सीमाओं को उल्लंघन करने का कोई अधिकार नहीं। अगर यह ऐसा करता है तो, यह सही शासन नहीं है, और यह तो अपने नागरिक को ही अपना गुलाम बना लेता है। यह ध्यान में रखते हुए, शासन को उन व्यक्तिगत क्षेत्रों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं, जिनके लिए मनुष्य के पारिवारिक सम्बन्ध और इसके बुजुर्ग ही इतने जिम्मेदार और शक्तिशाली हैं कि वे जीवन के बहुत से ऐसे मामलों से, देशकाल की विभिन्न परिस्थितियों में स्वयं निर्णय ले सकें। अतः पारिवारिक विषय जैसे कि शादी, तलाक, महिलाएँ, पत्नी, पुत्री, बहन, माता, आदमी, लड़का, भाई, पति और पिता को तो शासन के क्षेत्र के बाहर ही होना चाहिए। शासन और इसकी न्याय व्यवस्था द्वारा इनमें कोई भी हस्तक्षेप, बुनियादी अधिकारों का शासन द्वारा ही हनन है। (अगर शादी कोर्ट ने कराई है तो ही कोर्ट किसी विवाद या तलाक के विषय में निर्णय लेने का हकदार है। अगर शादी समाज ने कराई है तो समाज स्वयं विवाद के किसी भी मुद्दे का हल निकालने के लिए जिम्मेदार है, और अगर कोर्ट इसमें हस्तक्षेप कर रहा है, तो कोर्ट स्वयं विध्वंसात्मक भूमिका का निर्माण कर रहा है, जो कि उस बुनियादी अधिकार के ही खिलाफ है, जिसके लिए कोर्ट की स्थापना की गई है, जो सरकार इस तरह के कोर्टों का चलाती है उस औपनिवेषिक, गैर या जन विरोधी कहा जा सकता है। न्याय व्यवस्था को पारिवारिक मामलों से मुक्त कर देने से और इन्हें समाज पर छोड़ देने से, एक समान नागरिक संहिता की बात अपने आप ही पूरा हो जाती है।

10. अर्धन्यायिक सेवाएँ जैसे कि श्रम न्यायालय, खाद्य और स्वच्छता, जिनका काम करने एक मात्र तरीका यह बचा है कि वे एक पक्ष को दबाने के लिए दूसरे पक्ष के साथ हिस्सा बाँट करें, के बारे में यह विचार करना आवश्यक है कि कैसे एक या दूसरे पक्ष के साथ किए जाने वाले भेदभाव को कम करने के लिए क्या किया जाए, यह जिम्मेदारी वरिष्ठ नागरिकों और धार्मिक संस्थाओं की समिति को दी जा सकती है।

11. अपराधों को रोकने के लिए सतर्कता बरतना, अपराध होने का इन्तजार करने से बेहतर है।

12. पुलिस और सेनाओं द्वारा किया जाने वाला अत्याचार, नागरिक अधिकारों का प्रश्न नहीं है, यह तो न्यायिक प्रक्रिया की असफलता का प्रश्न है। आज न्यायिक व्यवस्था समाज की संरक्षक होने के स्थान पर, सामाजिक ताने–बाने को छिन्न–भिन्न करने का काम कर रही है। किसी भी शहर में होने वाली और लम्बे समय तक चलने वाली गड़बड़ियों के लिए उस समय की सारी न्याय व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। कोई केस दर्ज नहीं किया गया, न्याय न किए जाने का बहाना नहीं बन सकता। न्याय व्यवस्था में भ्रष्टाचार को, जो कि सारी दुनिया में बढ़ता चला जा रहा है, भारत में अंकुश में रखना

होगा, ताकि हम अच्छी तरह से रह सके एवं विश्व के समस्त उदाहरण प्रस्तुत हो सकें।

13. न्याय व्यवस्था में उच्चतम स्तर की ईमानदारी और सरलता को बरकरार रखने के लिए, न्यायाधीशों के ऊपर लगातार निगरानी रखना आवश्यक है, उनमें भ्रष्टाचार का पता लगते ही उन पर कार्यवाही की जानी चाहिए, और सरलता बनाए रखने के लिए यह जरूरी है कि उनकी गाड़ियों पर से लाल रोशनियाँ हटा दी जायें। न्यायाधीशों या वकीलों का महिमा मंडल बताता है कि न्याय की स्थिति खराब है, (क्योंकि महिमा मण्डल तभी बनता है जब स्थिति/चीजें खराब हों)।

हम परमात्मा से प्रार्थना करें कि न्याय व्यवस्था अपने आप को धरती पर जीते जागते स्वर्ग के निर्माण के कार्य में लगायेगी।

***

67

समाज की सुरक्षा और प्रतिरक्षा

जीवन के सातत्व के लिए सुरक्षा अनिवार्य है, बच्चा माँ के गर्भ में सुरक्षित रहता है, और फिर उसके बाद माता–पिता के संरक्षण में, और फिर इसके बाद उस समाज और उसकी संस्थाओं का संरक्षण प्राप्त होता है। हम उन लोगों का सम्मान करते हैं जो हमें सुरक्षा प्रदान करते हैं, और जब हम सुरक्षित अनुभव करते हैं तब हम प्रेम द्वारा इसकी अभिव्यक्ति करते हैं, और जब हम जोखिम उठाने के लिए तैयार हों तो इससे पता पड़ता है कि हमारी सुरक्षा सुनिश्चित है। अधिक से अधिक इतना ही हो सकता है कि कोई इस सुरक्षा को दाँव पर लगा दे और इसे खतरा पैदा कर दे।

स्वयं को ज्ञात अपनी सुरक्षा को हम चीजों को एकत्रित करके एवं दूसरों को ज्यादा से ज्यादा सुरक्षा प्रदान कर विस्तार देते हैं, और हम अपनी अज्ञात सुरक्षा को बड़े और उससे भी बड़े और अंततः सबसे बड़े परमात्मा की प्रार्थना कर विस्तृत होता हुआ पाते हैं। चोरों को रात सुरक्षित लगती है और दूसरे लोगों को दिन, और वे रात में अपने घरों में सुख पूर्वक विश्राम करते हैं। साधुओं को तो हर जगह सुरक्षित लगती है और वे अधिकांशतः अकेलेपन, एकांत और शान्ति में प्रकृति की गोद में निवास करते हैं।

किसी भी देश में, हम सब तब सुरक्षित अनुभव करते हैं जबकि हम शारीरिक रूप से सुरक्षित हों, भावनात्मक और आर्थिक रूप से मजबूत और आध्यात्मिक रूप से जागृत, और तभी किसी देश को सुरक्षित कहा जा सकता है, सुरक्षा चीजों को करने के प्रति सिर्फ एक दृष्टि है। लोगों को सुरक्षा की अनुभूति तब होती है जबकि उनका घर और देश मजबूत और आजाद रहे, देश की सीमाएँ चौकस रहे, और इसके अपने पड़ोसियों के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध हों। देश के एक नागरिक की हैसियत से हमारी सामूहिक समाजिक सुरक्षा और प्रतिरक्षा के प्रति हमारी ये प्राथमिक जिम्मेंदारियाँ हैं।

1. दूसरे देशों द्वारा विकसित हथियारों के जरिए देश की सीमाओं को सुरक्षित करने से भविष्य में भी सुरक्षा के बने रहने की गहरी अनुभूति पैदा नहीं होती, हमको को अपने खुद के हथियारों को विकसित करने के लिए ज्यादा प्रयास और ज्यादा धन के निवेश करने की आवश्यकता है।
2. हथियारों के लिए किसी भी दूसरे देश पर निर्भरता केवल दोयम दर्जे की प्रतिरक्षा ही प्रदान कर सकती है, और अगर यह निर्भरता बहुत से देशों पर है तो केवल तीसरे या

चौथे दर्जे की। हमें इसको समझना चाहिए और उत्तम दर्जे की प्रतिरक्षा और सुरक्षा सेनाओं का निर्माण करने का संकल्प लेना चाहिए।

3. सौ प्रतिशत सुरक्षा और प्रतिरक्षा जैसी कोई चीज नहीं है, और केवल गुजरे जमाने की बात है, सौ प्रतिशत की माँग करना तो भूत में गुम हो जाने के समतुल्य है। वर्तमान में जीवन्तता के साथ जीवित रहना ही वास्तविक सुरक्षा प्रदान कर सकता है। सरकार तो सौ में से अधिक से अधिक केवल निन्यानवे प्रतिशत, जैसे कि कुरान में ईश्वर के सौ नामों में निन्यानवे ही प्रदान कर सकती हैं।

4. चूँकि पहली सुरक्षा शारीरिक ही है, और चूँकि इसकी माँग है कि सेनाएँ बेहतर हो, देश को इसे सर्वोच्च प्राथमिकता देना जरूरी है। वैश्विक परिदृश्य को देखते हुए यह जरूरी है कि हम न सिर्फ आणविक हथियारों का विकास करें बल्कि साथ ही सुरक्षा के अन्य क्षेत्र को भी मजबूत करे।

5. दूसरी सुरक्षा रोटी, कपड़ा और मकान ही है और विभिन्न कार्यक्रमों के जरिए इसे वैसे भी प्राप्त किया जा चुका है। भुखमरी, बिना कपड़ों के रहने और फुटपाथ पर रहने की मजबूरी से बाहर निकलने के लिए प्रयास करने ही होंगे।

6. सुरक्षा की सम्पूर्णता गुप्तचर सेवाओं से ही आती है और इनकी सुदृढ़ता बनाये रखनी होगी जिससे कि हम न केवल अपनी सुरक्षा कर सकें वरन अपने प्रायद्वीप मं अपने मित्र देशों को भी सुरक्षित रखने में सहयोग दें सकें। मीडिया को ध्यान देना होगा एंव मीडिया पर भी ध्यान देना होगा कि कहीं बाह्य प्रभाव से सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा पर शंका/दबाव/अतिरिक्त भरोसा तो पैदा नहीं हो रहा है।

7. सुरक्षा और प्रतिरक्षा मानसिक अवधारणाएँ हैं, हमें ऐसे सटीक सन्देश देना चाहिए जिससे न तो सुरक्षा के प्रति खतरे को बढ़ा–चढ़ा कर देखा जाए और न ही कम करके आँका जाए, ताकि हम इस पर केवल उचित मात्रा में ही व्यय करें और जीवन के बाकी क्षेत्र विपरीत रूप से प्रभावित न हों। स्त्रियॉ आंतरिक कार्य काफी अच्छी तरह से संभालती है इसलिए देश एवं समाज की आंतरिक सुरक्षा की जिम्मेंदारी स्त्रियों को, वाह्य सुरक्षा की जिम्मेदारी पुरूशों को सॅभालनी चाहिए। इन सुरक्षाओं को संभालने के लिए यह जरूरी है कि स्त्रियो को जूडो कराटे, कुगफू, कराली कला एवं मध्यम अस्त्र–भास्त्र की शिक्षा एवं प्रशिाक्षण दिया जाये एवं पुरूषों को लड़ने की कला –कौशल, कुर्बानी तथा सभी अस्त्र भास्त्र की शिक्षा एवं प्रशिक्षण दिया जाये।

8. सुरक्षित देश के लिए सुरक्षित पड़ोसी जरूरी है, यह हमारी आवश्यकता भी है और नैतिक जिम्मेदारी भी कि हम अपने पड़ोसी की सुरक्षा का ध्यान रखें।

9. मजबूत और प्रेमपूर्ण लोगों की सभी सराहना करते हैं, और इससे दूसरों में शायद ही कोई ईर्ष्या या दुर्भावना पैदा होती है। और भारत के भारत को सुरक्षित और मजबूत सामाजिक स्तर की यह आवश्यकता और उद्देश्य है।

10. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह समझा जा सकता है कि द्विध्रुवीय शक्ति समूहों की उपस्थिति से किसी भी देश पर बाह्य आक्रमण की सम्भावना कम हो जाती है, लेकिन ऐसा होने के

पीछे शीतयुद्ध की निरन्तरता और महाविनाश का निरन्तर भय मौजूद रहता हैं। इस आणविक युग में, आत्मनिर्भर बने रहने का अर्थ न सिर्फ अलग–थलग बने रहना है बल्कि दूसरों से दबे रहना भी, और कभी–कभी तो ऐसा करना आत्मघाती है। गुटनिरपेक्षता शब्द न केवल आँखों में धूल झोंकने का संकेत देता है, बल्कि विकलांगता का भी और यह तो मृत्यु की ओर निर्देशित है। हमें इस गुटनिरपेक्ष समूह को एक शक्ति समूह में बदलना होगा।

11. एक ध्रुवीयता तो ऐसी है जैसे कि वीर्य विहीनता, जैसे कि एक केंचुआ जो न तो मारता है और न ही दिल में कोई उमंग पैदा करता है, ऐसी परिस्थिति तो एक नई व्यवस्था या प्रणाली के अंत या शुरुआत की ओर इंगित करती है। हमें इस तथ्य को पूरी पवित्रता से स्वीकार करना चाहिए और समाज और प्रकृति में सुन्दरता बनाए रखने के लिए श्रम करना चाहिए।

12. बहुध्रुवीयता और बड़ी घटनाओं में द्विध्रुवीय व्यवस्था सबसे ज्यादा उपादेयता रखती हैं। धर्म ही आगे जाने का सबसे अच्छा निर्देशक है। भविष्य की दिखाई दे रही द्विध्रुवीयता में चौथे विश्वयुद्ध की किसी भी सम्भावित परिस्थिति और उसके बाद विश्व को दिशा देने में हमें सहयोग देना होगा, (तीसरा विश्वयुद्ध तो आर्थिक स्वरूप में लगातार जारी ही है)।

13. इस आणविक युग में, आणविक या विद्युत चुम्बकीय तरंगों से चलने वाले किसी भी हथियार को अंतरिक्ष में रोकने, उसकी दिशा बदलने या उसे वहीं नष्ट कर देने की प्रणालियाँ सबसे ज्यादा महत्व रखती हैं। इसे विकसित करना जरूरी है क्योंकि यही विनाश से बचा पाएगा, और युद्ध के बाद पुनर्निमाण कर पाएगा।

14. स्वस्थ और भावनात्मक रूप से मजबूत लोग तो शमशान में भी बाँसुरी बजा सकते हैं और वहीं पर सुधार के लिए कदम उठा सकते हैं, देश की सुरक्षा के लिए हमारा यही लक्ष्य होना चाहिए।

जब भी हम किसी तीसरे की चिन्ता किए बिना किसी भी दूसरे को राजनैतिक आश्रय देने में सक्षम होंगे, तभी हम कह सकेंगे कि हम सुरक्षित, मजबूत और सक्षम है। हालाकि किसी को भी शरण देने से पहले उसे हमारे दिलो और दिमाग से की जाने वाली परीक्षा से उर्त्तीण होकर निकलना होगा क्योंकि बुरी तरंगों को फैलने में मदद करने, कचरा घर बनने या व्यर्थ शहीद हो जाने में कोई तुक नहीं है।

अनगिनत तरीकों से बार–बार ढूँढ़ निकाला गया जीवन का एक मात्र उद्देश्य निश्चित ही आनंदित रहना और परमात्मा को याद करना ही है, और इसके लिए यह भी आवश्यक है कि हमारी सुरक्षा एवं प्रतिरक्षा हमें सुरक्षित रख सके एवं प्रतिरक्षा करने लायक सामर्थ्यवान बनाये रखे।

***

68

सबके लिए भोजन

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम,

दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।

प्रकृति हमेशा मुहों से ज्यादा चुग्गे की व्यवस्था रखती है, समस्या तो केवल तब पैदा होती जब प्रकृति के वितरण में हस्तक्षेप किया जाता है। अकाल इसलिए नहीं पड़े कि खाना कम था, बस केवल इसलिए कि इसका वितरण खराब था। चीजों की कमी हो या अधिकता कन्ट्रोल, नियंत्रण एवं पुनः वितरण कोई अच्छी चीज नहीं है, चाहे विपरीत परिस्थिति हो, आम समय या प्रचुरता, अनुशासन जरूरी है, कंट्रोल नहीं।

नानक ने कोई चार सौ साल पहले लंगरों की शुरुआत कराई, ये वैसे ही हैं जैसे कि अन्नकूट, भण्डारे और कुरानखानी। ये धार्मिक दावतें आगंतुकों को खाना खिलाने के लिए भी होती है, और मुख्य रूप से तो धार्मिक स्थलों पर आगंतुकों को परमात्मा के चरणों के पास खाना खिलाने के लिए भी। जरूरत है कि गांवों, कस्बों, शहरों और महानगरों में भी, लंगर शुरू किए जाएं, न सिर्फ जरूरतमंदों को भोजन देने के लिए ही, बल्कि इसके आध्यत्मिक पक्ष को ध्यान में रखते हुए भी।

1. शासन को इस प्रकार के लगातार किए जा रहे कार्यों को सहयोग प्रदान करना चाहिए, फिर चाहे वे किसी धर्म के धार्मिक स्थान पर किए जा रहे हों या फिर सारे ही धार्मिक समुदायों द्वारा एक साथ। शासन को इनमें सहयोग प्रदान करने के लिए समाज को प्रेरित करना चाहिए, इस तरह कि शुरुआत के एक–दो वर्षों तक शासन इन्हें अपने साधनों से सहयोग दे, और बाद में जब ये आत्मनिर्भर हो जाएं, तब करों में कटौती करके, इनके चलते रहने के लिए अवसर दे।

   ऐसे धार्मिक केंद्रों को जरूरतमंद लोगों में वितरण के लिए कपड़े इकट्ठे करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, और इसके साथ ही रात्रिकालीन शरण स्थलियों को चलाने के लिए भी। शरण स्थलियों की जरूस्त निश्चित ही महानगरों में सबसे ज्यादा है। भोजन की ये दावतें भिक्षावृत्ति को प्रोत्साहन देने के लिए न हों, इसलिए भोजन, कपड़े या शरण प्राप्त करने वालों से इन स्थानों को चलाने के लिए कुछ काम लिया जाना जरूरी है, फिर यह काम केवल सफाई का भी हो सकता है, स्थान की सुरक्षा का भी, या फिर इन केंद्रों से जुड़े हुए तालाबों, नहरों, नालों के रखरखाव का भी। जिस भी

व्यक्ति में दुर्भावना दिखाई दे, उस व्यक्ति को उसी के समुदाय के हाथों कार्यवाही के लिए सौंप दिया जाना चाहिए, निश्चित ही यह देखा जाना चाहिए कि जरूरत से ज्यादा दंड न दिया जाए।

2. शासन द्वारा चलाई जाने वाली खाद्य सुरक्षा और सार्वजनिक वितरण प्रणाली की समीक्षा किए जाने की जरूरत है, और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने पर इसे हटाया जाना ही बेहतर है। जब आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो तो, इस तरह की वितरण प्रणालियां राहत तो कम देती हैं, अकर्मण्यता, गरीबी, धोखाधड़ी और बड़े स्तर के घोटालों के लिए जिम्मेंदार ज्यादा होती हैं।

   खाद्य पदार्थों के आयात और निर्यात् पर राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए कड़ी निगरानी आवश्यक है। आपदा की किसी भी भावी परिस्थिति से निपटने और दूसरे देशों को इसमें मदद देने की लिए तीन वर्ष के लिए पर्याप्त खाद्यान्न भंडार बनाकर रखा जाना चाहिए। मुनाफाखोरी के लिए किए जा रहे भंडारण और बाजार की कीमतों को उठाने–गिराने के लिए की जा रही जखीरेबाजी पर कड़ी नजर रखा जाना जरूरी है, ताकि खाद्य सुरक्षाा व्यवस्था के लिए खतरा पैदा न हो।

3. नानक के संदेश '' काज करो, बांट चखो, नाम जपो '' अपना काम करो, साथ–साथ खाओं पिओ और प्रभु का स्मरण करो, को ध्यान में रखे जाने की जरूरत है।

   यहां ईश्वर का ध्यान पांच बार भी किया जा सकता है, जैसा कि आम मुसलमान सात सौ छियासी शब्दों की नमाज में करते हैं, या फिर इसे लगातार भी किया जा सकता है, जैसा कि सूफी किया करते हैं। ईश्वर के ध्यान के पांच वक्त हैं : उठते ही सूर्य उदय के साथ, दोपहर को काम के बीच में विश्राम के समय (लंच ब्रेक में), काम की समाप्ति पर, सूर्यास्त के समय, और रात में सोने से पहले। इसे हरेक कोई अपने–अपने तरीके और शैली में एकांत में भी कर सकता है, हरेक कोई अपने–अपने धर्म के अनुसार, या फिर सामूहिक रूप से भी, अपने–अपने धार्मिक समुदायों के अनुयाइयों के साथ।

4. शरीर का भोजन वह है जो हम अपनी आंखों, कानों, नासिका, स्पर्श या मुंह से प्राप्त करते हैं। मुंह से जो हम खाना खाते हैं कुल खाने का दसवां हिस्सा ही है। स्वस्थ आनंदित और पवित्र रहने के लिए यह जरूरी है कि न सिर्फ मुंह से खाया जाने वाला भोजन, बल्कि हमारा पूरा आहार ही अच्छा । अगर हमारा भोजन शुद्ध है तो, हमारी सत्यनिष्ठा और पवित्र होती है, सत्यनिष्ठा के पवित्र होने से हमें सही स्मृति की प्राप्ति होती है, सम्यक स्मृति से अनावश्यक चिंताओं, बंधनों और विभाजनकारी रेखाओं से मुक्ति होती है।

हम प्रार्थना करें, और अपने व्यवहार में भी स्वस्थ आनंदित और पवित्र बने रहने के लिए, केवल सम्यक भोजन ग्रहण करें।

***

जल

जीवन समुद्र में शुरू हुआ था, और सारे गर्भाशयों में जब पेट में बच्चा बड़ा होता है, समुद्र के पानी जैसा ही पानी भरा होता है। सारी जमीन के नीचे पानी है, और पानी के नीचे जमीन। पीने के पानी की क्या कोई कमी है ? केवल प्रबंध उचित होना चाहिए। किसी एक राज्य या किसी दूसरे राज्य के हितों की आड़ में, पूरे जीव जन्तुओं के इसके पानी के ऊपर अधिकार को बलि नहीं दिया जा सकता। यह प्राकृतिक विषय है।

'' शरीर भोजन से बनता है, भोजन जल से उद्भूत होता है, जल वर्षा से, और वर्षा यज्ञ के परिणाम में होती है, और यज्ञ कर्मो से ''।

कृत्रिम वर्षा जैसे प्रकृति को जीतने के प्रयासों को कोई सफलता नहीं मिलती है। अगर पूरी धरती की सतह एक समान होती तो इस पर हर जगह दो से तीन मीटर तक पानी होता। अगर पानी को कहीं गहराई में इकट्ठा करना है तो कहीं न कहीं तो धरती को उठना ही होगा, और इसीलिए समुद्रों के किनारों पर पहाड़ और पहाड़िया बनीं। समुद्र के किनारों पर भी गर्मियों के मौसम में कुओं में पानी का स्तर रोज ब रोज और हफ्ता दर हफ्ता गिरता जाता है, और जब वर्षा आती है या चक्रवात तो कुओं में भी पानी तेजी से बढ़ने लगता है।

1. बड़े बांधों का निर्माण ताकि उन पर बड़े ऊर्जा संयत्र भी लगाए जा सके, आसपास के इलाकों में भूकंप और धरती की ठीक उल्टी दिशा में बड़े भूकंपों का कारण बन सकते हैं, इनसे बचना ही उचित है। बिजली ऊर्जा की पैदावार पानी पर छोटे–छोटे पनबिजली संयंत्रों से और बड़े वायु बिजली (विंड टरबाइन) समुद्र में एवं के आस–पास लगाकर की जा सकती है।
2. नदियों को आपस में जोड़ना तो अकल्पनीय रूप से विनाश का कारण बन सकता है, इसे हर कीमत पर रोका जाना चाहिए। नहरें, तालाब और पानी के कुएं, चैक डैम्स और वर्षा के जल का संग्रहण प्रोत्साहन के योग्य है तथा तालाबों और झीलों को आपस में जोड़ना उचित।
3. वृक्षारोपण न सिर्फ भारत में जरूरी है, बल्कि अफ्रीकन एवं लेटिन अमेरिकन देशों में भी। बाढ़ नियंत्रण के लिए, अकाल से बचाव के लिए, भूजल स्तर को ऊपर उठाने के लिए और दूसरे अन्य लाभों को दृष्टि में रखते हुए यह आवश्यक है कि ये कदम दूसरे देशों

के लिए भी मिशाल बने। बाढ़ और सूखा इसिलिए ज्यादा पड़ने लगा है कि नदियों तालाबों और बॉधों कि चौड़ाई गहराई पहाड़ों से आई इुई मिट्टी के कारण भर गई है, जिससे नदिओं के पानी रखने की क्षमता कम हो गई। पहाड़ों से मिट्टी का क्षरण इसलिए बढ़ गया है कि वह पेड़ कटने के कारण नग्न हो गई है और बारि ा का पानी बजाए पेड़ो के सीधे जमीन को काटने लगा है और पेड़ न होने के कारण तेजी से बहने लगा है तथा पेड़ न होने से पहाड़ो के अन्दर रहने वाला पानी भी कम (खत्म) होने लगा है।

4. समुद्रों और महासागरों की तलहटी में आणुविक और अन्य हथियारों के परीक्षण पर पूरी तरह रोक होनी चाहिए, ताकि सुनामी की तरह की घटनाएं न हों।

5. पैकेटों और बोतलों में बंद पानी कि इतने बड़े पैमाने पर बिक्री देश के लिए कलंक है। पीने के पानी को गुणवत्ता के नाम पर पैक करके बेच रही कंपनियों के मुनाफों से काफी कम पैसा खर्च करके, किसी भी क्षेत्र के पानी को पीने के लायक गुणवत्तायुक्त बनाया जा सकता है। नमकीन पानी वाले सारे इलाकों में पानी से नमक अलग करने के संयंत्र लगाए जाने चाहिए। पानी की गुणवत्ता को देखने और इसे सुनिश्चित करने का काम स्थानीय वरिष्ठ नागारिकों और धार्मिक संस्थाओं को दिया जाना चाहिए।

6. मध्यम आकार के और सीमित लागत में बनाए जा सकने वाले, जल शुद्धिकरण संयत्रों के विकास के लिए जो गांवों और कालोनियों के स्तर पर काम कर सकें, शोध और विकास को प्रोत्साहन देना जरूरी है। जहां तक चेक डैम, वर्षा जल के संग्रहण और ड्रिप इर्रीगेशन (बूँद–बूँद वाली सिंचाई) का सवाल है, बड़े स्तर पर विशेषज्ञ सलाह और आर्थिक सहायता प्रदाय की आवश्यकता है। वर्शा के पानी को जमीन के अन्दर (रेन वाटर हार्वेस्टिंग) ले जाने के लिए भाहरों में सड़क के किनारे, ओवर ब्रिजों के नीचे एवं तालाबों, नदियों के किनारे पर आसानी से बड़ी मात्रा में किया जा सकता है। मकानों से वर्शा जल का संरक्षण मन को बहला सकता है, लेकिन रेगिस्तान के अन्यत्र ज्यादा कारगर नहीं है।

7. गंगा, आवे जम–जम (मक्का) एवं बोल्गा (रूस) का पानी दुनिया के अन्य पानी, और किसी भी पैकेट बंद पानी से अच्छा है। इसे उचित उपयोग के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। नदियों के पवित्रता एवं स्वच्छता के लिए धार्मिक संस्थाओं को अपनी जिम्मेदारी बढ़ानी होगी। चूँकि राज्य एवं केन्द्र सरकार तालाबों को सुरक्षित, संरक्षित, स्वच्छ रखने में नाकामयाब रही है–और रहेगी भी। इसलिए यह जरूरी है कि राज्य–केन्द्र तालाबों और झीलों को समाज को सौप दे एवं उसके रखरखाव मे सहयोग के लिए कुछ धनरा ि दे। घरों में बर्तनों की धुलाई में रसायन के स्थान पर राख के प्रयोग को बढ़ावा देने की जरूरत है, जिससे पानी में रसायन की मात्रा कम हो सके।

8. घर की रसोइयों और धुलाई से निकले हुए पानी के उचित उपयोग के लिए घर की छतों पर सब्जियों आदि का उत्पादन में उचित है। परिवारों को खराब पानी को शुद्ध कर पुनः इस्तेमाल के लायक बनाने वाले छोटे घरेलू संयंत्रों के इस्तेमाल के लिए प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए ताकि बगीचों में पानी देने, फर्श की साफ–सफाई और वाहनों की धुलाई के

लिए ताजे पानी का प्रयोग न हो। साफ–सफाई के लिए कोयले से बिजली बनाने वाले संयंत्रों की राख और मुल्तानी मिट्टी से बने घरेलू फेस पैकों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। राख का प्रयोग नदियों, तालाबों और भूतल जल के शुद्धीकरण के लिए भी किया जा सकता है।

9. अगर बड़े किसान सिंचाई के पानी को छोटे किसानों के पास जाने से रोक देते हैं, तो इसके लिए कड़ा दंड उचित है।

एक बाल्टी से छलकता हुआ पानी दूसरी बाल्टी को खाली कर देता है। सारे राष्ट्रीय जल संसाधनों पर प्रकृति के हरेक प्राणी का, नदी के स्त्रोत से लेकर इसके समुद्र में गिरने तक एक समान अधिकार है।

रहीम कहते हैं

''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून''।।

***

स्वास्थ्य

कहा गया है कि, अगर हमारे दिमाग स्वस्थ आनंदित और पवित्र हैं, तो दुनियां में किसी भी समस्या का कण मात्र भी नहीं बचता, ंसारी दुनिया ही आनंद की कुटिया हो जाती है।

यदि एक व्यक्ति स्नानघर में अपने शरीर को सराह सकता है, तो वह स्वस्थ है। यदि कोई व्यक्ति स्नानघर में, श्रृगार में और खाने के स्थान पर अपने शरीर को नही सराह सकता तब उसे इलाज की जरूरत है।

इलाज के लिए विधायें निम्नलिखित हैंः–

इलाज का तंत्र में उल्लेखित तरीका हैः– ''मन जड़ को गति प्रदान करता है, दिमाग शरीर को चलाता है ''। दिमाग ही शरीर को बनाए रखता है, और अगर मस्तिष्क स्वस्थ है, तो शरीर तो स्वाभाविक रूप से ठीक रहेगा ही। तंत्र मस्तिष्क पदार्थ और इनकी गतियों से संबंधित हैं, और भगवान शिव ने मां पार्वती को, सारी मानवता की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, इलाज के एक सौ बारह विभिन्न तरीके बताए हैं, जो कि इसके सूत्रों के अनुसार सार्वकालिक हैं। गंधों के द्वारा, यज्ञों से वातावरण की शुद्धि कर, शरीर शुद्धि और यौन गतिविधि को सम्यवक बनाकर इलाज के तरीके तंत्र की ही उत्पत्ति है।

इलाज का वर्गीकृत तरीकाः–

ऐसा कहा जाता है कि, अगर मशीन के सारे पुर्जे ठीक हों, तो मशीन ठीक होगी ही। चिकित्सा विज्ञान का अधिकांश हिस्सा इसी समझ पर कार्य करता है। चिकित्सा विज्ञान की कई पद्धतियां एलोपैथी, आयुर्वेद और यूनानी आदि अलग–अलग अंगों और उनकी खराबियों को इस आशा में ठीक करने का प्रयास करती हैं कि इससे संपूर्ण व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक हो जाएगा। आयुर्वेद, अर्थात आयु का ज्ञान, पांचवा वेद कहा जाता है, और यह अपनी इलाज प्रक्रिया में ज्योतिष को भी उपयोग करता है। ऊर्जा प्रवाह को प्रभावित करने वाली विधियां जैसे एक्यूप्रेशर, एक्यूपंचर, रंगों, चुंबकों, और मालिश, आदि पर आधारित विधियां भी वर्गीकृत इलाज की ही विधियॉ हैं।

इलाज का एकीकृत तरीका :–

इलाज करने का एक और तरीका संपूर्ण इकाई को एक साथ लेकर चलना चाहता है, इसका सूत्रवाक्य है कि तुम अलग–अलग हिस्सों को एक तरफ छोड़ो, पूरे मस्तिष्क और शरीर पर

ध्यान दो, जब मशीन में बिजली दौड़ती है तभी इसके पुर्जे काम करते हैं। इस तरीके के लिए तो शरीर के सारे कार्य एक ही बड़े कार्य का हिस्सा है। योग, ध्यान, फेथ हीलिंग आर्शिवाद एवं विश्वास,तप और कुछ हद तक प्राकृतिक चिकित्सा और सम्मोहन इस सिद्धांत पर काम करते हैं।

लयबद्धता के तरीके :–

आम समझ यह है कि योग स्वास्थ्य की उच्चतक अवस्था है, जिसमें, ली गई और छोड़ी गई चीजों के बीच में एक लय बद्धता निर्मित हो जाती है। जिनके भीतर और बाहर में एक लय बद्धता नहीं है उनके लिए तो योग ही विकल्प है।

लेकिन फिर वे क्या करेंगे जो पूरी तरह लयबद्ध हैं ही, जैसे कि योगी। योगी नृत्य ही करता है, पूर्णता का प्राप्त योगी शायद ही कभी कोई योगिक कसरत करता हो। योगी तो योग में रहता है, और वे नृत्य ही करते हैं, सभी के सभी सूफी एवं शिव, कृष्ण ।

रजनीश की समझ ने एक नई दिशा हमारे लिए खोली है। उन्होंने समझा कि चूंकि योगी नृत्य करते हैं, इसलिए अगर कोई नृत्य कर सकता है तो वह योगी ही होगा, पूरी तरह स्वस्थ पवित्र और आनंदित। रजनीश ने हम सबके लिए अपने इस अनुभव को रूपाकार किया है, और बहुत से ऐसे तरीके बताए हैं, जिनसे हम गायन और नृत्य कर सके।

मरीजों के लिए दवाइयां, असंतुलित और टूटे हुए लोगों के लिए योग और स्वस्थ लोगों के लिए नृत्य अर्थात् गाना, खेलना और नाचना, इसी तरह उपयुक्त है।

शासन को नृत्य केंद्रों को प्रोत्साहन देना चाहिए, यह केंद्र सूफियों या ओशो के संगीत के अनुरूप भी हो सकते हैं। शिक्षा केंद्रों में इन्हें विषयों की तरह और कार्यालयों में इन्हें कसरतों की तरह प्रोत्साहन किया जाना चाहिए। दिन में एक नृत्य चिकित्सक दूर रखता है।

1. हमें पूर्वीय स्वास्थ्य प्रणालियों को सुधारने, प्रोत्साहित करने और उन्हें जारी चिकित्सा कार्य का हिस्सा बनाने की जरूरत है।
2. देखा गया है कि सरकारी डॉक्टरों में कार्य के प्रति उदासीनता है और प्राइवेट डॉक्टरों में मरीजों को खींचने के लिए अंधाधुंध दौड़। प्राइवेट डॉक्टर तो यह प्रार्थना ही करते हैं कि उनके पास ज्यादा से ज्यादा मरीज आयें, और इस तरह वे यही प्रार्थना कर रहे हैं कि बीमारियां ज्यादा हो तो बेहतर। इस प्रार्थना तक को सुधारना जरूरी है।
3. शासन को डॉक्टरों और अस्पतालों द्वारा ली जा रही फीसों पर नियंत्रण करने की जरूरत है, और उसे माध्यमों के साथ इस तरह काम करना चाहिए कि, इस व्यवसाय को जरूरत से ज्यादा बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत न किया जाए। यह देखा गया है कि डॉक्टरों और उनके परिवारों के लोग आम परिवारों से ज्यादा दवाइयां खा रहे हैं।
4 चिकित्सकीय खर्चों की आड़ लेकर किये जा रहे घोटालों को सीमित किया जाना चाहिए। सरकारी अस्पतालों और दवा विक्रेताओं, शासकीय और निजी क्षेत्र के अस्पतालों, और प्राइवेट अस्पतालों और दवा विक्रेताओं के बीच चल रही सांठ–गांठ पर अंकुश लगाना चाहिए। शासकीय अस्पतालों का बाह्यरोगी विभाग कम से कम दस घंटे खुलना चाहिए।

5. इलाज के सारे भिन्न तरीके, पेट की सफाई को ज्यादा महत्व देते हैं। इनकी दृष्टि में बीमारियां पेट से शुरू होती हैं और पेट से ही ठीक। अगर हम इसको मनो–शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से देखें तो हम इसको इस तरह कह सकते हैं, कि पेट की गड़बड़ी तब शुरू होती है जब कि हम किसी अनुभूति, भाव, वक्तव्य या परिस्थिति को पचा पाने में सफल नहीं हो पाते। इलाज के भिन्न तरीके (डिफरेन्सियल मैथड्स) अपनी इस समझ के कारण, इलाज को शरीर के स्तर पर कम और मन के स्तर पर ज्यादा करने के पक्षधर हैं, और इन तरीकों के परिणाम जरूर यह इंगित करते हैं कि सामूहिक स्वस्थ आनंदित और पवित्र वातावरण किसी भी वास्तविक चिकित्सा की बुनियादी आवश्यकता है।

   ये तरीके इंगित करते हैं कि न सिर्फ बीमारियां, बल्कि स्वास्थ और आनंद भी संक्रामक हैं, और इस तरह ये व्यक्ति के स्थान पर सामूहिकता को ज्यादा महत्व दिए जाने की आवश्यकता बताते हैं।

6. शासन और धार्मिक केंद्रों को इस संदेश को प्रचारित करना चाहिए, कि अगर मनुष्य का भोजन ठीक होगा तो शरीर अपने आप ठीक चलेगा। यहां शरीर के भोजन का अर्थ वे सारी चीजें भी हैं जो हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से गृहण करते हैं, मुंह से खाया जाने वाला खाना तो सिर्फ दस प्रतिशत है।

   बहुत से लोग भोजन को दवाई की तरह लेते हैं, और बहुत से दवाई को भी भोजन की तरह। भोजन की शुद्धता सत्यता को बढ़ाती है।

7. चिकित्सा पर्यटन में हांलाकि विदेशी मुद्राकोष को बढ़ाने की पर्याप्त संभावना मौजूद है, लेकिन दूसरों की बीमारी से मुनाफा कमाने की मानसिकता, स्वयं ही बीमार मानसिकता है, इसे एक स्वस्थ्य संस्कृति किसी भी तरह समर्थन नहीं दे सकती। हांलाकि हमारे दरवाजे हमेशा ही इस देश के भीतर विदेशियों के इलाज के लिए खुले हैं।

8. जैसे–जैसे मानव जीवन और–और पल्लवित होने की दिशा में बढ़ता है स्वास्थ्य और सौंदर्य के लिए प्लास्टिक सर्जरी, क्लोनिंग, जीनोम और स्टेमसेल के स्तर पर किए जाने वाले हस्तक्षेप बढ़ेंगे ही। भ्रूण और हृदय प्रत्यारोपाण, और मस्तिष्क को कृत्रिम रूप से क्रियाशील बनाने की तकनीके भी उपलब्ध होंगीं, और जैसा कि होता है, शुरुआत में बाजार में उछाल आता है और बाद में समाज और मनुष्य का मस्तिष्क अपनी विवेक की छलनी से इसे अपने उचित स्थान पर पहुंचा देता है।

जहां तक बुनियादी बात है, वह तो यही है कि '' स्वस्थ, आनंदित और पवित्र शरीर के लिए कृपया शरीर की सुने, यह सारी चेतावनियां और संकेत देने में सक्षम है।

***

71

शुद्धता और स्वच्छता

हमें यह मानना ही पड़ेगा कि इस समय हमारे गांव, शहर और महानगर हमारी आशा के अनुरूप स्वच्छ नहीं हैं। हमारी रिहायशें या तो जरूरत से ज्यादा सफाई से थक गई हैं, या फिर गंदी ही रहने के लिए छोड़ दी गई हैं। बहुत बार तो हम, एक जगह को साफ करने के लिए, बाकी सब जगहों को और गंदा बना देते हैं।

हांलाकि गांवों में कचरे को ठिकाने लगाने के लिए कोई संगठित व्यवस्था नहीं हैं, लेकिन इसके बाद भी वे उन महानगरों से बहुत साफ हैं जहां पर कचड़े के निष्पादन के लिए बड़ी और संगठित व्यवस्थाएं हैं।

गांवों के हमारे महानगरों से ज्यादा स्वच्छ होने का क्या कारण है– निश्चित ही इसका कारण गांवों के आदमी की सरल जिंदगी में निहित है, जिसको जीते हुए, ग्रामीण कोई अनावश्यक कचरा पैदा ही नहीं करता।

शुद्धता (हाइजीन) शब्द का अर्थ है, शरीरगत मूल अवयवों जीनों में उच्चता, जो स्वस्थ जीवन के लिए, शुद्ध वातावरण के निर्माण की दिशा में प्रेरित करती है। हाइजीन व्यक्तिगत चुनाव और प्रयास पर निर्भर है हांलाकि इसका उद्‌भव सामूहिक प्रयास के द्वारा प्राप्त की गई स्वच्छता में ही निहित है।

समस्या तब पैदा होती है जबकि, स्वच्छता को बनाए रखने वाले व्यक्ति के साथ, जो कि स्वस्थ जीवन की धुरी है, दूसरे या तीसरे दर्जे का या यहां तक कि अमानवीय व्यवहार किया जाता है। आमतौर पर सभी प्रवचनकर्ता मन और शरीर की शुद्धता और सफाई पर जोर देते हैं, तब ऐसा कैसे हो जाता है कि, इस काम को सामूहिक रूप से करने वाला, कम महत्वपूर्ण हो जाता है या फिर त्याज्य ?

ऐसा लगता है कि मंदिर में दीप जलाना और गुंसलखाने की सफाई करना एक समान महत्वपूर्ण चीजें ही होनी चाहिए, और अगर ऐसा है तो ऐसा करने वालों के प्रति व्यवहार भी समान ही होना चाहिए। वह समाज जो ईश्वर के रहने के लिए स्वच्छ वातावरण के सृजन में लीन व्यक्ति को समान और सम्मानजनक व्यवहार प्रदान नहीं करता, वह किसी दूसरे समाज द्वारा दबा दिया जाता है, हरा दिया जाता है या यहां तक कि गुलाम बना लिया जाता है, फिर चाहे यह कितना भी शक्तिशाली क्यों न रहा हो। एशिया के पतन में, यह सबसे महत्वपूर्ण

कारणों में से एक रहा और दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि एशिया के स्वयं के बुद्धिजीवियों ने– आत्मा की सफाई के तथाकथित प्रवक्ताओं ने समाज ऐसा होने दिया।

स्वच्छता में सौंदर्य का वास है, इसी में ईश्वर निवास करता है।

अ. कुलमिलाकर हमारी स्वच्छता के स्तर में मच्छर भगाने वाली चीजों के आविष्कार के बाद गिरावट ही आई है। मच्छर भगाने वाली चीजों के निर्माणकर्ता, और इनकी बिक्री के लिए बनी हुई खुदरा व्यापारियों की श्रृंखला ने आम गंदगी और पानी के जमाव को बढ़ावा दिया है, और मच्छरों के खतरे को जरूरत से ज्यादा बढ़ाकर प्रस्तुत किया है। लोगों, नगरपालिकाओं और निगमों के आलस्य, और इनके किसी भी विकल्प के अभाव ने तो आम स्वच्छता को और भी खराब कर दिया है।

ब. औद्योगिकीकरण और इसके अपरिमित फलों की आशा ने जो अंधापन पैदा किया, उसके कारण नदियों के गंदा होने को अनदेखा कर दिया गया। इस तरह के औद्योगिकीकरण से, न तो इतने मीठे फल आए हैं और न ही आएगें, हां नदियों की गंदगी ने बड़ी जनसंख्या को प्रभावित जरूर कर दिया है। अब नदियों की इस गंदगी से वे लोग क्षोभ से भर गए हैं जो कि जल राशियों की पूजा करते हैं, प्रकृति के प्रेमी हैं, और उनके अलावा आम लोग भी जो इन नदियों के पास रहते हैं।

स. जो गंदगी इकट्ठा करता रहता है उसका जीवन भी गंदा हो जाता है। केवल साफ वातावरण में ही समृद्धि और प्रसन्नता का वास होता है। सुअर से घृणा करने का अर्थ, गंदगी को साफ करना है, सिर्फ सुअर को घृणा करने से कुछ नहीं होता, इससे तो केवल गंदगी की सफाई के प्राकृतिक रास्ते ही बंद होते हैं, और सच तो यह है कि सुअरों की संख्या और इनके साथ–साथ मक्खियों की संख्या भी बढ़ जाती है और हमारी घृणा में भी थोड़ा सा इजाफा ही होता है। धार्मिक संस्थाओं को साफ–सफाई और शुद्धता की जिम्मेंदारी लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

1. सड़े–गले पदार्थों के अवयवों को इकट्ठा करने, और प्रयोग के बाद इनके उपयोग की व्यवस्था करने के लिए तकनीकि प्रगति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

2. गंदगी के स्वामी बनकर कमाओ और स्वच्छता की स्थापना करो, इस नारे के आस–पास गतिविधियां शुरू की जानी चाहिए, और इसके लिए आवश्यक उपकरण और धनराशि स्वयं समाज द्वारा इस कार्य के लिए आगे आने वाले युवकों को प्रदान की जानी चाहिए।

3. धार्मिक केंद्रों और वरिष्ठ नागरिकों की समितियों को नगरपालिकाओं की स्वच्छता संबंधी गतिविधियों का नेतृत्व करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। उन्हें बाजारों और कालोनियों में उपयुक्त स्थानों पर जनसुविधाएं बनाने के लिए ही प्रेरित करना चाहिए। शासन को सफाई के काम में अपने आपको धीरे–धीरे हटाना होगा एंव सीधे समाज को यह जिम्मेदारी सौपनी होगी।

4. मंदिरों और मस्जिदों को अपनी स्वयं की और आस–पास की सफाई के लिए तब तक विशेष आर्थिक सहायता प्रदान की जानी चाहिए, जब तक कि ये वित्तीय रूप से आत्मनिर्भर न बन जाएं।

5. स्कूलों और कालेजों को, अपने छात्रों को अपने परिसरों घरों और समाज को शिक्षा के उपयुक्त और पवित्र रखने के लिए, कुछ विशेष पुरुष्कार आदि देने के तरीकों से प्रेरित करना चाहिए।

6. नदियों और दूसरे जलाशयों की सफाई के लिए धार्मिक केंद्र, वरिष्ठ नागरिकों की समितियों और पैंसठ वर्ष की उम्र से बड़े सम्मानीय व्यक्तियों को सहयोग देने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

7. स्वच्छता के मार्ग में रुकावट बन रहे उद्योग को, बिना किसी हिचक के दूसरे स्थान पर ले जाना, जरूरी है, फिर चाहे उद्योग कितना भी बड़ा क्यों न हो। सुरक्षा, उपयुक्तता, सावधानी, स्थान परिवर्तन और झाड़ू लगाना (अंग्रेजी के पांच एस से अनुवादित), इनको उद्योग और घरों दोनों में प्रोत्साहन देना जरूरी है।

स्वच्छता और शुद्धता की समस्या केवल तब खड़ी होती है जबकि हम, स्वस्थ जीवन के इस आधार के व्यवहारिक कार्य में लगे योजनाकारों और कार्यकर्ताओं के प्रति दूसरे, तीसरे या चौथे दर्जे का व्यवहार शुरू करते हैं, और कभी–कभी अमानवीय भी। ऐसा समाज जहां वास्तविक काम करने वाले को, प्रवचन देने वालों और पांसे बैठाने वालों की तुलना में ज्यादा सम्मान मिलता है, वही समाज नेतृत्व करने के काबिल है और उसमें ऐसा बने रहने की शक्ति भी।

उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, प्रस्ताव है कि स्वच्छता कर्मियों को शासकीय नौकरियों में दिया जाने वाला चतुर्थ वर्ग का स्तर समाप्त किया जाए, और यह भी प्रस्ताव है कि उसे पुजारी के लगभग समतुल्य ही पारिश्रमिक मिले। अगर ऐसा किया जाता है तो थोड़े ही समय में आरक्षणों की आवश्यकता महत्वहीन हो जाएगी।

माध्यम स्वच्छता का संदेश तो फैला ही रहे हैं। स्वच्छ घर, स्वच्छ मोहल्ले, स्वच्छ शहर, जिले आदि के लिए प्रतियोगिताओं, पारितोषिकों और रनिंग ट्राफीस की व्यवस्था होनी चाहिए।

***

72

गणवेश और वेशभूषा

आप अपने विस्तरों में और स्नानगृहों में कौन से कपड़े पहनते हैं, इसकी कोई चिंता नहीं करता। लेकिन जो किन्हीं दबावों में बाहर भी ऐसा करने लगते हैं, दया के ही पात्र हैं, और वे जो जानबूझकर ऐसा करते हैं, वे केवल दूसरों का ध्यान खींच रहे हैं, चाहे यौन की दृष्टि से या आध्यात्म की दृष्टि से।

मनुष्य कई कारणों से कपड़े पहनता है, अपनी सुरक्षा के लिए भी और दिखाने के लिए भी। अपने को बचाने के लिए और दिखाने के लिए पहने जाने वाले कपड़ों और उनके रंगों की बहुत से आयाम हैं, और यह उसकी उपलब्धता और उसकी पसंद से भी प्रभावित होती है ।

रंगों की पसंद मुख्यतः देशकाल पर निर्भर करती है। कहते हैं कि श्वेत रंग के प्रकाश में सात रंग होते हैं। इन सात रंगों को शरीर में मौजूद सात चक्रों के साथ जोड़कर देखा गया है। जैसे कि सिर में सहस्त्रार में बैगनी से लेकर काम केंद्र में मौजूद मूलाधार में लाल तक, इंद्रधनुष शरीर में विराजमान हो।

अगर हम ध्यान से देखें तो शादियों में मुख्यतः लाल रंग का उपयोग होता है, कामभावना जगाने के लिए। शादी की पच्चीसवीं सालगिरह मनाने के लिए श्वेत/नारंगी वस्त्रों को उचित माना जाता है। संत भगवा वस्त्र का प्रयोग करते हैं, शायद मृत्यु को चिन्हित करने के लिए, जैसे कि चिता में अग्नि का रंग होता है। कहते हैं कि इंद्रियों में रहने वाले पीत वस्त्रों का प्रयोग करते हैं, मुक्त हृदय के लोग हरे, प्रवचनकर्ता नीले, आदेश देने में सक्षम व्यक्ति जामिनी रंग और शांति और आनंद को प्राप्त हो गए लोग बैगनी रंग का। श्वेत तो सभी को अच्छा लगता है, और जिनमें सारे रंगों का समावेश है उनके लिए श्वेत उचित ही है। काले रंग का प्रयोग तो निश्चित ही रंगों और प्रकाश दोनों की अनुपस्थिति है, इसका उपयोग डकैत करते हैं, लोगों को फँसाने वाली औरतें/मर्द कदाचित बहुत ही ज्यादा सृजनात्मक लोग और ब्लैककेट कमांडो।

1. भावदशा कपड़ों और उनके रंगों के चयन पर प्रभाव डालती है, और इसी तरह कपड़े भी भावदशा पर।
2. गणवेश एक समान दिखने के लिए होते हैं या भीतरी और बाहरी उद्देश्यों के लिए अपनी पृथक पहचान और ब्राण्ड बनाने के लिए एवं आपस में एकता और समानता की

भावना के सृजन के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। इनको सेवा के स्वरूप और मौसम, उम्र और लिंग के अनुसार होना ही चाहिए। स्कूल के गणवेशों में मौजूद अनर्गल प्रणाली, जैसे कि बच्चों को सर्दी के मौसम में हाफ पैंट और गर्मी में टाई पहनाना और लड़कियों को भी टाई पहनाने लगना जैसी चीजों में सुधार होना ही चाहिए। गर्म क्षेत्रों में अधिकारियों/एक्जीक्यूटिवों की पोशाक में टाई और कोट जैसी चीजों को प्रोत्साहन देने की क्या जरूरत है ? उद्योगों में तो टाई को पूरी तरह से हटा ही दिया जाना चाहिए, इनके लिए ऐसी पोशाकें ही ठीक हैं जिससे कि गतिशीलता बनी रहे।

3. चूंकि काला रंग तो स्वयं नियम विरुद्धता का ही प्रतीक है, इसलिए इसे कोर्ट/न्यायालयों की प्रतिमा जजों और वकीलों की पोशाक और यहां तक कि उनके लिखने के पैन के रंग और उसकी स्याही सबसे हटा दिया जाना चाहिए। काला रंग चूंकि अंधकार का प्रतीक है, इसलिए उसे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाने वाली शिक्षा के उपरांत आयोजित किए जाने वाले, दीक्षांत समारोहों से भी हटा ही देना उचित है।

4. नाभि से नीचे मौजूद अंगों के महत्व को बढ़ा–चढ़ा कर प्रस्तुत करने वाले किन्हीं भी संकेतों को अपमान जनक ही माना जाना चाहिए, और उसके साथ ऐसा ही व्यवहार उचित है। हांलाकि ऐसे विषयों में शासन द्वारा किसी भी तरह के हस्तक्षेप की आशा नहीं की जानी चाहिए, लेकिन फिर भी हमें खुद तो यह ध्यान रखना ही चाहिए कि हम स्वच्छ और सम्मानपूर्ण वस्त्र धारण करें, ताकि हम स्वस्थ रह सकें और दूसरों को भी आनंदपूर्ण रहने की प्रेरणा दें।

5. इलाज के लिए, रंगों को इस्तेंमाल जो कि वैकल्पिक कही जाने वाली चिकित्सा पद्धतियों में से एक है, प्रोतसाहन का हकदार है।

6. बुरका और पर्दा प्रथा के बारे में मुस्लिम और हिन्दू समुदाय में विचार विमर्श को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। अरब / दूसरे गर्म देशों में, गर्मी के थपेड़ो से बचने के लिए, पुरुष और महिलाएं दोनों ही अपने चेहरों पर नकाबों (बुर्का) का इस्तेमाल में करते हैं। कुछ इलाके में पुरूशों ने दाड़ी बढ़ाई और टोपी पहनी ताकि गर्म हवा से बच सकें।

   मुसलमानों में आमतौर से और हिन्दू समुदाय में भी कुछ हद तक यह धारणा मौजूद है, कि चूंकि महिलाओं के लिए आजाद रहना ठीक नहीं, इसलिए उनको ढांककर, बचाकर और रोककर रखना चाहिए। यहां तक कि रामचरित मानस में तुलसीदास तक कहते हैं '' जिस तरह से भारी वर्षा से बगीचों की मुड़ेर टूट जाती है, उसी तरह स्वतंत्र होने पर नारी अपने रास्ते से विचलित हो जाती है।

   लेकिन ऐसी भावनाएं न तो गीता में मौजूद हैं, न ही वेदों, कुरान और गुरुग्रंथ साहिब में, और इसीलिए ये भावनाएं प्राकृतिक नहीं हो सकती, इनसे तो मुक्ति ही उचित है। जरूरत है कि हिन्दू और मुसलमान संयुक्त रूप से इस विषय पर विचार करें, ताकि हमारा आधा हिस्सा, बहनें, माताएं और लड़कियां भी आवश्यक स्वतंत्रता का आनंद ले

सकें एवं पुरूश जबरजस्ती में दाड़ी बनाकर, टोपी पहनकर बेहूदा न लगें।

नियंत्रण और प्रगति, दमन और आनंद विरोधी चीजें हैं।

7 नेताओं की वेशभूषा

हम आमतौर पर घरों में कुर्ता–पायजामा पहनते हैं, या फिर विश्राम और नींद के लिए, अगर कोई दिनभर इन्हें पहने रहे, तो हम इसे क्या कहेंगे ?

दिनभर ढीले–ढाले कपड़े पहने रहने से नींद आती रहती है, आलस्य और सुस्ती छाती है, और काम में दम नहीं बचती। काम के समय अच्छी तरह फिट होने वाले कपड़े जो कमर में ज्यादा कसे हुए न हो, और आराम और विश्राम के समय ढीले–ढाले कपड़े ही बेहतर है, और अगर ये मौसम और विवेक के अनुरूप हैं तो सर्वोत्म।

जब वक्त कठिन हो तो नेता को आम आदमी के ही कपड़े पहने चाहिए, देश की तरक्की हो रही हो तो सफेद या रंग–बिरंगे, और अगर विकसित अवस्था है तो निश्चित ही औपचारिक। हर अवस्था में सिर एवं पैर ढकने की व्यवस्था होनी ही चाहिए।

भारत के आम मौसम में पुरूशों/महिलाओं के लिए अन्य परिधानों के साथ जींस– ार्ट धोती/साड़ी सर्वोत्तम है।

8. सूती रेशमी एवं ऊनी कपड़े उन वस्त्रों के लिए उत्तम है जो शरीर को स्पर्श करते हैं और वही सिन्थेटिक (टेरीकाट इत्यादि) एवं चर्म वस्त्र बाह्य अलंकरण (बेल्ट, पर्स, जूता एवं चप्पल) के लिए ठीक रहते है, एवं बेहतर स्वास्थ्य के लिए इन्हे इसी तरह उपयोग में लाया जा सकता है।

स्वच्छता सफाई एवं सुन्दरता बनाये रखने के लिए रसोई में कपड़े एवं जूते, चप्पल पहनने के नियमों का होना एवं उन्हें पालन करना जरूरी है।

माध्यमों को पोशाकों और गणवेशों के बारे में पहले से सतर्क रहकर कार्य करने की जरूरत है।

***

73

भाषा

पहला भाषिक संप्रेषण, तो मां ने अपने नवजात शिशु के प्रति गहरे प्रेम से आंदोलित होकर ही किया होगा, इसलिए इसे मां की भाषा कहते हैं। प्रेम की अभिव्यक्ति के बहुत से तरीके हैं, और इसीलिए तरह–तरह की भाषाएं हैं, और भाषाओं में भी विविधता, और चूंकि सारी ही माताएं धरती मां के सदृष्य हैं इसलिए दुनिया की सारी भाषाओं में कोई एक समान चीज भी मौजूद है, उदाहरण के लिए अ, ऊ, और म की ध्वनियां सारी भाषाओं, सारी बोलियों और यहां तक कि सारी आम जबानों में भी मौजूद हैं।

भाषाएं प्रेम से ही पैदा होती हैं, और प्रेम वह है जो हम दूसरों को देते हैं, वह नहीं जो हम दूसरों से ले लेते हैं, और अगर हम भाषाओं के विकास के इतिहास को देखें, तो हम देख पाएंगें, कि वहीं भाषा आगे बढ़ी, जिसने सबसे ज्यादा दिया, और वहीं काल के थपेड़ों को सहने में सक्षम हुई। पाली, प्राकृत, हिब्रू और लैटिन ने हांलाकि काफी कुछ दिया था, लेकिन चूंकि इनका योगदान पर्याप्त नहीं था, इसीलिए ये बाकी भाषाओं में डूब गईं, जबकि संस्कृत जिसने मनुष्यता को अपना सर्वोत्तम और सब कुछ योगदान में दे दिया, वह आज भी लगभग सारी भारतीय भाषाओं एवं बहुत सी यूरोपियन भाषाओं को जन्म देने के बावजूद आजतक अपनी पूरी महिमा में जिंदा है। संस्कृत दुनिया की सारी भााषाओं में से सबसे ज्यादा शक्तिशाली, आत्मानुभूति से भरी और वैज्ञानिक भाषा है। चौवन ध्वनियों और आठ सौ अस्सी धातु शब्दों के आधार पर यह सभी कुछ कह लेती है।

सारी खोजें प्रकृति की, अपने आपको प्रगट करने की इच्छा से जन्म लेती हैं, और प्रकृति यह नहीं चाहती कि कोई भी इन पर एकाधिकार या मालिकियत स्थापित कर ले, क्योंकि प्रकृति ने हर चीज सबके लिए ही खोली होती है। भाषाओं के बारे में भी यही सच है। आगे आने वाले समय में भाषाओं का परस्पर समागम और उनमें से ज्यादा परिपूर्ण भाषाएं बनने की प्रक्रिया चलने वाली है। अंग्रेजी चूंकि यह सबको स्वीकृत और समाहित करने वाली भाषा है, अरबी चूंकि इसको दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आबादी बोलती है, संस्कृत चूंकि यह सबसे ज्यादा शक्तिशाली है, और चीनी के पास भविष्य की भाषा को देने के लिए सबसे ज्यादा है।

1. राज्यों की सीमा रेखाएं, अवरोध और भाषाओं के आधार पर विभेद विकास के मार्ग में

बाधक हैं।

2. चूंकि कोई भी भाषा किसी की बपौती नहीं है, इसलिए किसी भी भाषा को फैलने से रोकना किसी भी तरह उचित नहीं, अंत में स्थापित तो वही भाषा होती है जो सबसे ज्यादा देती हैं। हृदय से पैदा होने वाली भाषाएं जैसे संस्कृत, हिन्दी, और अरबी, उन भाषाओं से ज्यादा मीठी लगती हैं, जो दिमाग में से निकलती हैं, जैसे अंग्रेजी और फ्रैंच, इसके बारे में कोई कर भी क्या सकता है।
3. भाषिक संहिता संस्कृत या इसकी कोई शाखा ही हो सकती है, इसके साथ हैं चीनी और इंग्लिश और जरूरी हो तो अरेबिक भी। शासन को उपर्युक्त चार भाषाओं में से दो को मुख्य और एक को वैकल्पिक भाषा बनाने पर भी विचार करना चाहिए।
4. हमें भाषा के क्षेत्र में शोध और विकास शुरू करना चाहिए, ताकि लयबद्धता की ध्वनियां ढूढ़ी जा सकें, इनको प्रोत्साहित किया जा सके और फिर एक से दूसरी भाषा में स्वीकृत।
5. वे भाषाएं जो गुरु के मुख और ऋषियों के मुंह से निकली हैं, उनका जीवन स्वभावतः लंबा होता है। हमें इस बात का गर्व हो सकता है कि संस्कृत को देव भाषा और इसके लिखित रूप को देवनागरी कहते हैं।

मां की भाषा या भविष्य में होने वाली माता (सास) की भाषा में मौजूद लयबद्धता को प्रोत्साहन जरूरी है, लेकिन फिर भी सबसे अच्छी भावनाएं तो केवल मौन में ही प्रवाहित होती हैं, हम कह सकते हैं कि प्रेम का मौन सर्वोत्तम भाषा है।

***

74

खेल

जिनके लिए जीवन ही खेल है, उनका जीवन आनंदमय है, और जिनके लिए खेल प्रतिस्पर्धा और चुनौती है, उनके लिए खेल का मैदान भी तनाव का स्थान है।

खेलना एक अधिकार है, लेकिन जीतना तो बहुत सी चीजों और कारकों पर निर्भर है, और अच्छा है कि हम जीत और हार को प्रकृति पर ही छोड़ दें। अगर हमारा सारा ध्यान जीतने पर ही है तो खेल बर्वाद हो जाता है, लेकिन अगर हमारा ध्यान खेल में लगा है तो फिर जीतने की संभावना भी बढ़ जाती है। जब पूरा ही जीवन खेल और काम है, तब हम इससे बच भी कैसे सकते हैं ? हमारे पास चयन का कोई मार्ग है ही नहीं, हमें तो काम करना पड़ेगा और खेलना भी पड़ेगा, और अगर कोई ऐसा करने से इंकार कर दे तो उसके ऊपर अनकिए कामों का बोझ भर बढ़ता चला जाएगा। हरेक किसी को काम करना पड़ता है और पसीना भी बहाना पड़ता है फिर चाहे वह काम करके पसीना बहाये या फिर पसीना बहाने या चर्बी कम करने के लिए काम करे या खेले ही ताकि वह कम से कम स्वस्थ एवं प्रसन्न बना रहे।

1. खेलना प्राथमिक चीज है, ताजपोशी द्वितीयक, और वह तो प्रकृति की कृपा पर निर्भर है। बहुत से देशों और उनके लोगों के लिए, खेल युद्ध का एक विकल्प है, लेकिन इस भावना को प्रोत्साहन देने की कोई जरूरत नहीं है, फिर भी अगर जंग आ ही गई है तो भी इसे खेल की भावना से लिया जाना चाहिए, और फिर पूरे ध्यान और ऊर्जा से खेला जाना चाहिए।
2. शासन को बच्चों के लिए खेलों में छोटे और मध्यम स्तर के रास्ते/स्थान खोलना चाहिए, अगर बच्चों को शारीरिक रूप से ठीकठाक और उनके दिमाग को लक्ष्य की ओर निर्देशित रहना है तो खेलों को प्रोत्साहन आवश्यक है।
3. शिक्षा संस्थाओं मे सारे बच्चों के लिए दिन में तीन घंटे तक खेल या मैदानी कार्य कक्षाएं जरूरी है। अगर स्कूल ये सुविधाएं नहीं दे सकता, तो शासन को इस स्कूल को ही बंद कर देने पर विचार करना होगा। शारीरिक रूप से सुदृढ़ और समय के पाबंद, सैन्य सेवाओं के अवकाश प्राप्त लोगों को, (जिनके पास सेनाओं की दृढ़ता और पालकों जैसा

हृदय है), हर स्कूल में स्थान दिया जाना चाहिए, ताकि वे खेल एवं मैदानी काम की सुविधाओं, पर ध्यान रख सकें।

4. गांवों, कस्बों, शहरों और महानगरों में खेलों को गति देना प्राथमिक महत्व की बात है, इनको लगातार जारी बनाए रखने की व्यवस्थाएं द्वितीयक, और सुविधाओं और अधोरचना का निर्माण ताकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताएं हो सकें, तृतीयक महत्व ही रखता है, और इन पर ऐसे ही विचार करना चाहिए।

5. सक्रिय खेलकूदों को प्रोत्साहन देना हमारा प्रयास होना चाहिए, निष्क्रिय खेलों को प्रोत्साहन देना नहीं, आखिरकार टेलीविजन में मैच देखकर या कमेण्ट्री सुनकर बच्चे क्या सीखते हैं ? खेलों से खुशी में तभी इजाफा होगा जब मुख्य खेल के पहले और बाद में तैयारी एवं समापन बतौर खेला जाये, जैसे कि फुटबाल के मैदान में उतरने से पहले थोड़ा व्यायाम/मैदान के चक्कर एवं खेल के बाद थोड़ी चहलकदमी न केवल स्वास्थ्य को बरकरार रखती है वरन् खेल के आनंद को भी बढ़ाती है शादी–शुदा दंपत्ति इससे सीख ले सकते है।

6. सभी खेलों को समान प्रोत्साहन की जरूरत है, और यही हमारा धर्मनिरपेक्षता का रुख है।

7. गेंदें तो बच्चों के लिए हैं, पुरुषों के लिए सारी शक्ति की मांग करने वाले और महिलाओं के लिए कला और लयबद्धता से परिपूर्ण खेलों पर शोध करने की जरूरत है। अन्तार्राश्ट्रीय खेलों में जहॉ साधारण दो कप काफी या दर्द निवारक गोली के सेवन पर खिलाड़ी डोप टेस्ट से फेल/निश्कासित कर दिये जाते है वहीं बाल्टी भर वीयर या बोतल भर व्हिस्की के सेवन से कोई निश्कासन नही होता है– का रवैया धनवान दे ाों के पक्ष में नजर आता है और इसके सुधार की जरूरत है।

8. अस्पतालों पर होने वाले खर्चों को कम करने के लिए शासन को खेलों के लिए आवंटित वजट और खेलों की अधोरचना में विस्तार करने की जरूरत है। खेल सुविधाओं को सारे दिनों, दिन में सोलह धण्टे से लकर चौबीस घण्टे तक खुला रहना चाहिए ताकि लोग अपने खेलने के लिए उचित समय प्राप्त कर सकें।

9. शासन को उद्योगों और ऑफिसों में भी खेल और नृत्य आदि की गतिविधियों को प्रोत्साहन देना चाहिए, लेकिन काम के समय के बाद या पहले। खेलों में जुएं का भी थोड़ा सा तथ्य हो सकता है, लेकिन कभी–कभी ही, और वह भी न्यायपालिका की नजर में।

यह आशा है कि हम अपने जीवन में खेल भावना से परिपूर्ण रुख लिऐ रहेंगे।

***

75

शिक्षा

एक छोटी सी कहानी और उसके बाद :

एक आदमी ने बीस साल में शेर की भाषा सीखी, और तब वह वन्य जीवन का वास्तव में संरक्षण करने के लिए जंगल में चला गया। बातचीत शुरू करने के लिए उसने शेर से पूछा कि मौसम का क्या हाल है, और शेर बोला कि शेरनी भाग गई है। दूसरे शेर से उसने भोजन के बारे में पूछा और शेर ने बरसात के बारे में कुछ बोलना शुरू किया। लगभग हर शेर से बातचीत का यही नतीजा था कि वह पूछता कुछ था और जवाब कुछ और मिलता। स्वाभाविक रूप से उसके दिल में यह ख्याल आया कि सारे ही शेर पागल हैं। लेकिन इस ख्याल को पुख्ता करने के लिए उसने सोचा कि उस बूढ़े शेर से बात की जाये, जिसकी सभी शेर इज्जत करते थे। उसने बूढ़े शेर से पूरी कहानी कही, और फिर यह भी कहा कि '' यह देखकर तो मुझे लगता है कि सारे शेर पागल हैं ''। बूढ़े शेर ने कहा '' कोई और वक्त होता तो मैं भी ऐसा ही कहता, लेकिन चूंकि तुम यहां निष्कर्ष निकालने के लिए आए हो, तो मैं तुम्हें बता दूं, कि जितने भी शेरों से तुमने बात की वे सभी बुद्धिमान हैं। वे इतने बुद्धिमान है, कि उनमें से किसी ने भी इंसानों की भाषा सीखने के लिए बीस साल बर्वाद नहीं किए। सभी शेरों को मालूम है कि हम शेरों की तरह पैदा हुए हैं, और शेरों की तरह ही हमें मरना है, और जब ऐसा होना ही है, तो फिर ज्यादा अच्छा है कि जैसा–जैसा जीवन सामने आए, वैसे–वैसे आनंद के साथ उसको जीते चला जाए ''।

''हम मनुष्यों की तरह पैदा हुए हैं और मनुष्यों की तरह ही हमें मरना है, हमें कुछ और नहीं हो जाना है, और न कहीं चले ही जाना है, फिर चाहे कोई चांद पर चला जाए या मंगल पर मनुष्य तो आखिरकार मनुष्य ही रहेगा। जीवन अभी है और यहां, और नक्शों की जरूरत कहीं दूर जाने के लिए नही वह तो घर वापस आने के लिए है उन लोगो के लिए जो भटक गये हैं''।

मनुष्य भटक गया है, उसको ऐसा लगने लगा कि तब और वहां जीवन का आनंद प्राप्त होगा, उसे वापिस लाने के लिए नक्शों की जरूरत है क्योंकि जीवन की सारी बुद्धिमत्ता और आनंद केवल यहीं है और अभी।

शिक्षा की आवश्यकता इसलिए है ताकि हम अपनी समझ और अपनी अभिव्यक्ति में एक समान अंतर्निहित सत्य को प्राप्त कर सकें, दूसरों के अनुभवों से सीख और समझ सकें, और अपने जीवन की नैया को भविष्य के अज्ञात अंधकार में ले चलने के लिए तैयार हो सकें। शिक्षा इस तरह की होनी चाहिए ताकि यह हमें अनावश्यक और बोझ बन गए भयों, अंधविश्वासों, और तनाव के बोझ से मुक्त कर सके। इसीलिए हमने कहा है कि **''सा विद्या या विमुक्तये'',** शिक्षा वह है जो मुक्त करती है। गुरु वह है जो शिष्य को उसकी मुक्ति में सहायता करता है, जैसे कि एक दाई बच्चों के पैदा होने में मदद करती है। गुरु यह ज्यादा अच्छी तरह तय कर सकता है कि, वह किस तरह के छात्रों को मुक्त कर सकता है, और इस तरह वही अपने हिसाब से छात्रों का चुनाव करे तो , यह छात्रों के लिए ज्यादा बेहतर है बजाये इसके कि वे अपने गुरु का चुनाव करें।

क्योंकि कोई भी तालाब में उतर कर तैरना शुरू नहीं कर देता, और कोई भी फुटवाल के मैदान में घुसते ही खिलाड़ी नहीं बन जाता, इस तरह हमारी पहली अध्यापक तो मां ही होती है जो प्रेम और सेवा का पाठ पढ़ाती है, दूसरा अध्यापक हमारा पिता होता है जो हमें कर्तव्य और जिम्मेदारियों की शिक्षा देता है, फिर दोस्तों और सहकर्मियों के रूप में और शिक्षक आते हैं जो हमें प्रतिस्पर्धा और तुलना का पाठ पढ़ाते हैं, और फिर पति या पत्नी जो हमें यह सिखाते हैं कि हम कैसे अनुभव करें और कैसे अभिव्यक्त, और फिर नए बच्चे आ जाते हैं जो हमें स्नेह का पाठ पढ़ाते हैं। और फिर बच्चों के बच्चें जो हमे साधुत्व की ओर प्रवृत करते है या साधुत्व सिखाते है।

''वास्तविक गुरु हमें जीवन के कर्म एवं उन्हें करने की कला सिखाता है और सिद्ध हमें जीवन के आधारभूत कर्म एवं धर्म उसमें निहित सत्य का अनुभव ''।

अगर जीवन में कुछ सीखना चाहते हैं तो यह जरूरी है कि :

1. औपचारिक स्कूलों में जाने के पहले, बच्चे घर में काफी समय (पाँच छःवर्ष) गुजारें, खासतौर से मां के साथ।
2. हरेक किसी को बुनियादी शिक्षा दिए जाने की जरूरत है, ताकि हमारी समझ और अभिव्यक्ति के लिए भाषा का सामान्य आधार बन सके, लेकिन निश्चित दबाव से नहीं। बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था घर के पास ही होनी चाहिए, और इसे सभी बच्चों को बिना किसी फीस के एक समान रूप से उपलब्ध होना चाहिए, क्योंकि यह समाज की बुनियादी आवश्यकता है, व्यक्ति की नहीं।
3. चूंकि शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य ही व्यक्ति को मुक्त करना है, इसलिए यह जरूरी है कि इस पर शासकीय नियंत्रण नहीं होना चाहिए, लेकिन निश्चित ही शासकीय आर्थिक सहयोग आवश्यक है। चूंकि शिक्षा और धर्म के उद्देश्य लगभग एक हैं, इसलिए इससे अच्छा और कुछ नहीं हो सकता कि प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी धार्मिक संस्थाएं अपने हाथ में लें। यहां, सभी और हर किसी को, बिना किसी भेदभाव और पूर्वाग्रह के, पहले से निर्धारित और सहमति पर आधारित पाठ्यक्रम के अनुसार, बारह वर्ष की उम्र तक शिक्षा मुफ्त दी जानी चाहिए।

4. लड़के और लड़कियां जीवन में अपने अलग–अलग भूमिकाओं के साथ अलग–अलग ढंग से सीखते हैं, इसीलिए बारह से अठारह वर्ष की उम्र तक उनकी शिक्षा अलग–अलग होनी चाहिए, महिलाओं की शिक्षा महिलाओं के अनुसार और पुरुषों की शिक्षा पुरुषों के अनुसार। लड़कियों की ि ाक्षा घर के पास एवं लड़को की शिक्षा घर से दूर होनी चाहिए। चूँकि अंदरूनी कामों में महिलाएँ ज्यादा सक्षम होती हैं अतः यह जरूरी है कि आंतरिक सुरक्षा में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण हो और इसके लिए लड़कियों को जूड़ो कराटे, कुंगफू, कराली–कला इत्यादि की ि ाक्षा एवं प्रि ाक्षण देना जरूरी है। इसी तरह पुरूश बाहरी कामों में ज्यादा निपुण होता है इसलिए लड़को को अस्त्र– ास्त्र की ि ाक्षा एवं प्रि ाक्षण देना जरूरी है और उन्हे वाह्य सुरक्षा संभालनी चाहिये/होगी।
5. इसके बाद यौन और पारिवारिक जीवन की शिक्षा, और अपने जीवन को चला सकने के लिए काम धंधों की शिक्षा आवश्यक है। ताकि पुरुष और स्त्रियां अपने शरीर के साथ–साथ आर्थिक और सामाजिक रूप से भी सुदृढ़ बन सकें।
6. धर्मनिरपेक्षता को ध्यान में रखते हुए यह जरूरी है कि वर्णमाला की शिक्षा तक में यह आवश्यक है कि पवित्र प्रतीकों का ही अक्षरों का अर्थ समझाने के लिए इस्तेमाल हो जैसे– अ–अल्लाह, ग–गणेश का, ज– जीसस का, भ–भारत का .....
7. बच्चों को खेलने, आत्मरक्षण सीखने और अपनी अन्य संभावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए शिक्षा में स्थान होना चाहिए।
8. बारह वर्ष की उम्र से छात्रों को अध्यापकों के साथ मिलकर, उनके सामने खुले हुए विभिन्न रास्तों को देखने और चुनने के लिए अवसर मिलना चाहिए।
9. किशोरावस्था में एक दिशा की ओर निर्देशित शिक्षा, अठारह वर्ष की उम्र के बाद उसी दिशा में उच्च शिक्षा, यही सामान्य नियम है। दिशा और विषयों के चुनाव के लिए अध्यापकों द्वारा छात्रों की क्षमताओं का मूल्यांकन ही अंतिम कसौटी होनी चाहिए। फीसों का अगर नितांत जरूरी है तो, उचित स्तर पर तय किए जाने की जरूरत है, जबकि प्रतिभाशाली लेकिन आर्थिक रूप से विपन्न लोगों को हर स्तर पर शिक्षा मुक्त होनी चाहिए। किशोरावस्था की शिक्षा के लिए हॉस्टल और गुरुकुल की व्यवस्था होनी चाहिए लेकिन बाध्यकारी नहीं, जबकि उच्चशिक्षा के लिए तो शिक्षा संस्थानों के परिसर में रहना आवश्यक होना चाहिए।
10. बारह वर्ष की उम्र के बाद किसी पर भी आगे पढ़ने की अनिवार्यता ठीक नहीं, छात्र अपने घर में ही पैतृक धंधों को करते हुए, उनके कार्यों में निपुणता प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन फिर भी सीखने के मार्ग में उम्र का कोई अंतिम बंधन लगा देना ठीक नहीं, फिर चाहे सीखने के इच्छुक व्यक्ति की आयु कुछ भी क्यों न हो।
11. शिक्षक उन्हीं को बनाना चाहिए, जिन्होंने जीवन में कुछ जाना है, सिर्फ जानकारी के पुलन्दे नहीं, और इसीलिए शिक्षकों के लिए अड़तालीस साल के बाद की उम्र ही बेहतर है, और विद्यालय का प्रधान तो केवल उसको होना चाहिए, जो सन्यासी हो और साथ ही साथ शारीरिक और मानसिक रूप से सुदृढ़। यह जरूरी है कि शिक्षा के कार्य में लगे

कर्मचारी की नियमित शारीरिक, मानसिक और व्यवहार के संबंध में जांच होती रहे, ताकि ऐसे शिक्षकों को हटाया जा सके जो गुलामी और उत्पीड़न की मानसिकता रखते हैं, ऐसे लोग कभी स्वतंत्रता, साहस और कुलमिलाकर भविष्य के अच्छे नागरिक बनाने के काम में कोई भूमिका नहीं निभा सकते।

उपर्युक्त अनुशंसाओं को कार्य रूप में बदलने के लिए यह जरूरी है कि :

अ) कामकाजी महिलाओं को दो बच्चों तक, बच्चों के जन्म पर पांच से छः साल तक अवकाश और कुछ धनराशि प्रति बच्चे के हिसाब से प्रतिमाह शिशु अनुदान मिलना चाहिए। महिलाओं के लिए शासकीय सेवाओं में आयु की छूट चालीस वर्ष से अधिक उम्र तक होनी चाहिए। महिलाओं को उनके मां–बाप या सास–श्वसुर की देखभाल के लिए भी अवकाश दिया जा सकता है (जो पैंसठ वर्ष के ऊपर के हैं)।

आ) नालंदा, तक्षशिला, रोम, ऑक्सफोर्ड और हार्वर्ड मिसालें हैं कि संस्थाएं और देश की प्रगति साथ–साथ चलती हैं, और देश यह स्वयं तय कर सकते हैं कि उन्हें क्या बनना है, चाटूकार–स्वयं समर्थ, अपने पर विशवास एवं अपने वि वास को रखने लायक।

इ) वरिष्ठ नागरिकों की समितियों और धार्मिक संस्थाओं को अपने आसपास के सभी बच्चों के लिए, मुफ्त और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा देने के लिए प्रोत्साहिए करना चाहिए और ऐसे केंद्रों को शासकीय सहयोग आवश्यक है।

उपरोक्त कार्यों को पूरा करने के लिए शासन को अपने वजट का लगभग दस प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने की जरूरत होगी। उपरोक्तानुसार शिक्षा, विदेशी नागरिकों को भी ऐसी ही शर्तों पर ऐसी ही सुविधाओं के साथ दी जानी चाहिए।

***

तकनीकी / टैक्नोंलॉजी (तकनीकी)

तकनीक और प्रक्रियाओं का विज्ञान से कोई ज्यादा लेना–देना नहीं है, उनकी पृथक पहचान होनी चाहिए। बहुत बार विज्ञान के विकास से तकनीक के बारे में सुझाव मिलते हैं, तो बहुत बार मशीन, तकनीक और सॉफ्ट वेयर वैज्ञानिक विकास का कारण होती है ताकि चीजें आसान हो सकें। बाह्य स्तर पर जो तकनीक कहलाती है वही आंतरिक स्तर पर यंत्र, तंत्र, मंत्र कहलाता है।

वैज्ञानिक समझ की जरूरत उनको है, जो कि जानना चाहते हैं, समझना चाहते हैं और नई चीजों को विकसित करना चाहते हैं, आमतौर पर तो, क्योंकि हर किसी को परिणामों की चिंता है, लोग विज्ञान की तुलना में तकनीक के ज्यादा पास हैं। वैसे ही आंतरिक स्तर पर लोग अध्यात्म की बजाये तंत्र वं तांत्रिकों के ज्यादा नजदीक हैं।

वक्त गुजरने के साथ, तकनीकों के बार–बार प्रयोग में लाए जाने वाले से तकनीकें विकसित होती हैं और बेहतर होती चली जाती हैं। उत्तरी भारत में ट्रैक्टर के स्थान पर जुगाड़ का विकास और डीजल जनरेटर में गोबर गैस का प्रयोग तकनीक विकास के उदाहरण है।

1. शासन को तकनीकी विकास को देश के भीतर और देश के बाहर भी फैलाने के लिए सहयोग देना चाहिए। इंजीनियरिंग तकनीक की केवल एक अभिव्यक्ति है और उसको पर्याप्त सहयोग देने की आवश्यकता है।

स्वस्थ तकनीकों के फैलाव में माध्यमों को सकारात्मक भूमिका अदा करना चाहिए। दूसरे क्षेत्रों जैसे– राजनीति, खेती, प्रबंध और सुरक्षा सेनाओं आदि में तकनीकि विकास को और प्रोत्साहन देने की जरूरत है। देश के दूरस्थ क्षेत्रों में विकसित तकनीक का किसी खास क्षेत्र में प्रयोग के लिए मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। पेटेंटों के स्थान पर तकनीक के विस्तार को प्रोत्साहन देना तेज किया जाना चाहिए। ध्रुवीय, भूमध्यरेखीय और बीच के क्षेत्रों मे स्वभावतः रेफ्रिजेरेटर पर्यावरण के अनुसार अलग–अलग ही बनाए जाने चाहिए।

सामूहिकता के लिए तकनीक बेहतर है। व्यक्ति के लिए स्पष्टवादिता। सही विकास का पैमाना

यह है कि कोई कितनी देर बिना चिंता के सो सकता है।

***

77

कम्प्यूटर और सूचना प्रौद्योगिकी

(अ) यह विचार और थोड़ा बहुत अनुभव भी कि मानवीय श्रमशक्ति संवेदनशील है, तथ्य भी हैं, और इसीलिए शक्तिशाली और साथ ही साथ मनुष्य की मनः स्थिति और उनके भावी व्यवहार के संबंध में अनिश्चितता से स्वतंत्र होने के लिए या होने के कारण ऐसी व्यवस्था बनाना जरूरी होता है, जिसके रहते, मानवीय हस्तक्षेप कम हो जायें। मशीनों के विकास की प्रक्रिया एवं इन्हें विकसित करने को बढ़ावा देने वाले की इच्छा इस व्यवहार को ध्वनित करती है (अगर हम निवेष और मशीनी करण की प्रोत्साहन गतिविधियों का प्रारूप देखें तो ऐसा ही दिखाई देता है)।

टेलीफोन और कम्प्यूटरों की खोज के बाद, इनके उपयोग की प्रक्रिया और उस पर नियंत्रण एवं उसके उपयोग से कुछ गतिविधियां नियंत्रित कर लेने के बाद, यह जरूरी समझा गया कि अधिक से अधिक जानकारी और अधिक से अधिक लिखित रूप में उपलब्ध मानवीय उपलब्धियां अपने पास आ सकें, अतः इंटरनेट और इंट्रानेट को प्रोत्साहन दिया गया। इनके विकास की प्रक्रिया को ध्यान से देखने पर यह कहा जा सकता है कि सूचना प्रौद्योगिकी कुछ ही वर्षों में अपने शिखर पर पहुंच जाएगी।

(आ) चूंकि स्वार्थपरता किसी का एकाधिकार नहीं है, न किसी व्यक्ति का और न किसी देश का, इसीलिए हर कोई इसके संदिग्ध इस्तेमाल में लगा है और इसके अंतर्राष्ट्रीय परिणामों की ज्यादा चिंता किसी को उचित नहीं लगती। लेकिन फिर भी हमें सदैव सतर्क, चौकन्ना गतिशील और कार्यशील होना आवश्यक है।

(इ) जैसे–जैसे मशीनों और सूचना को ज्यादा और हर रोज और ज्यादा महत्व मिलना प्रारंभ हुआ है, तब से ऐसे प्रयास प्रारंभ हुए है कि हर नई मशीन में ज्यादा नए गुण आयें और वह ज्यादा परिष्कृत हो और ऐसी सारी मशीनों वाले यह मांग करने लगे हैं कि इनके क्षेत्र को ज्यादा महत्व मिले, और जीवन के हर क्षेत्र पर इसका प्रभाव पड़े।

(ई) जैसे–जैसे ज्ञान का विस्तार हो रहा है, किसी भी व्यक्ति के पास उपलब्ध जानकारी बढ़ रही है, और नए लोगों के पास, क्योंकि वे नए है, ज्यादा नई जानकारियाँ उपलब्ध होंगी

ही। ऐसा समाज, जिसकी इस तरह की समझ है, और शासन जिसकी ऐसी इच्छाएं हैं, नए लोगों का सम्मान करेगा और ऐसे नियम बनाएगा जिनसे बच्चों के अधिकारों की रक्षा हो सके, और ज्ञान के विस्तार में वास्तव में रुचि रखने वाले लोग, नए लोगों का सम्मान करके (चाहे इसके लिए बुद्धिमाना एवं बुजुर्गों की अनदेखी एंव असम्मान करना पड़े) यह दिखा सकते है कि वह नयी सूचना एवं प्राद्योगिकी के प्रति सम्मानपूर्ण रूख रखते हैं।

ऐसी सूचना और ज्ञान जिन्हें बुद्धिमत्ता और विवेक की छलनी से छाना न गया हो, अच्छे या बुरे या दोनों ही तरह के परिणाम ला सकते हैं। अतः हर नई सूचना और ज्ञान को बुजुर्गों और बुद्धिमानों की परीक्षा में से पास होकर निकलना आवश्यक है, अतः सूचना और ज्ञान केंद्रों के साथ–साथ शासन को गुरुओं के आश्रम भी विकसित करने होंगे।

–निम्नलिखित निवेदित हैंः–

1. नए और पुरानों से ही मिलकर समाज बनता है, नए को प्रेम और स्नेह की आवश्यकता होती है और बुजुर्गों को उनके ध्यान और सम्मान की, समग्र संतुलन की आवश्यकता है। पश्चिमी समाजों में सूचना और ज्ञान के महत्व के विस्तार से हालाकि नए लोगों का सम्मान बढ़ा लेकिन पुरानों का सम्मान कम ही हुआ। भारत में एक समग्र दृष्टि लेते हुए इस सोच को बढ़ावा देने की आवश्यकता नहीं है।
2. बच्चों को सूचना प्रौद्योगिकी के महान नामों के जीवनों को देखना चाहिए कि इस तरह के तकनीक रक्षक अपनी जिंदगी का कितना हिस्सा कम्प्यूटर और सूचना प्रणालियों में खपा देते हैं, और तभी अपने जीवन की दिशा तय करनी चाहिए, वह भी तब जबकि इन नौजवानों को वास्तव में यह जरूरी लगता हो कि इन हस्तियों को अनुगमन करना जरूरी है, अन्यथा हर एक व्यक्ति के जीवन की अपनी खुद की बनानी चाहिए।
3. शासन को इस क्षेत्र के विकास में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और इस विकास को आगे बढ़ावा देने के लिए, इन उद्योगों को वैसे ही देखने की जरूरत है जैसे कि दूसरों को।
4. शासन को अपनी भाषा, अपने लिखित दस्तावेजों और दूसरे तरह के सम्प्रेषणों में एकीकरण के प्रयासों को तेज करना चाहिए। हमारे पास हमारा खुद का इंटरनेट आधार होना चाहिए और इस पर नियंत्रण की व्यवस्था भी। कन्वर्जेन्स की प्रणाली में छोटे द्वीपों के निर्माण, जैसे कि सिलो आपरेशन (स्वतः अलग होने) बनाने की निहित क्षमता होनी चाहिए, ताकि इलेक्ट्रॉनिक आक्रमणों के खतरों से रक्षा संभव हो सके।
5. देश के किसी भी कोने में, आसान कीमतों में टेलीफोन सुविधाएं उपलब्ध कराने के ताजे प्रयासों, जिन्हें ''एक देश'' के नारे के तहत शुरू किया गया है, का स्वागत होना चाहिए। शासन को यह देखना चाहिए कि, समतल मैदान, न सिर्फ सेवा देने वालों के लिए हो, बल्कि उपभोक्ताओं के लिए भी। वर्तमान परिदृष्य में जहां हर ओर ''कम कीमत में ज्यादा उपयोग करो'' का माहौल है, सुविधाएं गरीबों और ज्यादा किफायत से उनका उपयोग करने वाले लोगों की तुलना में, धनिकों की ओर चलती चली जा रही है। दरों को विवेक सम्मत और सरल बनाना यही जरूरत है। शासन को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि, किसी भी सेवा प्रदाता को फिर चाहे वह सरकार ही क्यों न हो, बीस प्रतिशत से ज्यादा

लाभ नहीं होना चाहिए।

शासन को नए–नए उपग्रह भेजने, और कम कीमत पर ज्यादा उपलब्धता को निश्चित ही प्रोत्साहन देना चाहिए ।

***

78

यातायात और संचार

बिना मंजिल के केवल सड़कें कहीं नहीं ले जाती। देश के समग्र और एक इकाई की तरह विकास के लिए भी, एक दूसरे से जुड़े रहने के दो महत्वपूर्ण पक्षों, आडियो–वीडियो और यातायात द्वारा आपसी संचार आवश्यक है।

बहुत से राज्य सड़कें ही नहीं बनवा पा रहे, और अगर सड़के हैं भी तो उनकी गुणवत्ता और उनका रखरखाव, स्तर के अनुरूप नहीं है। केंद्रीय संगठन जैसे कि बार्डर रोड संगठन और राष्ट्रीय राजमार्ग अधिकरण राज्यों के सड़क बनाने के संगठनों से बेहतर साबित हुए हैं।

1. रेलों को प्रादर्श मानते हुए हम सड़कों के लिए भी इसी तरह की योजना बना सकते हैं। तीन, चार या कुछ ज्यादा सार्वजनिक क्षेत्र के अथवा क्षेत्रीय सड़क संगठन समय की मांग है, हरेक क्षेत्र– चार–पाँच राज्य शामिल हो सकते हैं। निकटस्थ रेलवे स्टेशन से, जिला या ब्लाक मुख्यालय तक सड़क यातायात की व्यवस्था केंद्र द्वारा सुनिनिश्ति की जानी चाहिए। शहरी लोगों के लिए सड़क, यातायात बसों, टैक्सी, आटोरिक्शा आदि को व्यक्गित मालकियत के स्थान पर सहकारी होना चाहिए एक यात्रियों को आसानी प्रदान करने के लिए और दूसरा छोटे वाहन मालिकों को। पर्यटन से जुड़े हुये रेल, हवाई, सड़क यातायात को सीधे सुविधाजनक एवं उचित किराये वाला होना जरूरी है।
2. जिस तरह हवाई यातायात के किराए ज्यादा नीचे आ रहे हैं, ज्यादा से ज्यादा हवाई मार्गों को खोलना, खासतौर से पहाड़ी इलाकों और द्वीपों के लिए, विवेक संगत है, लेकिन हवाई यात्रा की कीमतों में कमी सुरक्षा इंतजामों और समय बद्धता को दरकिनार कर नहीं की जानी चाहिए।
3. चुंगी को तो हटाना ही उचित है, हमारे सामने रेलवे और टेलीफोन के उदाहरण हैं ही।
4. वाहनों की पंजीकरण संख्या पूरे देश में एक ही होना चाहिए। एक देश और एक ही नंबर।
5. बेहतर सड़कों, बेहतर वाहनों, ट्रेनों, हवाई जहाजों और हैलीकॉप्टरों के निर्माण के साथ

उनके लिए शोध और विकास सुविधाओं को भी बढ़ाना होगा। आपदा प्रबंधन के लिए बड़ी संख्या में हैलीकाप्टरों की जरूरत होती है, उन्हें बनाए रखना जरूरी होगा।

समुद्री यातायात और नदियों के द्वारा होने वाले यातायात के विषय में यह जरूरी है कि छोटे जहाजों देश के बीच तक आने–जाने की सुविधाएं निर्मित की जाएं। बंदरगाहों की बेहतर योजना और उनकी सतर्कतापूर्ण निगरानी आवश्यक है।

''नक्शे कहीं जाने के लिए नहीं होते : बल्कि उनकी तो भटक जाने पर वापिस घर आने के लिए जरूरत होती है। यातायात केवल घर वापिस लौटने लिए होता है।

***

79

रेलवे

''दुनिया की सबसे बेहतर भारतीय रेलवे को देश की आवश्यकतों के अनुरूप और बेहतर बनाने की जरूरत है''

1. आम यात्री के लिए सेकण्ड क्लास के डिब्बे की संख्या बढ़ाना जरूरी है। दूसरी श्रेणी के डिब्बों में बैठने की व्यवस्था बेहतर होना चाहिए, जैसे कि जन ाताब्दी एक्सप्रेस में। पीने के पानी की व्यवस्था ट्रेन के भीतर ही होना चाहिए। लगभग सभी ट्रेनों के लिए चाय आदि के लिए मशीनों की व्यवस्था ट्रेन में करना आवश्यक है।
2. अगर हमे पिछले पाँच साल की सांख्यिकी पर भरोसा करें तो दूसरी श्रेणी के सामान्य डिब्बों की संख्या निश्चित ही बढ़ना चाहिए। निश्चित ही प्लेटफार्मों की लंबाई ट्रेनों में डिब्बों की संख्या को बढ़ाने को सीमित करती है, लेकिन कुछ समय के लिए डिब्बों के बीच में भीतरी रास्तों का प्रयोग कर इस समस्या से मुक्ति पाई जा सकती है। आराम और ऐश के स्थान पर बुनियादी जरूरतों को पूरा करना प्रथम आवश्यकता है।
3. हमने देखा है कि शासन बहुत बार अतिवादी कदम उठाता है, उदाहरण के लिए धूम्रपान। हमने उन परेशानियों को देखा है जो लम्बी यात्रा पर जाने वाले स्मोकर्स को झेलना पड़ती हैं। हरेक ट्रेन में धूम्रपान कक्षों का प्रावधान करने के लिए आवश्यक शोध जरूरी है। प्लेटफार्मों पर भी ऐसा होना चाहिए। मुबंई जैसे शहरों में ए.सी. डिब्बों और दो से पाँच मिनट के अन्तराल को शामिल करके स्थानीय ट्रेनों की दशा सुधारना जरूरी है। कुछ रास्तों जैसे–दिल्ली, कलकत्ता, चेन्नई, हैदराबाद, बेंगलोर, मुबंई, दिल्ली में रिंग/चक्रिय रेलवे की सुविधाएं उपलब्ध कराना जरूरी है।
4. सुधार के जारी कार्यक्रमों की समीक्षा और उन्हें समय या समय के पहले पूरा करना जरूरी है। भारत को पड़ोसी देशों में रेल व्यवस्था को ठीक करने के लिए प्रयास करने चाहिए।

5. राजधानी और शताब्दी गाड़ियों में हाल ही में विशेष स्नान आदि की सुविधाओं को प्रदान करने का कार्यक्रम असफल सिद्ध हुआ, यह स्नान गृह उपयुक्त रूप से साफ नहीं थे, बिजली से चलते थे और मंहगे थे। रेलवेज की सफाई को ध्यान में रखते हुए भारतीय पद्धति से ट्वायलेट्स बनाया जाना जरूरी है जिन्हें ड्राइवर के द्वारा संचालित किया जा सके। रेलवे ट्रेकों की खासतौर से महानगरों में सफाई की व्यवस्था को और ज्यादा बेहतर बनाना जरूरी है, रेलवे ट्रेकों के आसपास सार्वजनिक शौचालय का निर्माण होना चाहिए। भारत में पि चमी ठंडे देशों के मुकाबले आक्सीडे ान काफी तीव्रता से होता है, इसलिए रेल में हवाई जहाज जैसे खर्चीले बाथरूम बनाने की आव यकता नही है।

6. मालों के यातायात के लिए यह जरूरी है कि स्वयं माल से भरे ट्रकों को सीधे ट्रेनों पर चढ़ाकर ले जाया सके। इस पद्धति को माल डिब्बों और आवागमन में सुधार के साथ–साथ लागू किया जाना जरूरी है। व्यस्त मार्गों पर मालगाड़ियों के आवागमन के लिए अलग से ट्रेक बनाया जाना जरूरी है। बहुत सारे इलाके जो खनिज सम्पदा से भरे है, में मालगाड़ियां तो चलती है लेकिन यात्री रेलवे व स्थानीय यातायात की सुविधा बहुत कम है। यह हमारी जिम्मेदारी है कि ऐसी सभी जगहों पर सुविधाएँ पहुँचे।

7. भूस्खलन के क्षेत्रों में राडार से निगरानी कर सकने वाले इंजनों को लगाया जाना जरूरी है एवं कोहरे से निपटने के लिए विशेश कोहरे विरोधी प्रकाशयुक्त कन्ट्रोल सिस्टम का विकास एवं उपयोग जरूारी है।

एक ऐसे रेलवे को जिसका इतना लंबा जाल है अपने मूल काम के साथ साथ सामूहिक स्वच्छता, वृक्षारोपण के लिए भी कदम उठाने होंगे।

***

रोजगार सृजन

रोजगार के बारे में यह कहा गया है कि :

''उत्तम खेती, मध्यम वान, निकृष्ट चाकरी, भीख निदान।''

पूरी दुनिया में वर्तमान परिदृश्य बढ़ते हुए तापमान, बदलते हुए मौसम, बढ़ते हुए प्रदूषण, घटते हुए भूजल स्तर, सूखे, बाढ़, शहरों में तनावयुक्त जीवन और नई–नई बीमारियों पनपने से भरा हुआ है, जो यह इंगित करता है कि सीखने, काम करने और कमाने के लिए नई और ताजी योजना जरूरी हैं।

पूरी दुनिया के लिये निम्नानुसार निवेदन है :–

1. बढ़ते हुए तापमान और इस पर हुये शोध कार्य से पता पड़ता है कि :–

नींम, पीपल, बरगद, आम जैसे बड़े आकार के दस लाख पेड़ बंगलौर जैसे शहर को तापमान को दो–तीन डिग्री सेल्सियस तक कम कर सकते हैं।

हमको अपने हर–एक शहर में दस लाख पेड़ लगाने होंगे और हर एक ब्लॉक में पॉच लाख। इनके उत्पादों इनके काटने पर, वृक्ष लगाने वाले और इनका रखरखाव करने वालों का हक होना चाहिए, फिर चाहे ये पेड़ सरकारी जमीन पर ही क्यों न लगाये गये हों। लगभग पाँच किलो गेहूँ /चावल अधिकतम पचास, सौ किलो गेहूँ/चावल तक प्रति व्यक्ति, हर उस व्यक्ति को दिया जाना चाहिए, जो कि इनकी उचित देखरेख करने की जिम्मेदारी ले। बहुत से बेरोजगार युवकों को यह पहले पाँच वर्षों तक पर्याप्त रोजगार उपलब्ध करा सकेगा। इस योजना का प्रबंधन सीधे तौर पर उस क्षेत्र के वरिष्ठ नागरिकों की समिति और धार्मिक संस्थाओं के जरिए किया जाना होगा, यद्यपि स्थानीय सांसद इस पर नगरानी रख सकेंगे (इसमें किसी भी तरह का नौकरशाही हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए) : और यदि इसके लिए आवश्यक हो, तो वन अधिनियम में यथोचित संशोधन किया जाना चाहिए।

यह आशा की जा सकती है, वृक्षारोपण का क्षेत्र बड़ी संख्या में रोजगारों का सृजन और

स्वरोजगार की सम्भावनाएँ पैदा करेगा। तथाकथित अनुसूचित जनजातियों को, जो जंगलों की रक्षा करती चली आई हैं को, भी इसी तरह के अधिकार दिये जाने चाहिए। अगर जरूरत पड़े या बेरोजगारी की दर मोटे लोगों की संख्या दस फीसदी से ज्यादा हो जाये तो हमें खेती में पेट्रोल एवं बिजली से चलने वाली मशीनों के उपयोग बंद करने होंगे।

2. रोजगार के सृजन एवं उनके क्रमिकता के लिए यह जरूरी है कि प्राथमिक कार्य भाारीरिक रूप से करे, द्वितीय कार्य– ाारीरिक एवं म ाीन के मिश्रण से एवं तृतीय कार्य म ाीन/तकनीकि से करे। इस तरह सारी खेती भाारीरिक परिश्रम से, खाने के पैकिंग अर्धम ाीनी एवं कोल्ड स्टोरेज का तापमान तकनीकि रूप से चलने चाहिए/चलाने होंगे।

रोजगारों का सृजन निम्नलिखित क्षेत्रों में भी किया जाना चाहिए :–

अ) छोटे और मध्यम आकार के शहरों के निर्माण में (जैसे कि भुवनेश्वर और चंडीगढ़ या इससे छोटे और देश के विभिन्न क्षेत्रों में सार्वजनिक क्षेत्र के नगरों के निर्माण जैसे।

ब) रोक बाँध (चैक डेम) बनाने, तालाब खोदने और उनकी साफ–सफाई करने, झीलों, नहरों और नदियों से सम्बधित कायंक्रमों में।

3. पूरे पश्चिम में विभिन्न श्रेणियों के लोगों की श्रमशक्ति की आवश्यकताएँ निश्चित ही बढ़ने ही वाली हैं (कुछ हद तक जन्म दर के घटने के कारण) : हम आपस में सम्मानजनक समझौते कर श्रमशक्ति के आयात–निर्यात के बारे में विचार कर सकते हैं।

4. इन्टरनेट, इन्ट्रानेट और सूचना प्रौद्योगिकी में आये उफान को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वर्ष 2025 के बाद सूचना और दूसरी प्रौद्योगिकी का कोई अतिरिक्त मूल्य नहीं होगा, इसलिए यह बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है कि इस क्षेत्र से बड़ी भारी आशाएँ लगाकर चला जाए।

रोजगार सृजन के किसी भी प्रयास में यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि, रोजगार प्रदाय करने वाली एजेन्सियाँ न्यूनतम मजदूरियों का भुगतान कर रही हैं। इसको सुनिश्चित करने के लिए सत्ताधारी और विपक्ष की पार्टियों से जुड़े हुए विभिन्न राजनैतिक कार्यकर्ताओं का सहयोग लिया जा सकता है। न्यूनतम मजदूरियों के साथ–साथ, रोजगार प्रदाय के लिए, माँगी/वसूली जा रहे अधिकतम शुल्कों को भी विवेकसम्मत ढंग से निर्धारित किया जाना चाहिए (न्यूनतम और अधिकतम पारिश्रमिक के बीच में पन्द्रह गुने से ज्यादा का फर्क नहीं नहीं होना चाहिए) और राजनैतिक कार्यकर्ताओं और वयोवृद्ध नागरिकों की समिति के द्वारा वांछित हस्तक्षेप और संशोधन किया जाना चाहिए, इसकी जगह की श्रम निरीक्षक एवं श्रम न्यायालयों पर जरूरत से ज्यादा निर्भरता रखी जाए।

ऐसा दिखाई देता है कि आगे आने वाले वर्षों में रोजगार प्राकृतिक वैविध्य के सृजन और इसके भीतर सुरक्षा, भोजन, फैशन, ऊर्जा और मनोरंजन के आसपास घूमेगा। हमें इस प्रवृत्ति को पहले से देखकर इसके अनुरूप व्यवहार करना चाहिए।

***

81

कृषि

भारत में, कृषि शब्द का उपयोग ठीक उन्हीं अर्थो में नहीं किया जाता जिन अर्थों में रेशम के कीड़े पालने, खून या वायरस सम्वर्धित करने का। भारत में तो कृषि ही इसकी संस्कृति है।

भारत में विकास ही इस तरह हुआ है कि, '' कि हम जानते हैं कि कृषि ही हमारी संस्कृति है ''। हमारे सारे त्योहार फसल के साथ ही चलते हैं। दो फसलों और उनके बीच विश्राम के हिसाब से हमारा जीवन चलता है। साल की शुरुआत बैशाखी पर भूमि से प्रार्थना करते हुए शुरू होती है, और मार्च, अप्रैल में रामनवमी तक त्योहार चला करते हैं।

यहाँ अधिकांश किसानों को अपना भोजन पैदा करने और उसे बनाने में आनंद आता है। यह ऐसा ही कहने के समान है कि मिठाई पास में है और खुद खाने की स्वतंत्रता भी एवं स्वास्थ्य भी। यहाँ गोवंश की साल में कम से कम तीन बार पूजा होती है, और घर में गऊ का होना न सिर्फ आवश्यकता है बल्कि ट्रैक्टरों के इस युग में भी गर्व का विषय है।

औद्योगिकीकरण की शुरुआत के साथ एक दर्शन का विकास हुआ था जिसके तहत कृषि उत्पादों का सस्ता करने, किसानों को गरीब बनाने की प्रक्रिया पहले तो हथियारों के बल पर लागू की गई, और अब इसे वैश्विक, आर्थिक बदमाशियों से चलाया जा रहा है। पहले किसान राज्य के कर का बड़ा आधार होता था, लेकिन बाद में अंग्रेजी राज्य के पहले लम्बे समय तक इस कर दाता को पूरी तरह निचोड़ ही लिया गया। लोकतांत्रिक व्यवस्था के बाद करों से छुट्टी दे देने और इसके स्थान पर किसानों को उल्टी सहायता देने के बावजूद, उसकी स्थिति और भी खराब हो गई, यह विचित्र तो है अन्तरविरोधी भी लेकिन फिर भी सच तो है ही। हालाकि कि किसान हरी, सफेद और पीली क्रान्तियों के बड़े भागीदार रहे हैं, फिर भी उनकी स्थिति ऐसी है कि वे केक तो बनाते हैं, लेकिन उनके पास केक नहीं होता, खाने का तो सवाल ही नहीं उठता।

हमारी कृषि के सम्बन्ध में दोहरी जिम्मेंदारी है, पहले तो सांस्कृतिक आधार पर और दूसरे

आर्थिक आधार पर।

1. कोई भी देश बिना कृषि के आधार के एक शताब्दी से ज्यादा जिन्दा नहीं रह सकता। अच्छी मानसून न हो तो औद्योगिक क्रान्तियाँ डगमगाने लगती हैं, और कुछ सालों के भीतर औद्योगिकीकरण अपने शिखर पर पहुँच ही जायेगा।

2. हमें इस तरह की नीतियाँ हाथ में लेनी चाहिए कि किसान फिर से वह स्थान प्राप्त कर सकें, कि उन्हें सन्तोष का अनुभव हो और उन्हें लगे कि उन्हे राष्ट्र को करों से होने वाली आय में सहयोग देना है।

3. सारी ऐसी सहायता जो बैशाखियाँ प्रदान करती हैं, हटा दी जानी चाहिए। किसानों को सहायता देने के नाम पर ट्रैक्टर पर अनुदान देना एक मजाक है। आज ट्रैक्टरों की संख्या इतनी हो गई है कि अगर अगले दस साल में, खेती के क्षेत्र में एक भी नया ट्रैक्टर न उतारा जाये तो भी इससे कोई फरक नहीं पड़ेगा। अब ट्रैक्टर की बिक्री धूर्ततापूर्ण माहौल बनाकर और अनावश्यक रूप से बाध्य करके नहीं की जा रही है तो, किस तरह। जंगल काटकर खेती योग्य जमीन बढ़ाने के अब उल्टे परिणाम सामने आने लगे है– जैसे कि बढ़ती हुई सूखे, बाढ़ो, आँधियों की संख्या एवं घटती हुई नदियों तालाबों, जमीनी जल के पानी रखने की मात्रा।

   धरती पर जल एवं जमीन, तीन–एक के अनुपात में है इसी तरह जमीन पर जंगल, जल एवं जमीन, जोत, तीन–एक के अनुपात मे होना चाहिए।

4. किसान को साहूकार की ऊँची ब्याज दरों से भारी परेशानी है, यह तो एक सौ बीस प्रतिशत प्रति साल भी हो सकती है। शासकीय बैंक ब्याज दरों को ध्यान में रखते हुए इस पर नियंत्रण लगाना आवश्यक है। इतनी ऊँची ब्याज दरें किसानों को आत्महत्या करने पर मजबूर कर रही हैं।

5. केन्द्रीयकृत सार्वजनिक वितरण प्रणाली को तो बन्द करना ही होगा। कृषि उत्पादों को क्षेत्रीय स्तर तक और आपात स्थितियों में राष्ट्रीय स्तर तक ईमार्केटिंग, पेट्रोल पम्पों, पोस्ट ऑफिस, बैंकों और कृषि चौपालों आदि के द्वारा मुक्त रूप से बेचा जा सकना चाहिए। धार्मिक संस्थाओं के माध्यम से स्थानीय लोकवितरण व्यवस्था प्रारम्भ की जानी चाहिए।

6. पोस्ट ऑफिसों, पेट्रोल पम्पों एवं धार्मिक संस्थानों के पास सस्ती दरों पर भण्डारण सुविधा प्रदान की जानी होगी। और किसानों की छोटे चेक डेम बनाने के लिए अनुमति, सहयोग और सहायता देना आवश्यक है।

कृषि पर हमारा सम्पूर्ण दृष्टिकोण सांस्कृतिक होना चाहिए, न कि सिर्फ आर्थिक, और हम सभी यह समझते है कि संस्कृति और भूमि हमारे जीवन और अस्मिता के केन्द्र बिन्दु हैं। केवल कृषि ही देश को बेहतरी की ओर ले जा सकती है, और इसी से हमारा खोया आत्मगौरव जुड़ा है। समाज की केन्द्रीय प्रवृत्ति भोजन और उत्सव धर्मिता ही होगी।

***

82

कृषि अर्थ व्यवस्था एग्रोनॉमी

कृषि की अर्थ व्यवस्था–

(अ) दुनिया की अर्थव्यवस्था की उड़ान हो या डूबना हो, यह सब अंततः कृषि आय बढ़ने और घटने के अनुपात में ही होता है। अमेरिका, रूस, कनाडा, आस्ट्रेलिया और चीन जैसे विशाल क्षेत्रफल के देशों में कृषि आय को तो मानकर ही चला जाता है और इनमें से अधिकांश देशों में समृद्धि का विचार एक नई घटना है।

''अधिकांश वास्तविक उत्पादन या तो पशुपालन से आता है या कृषि से और उद्योग तो केवल प्रस्संकृरण (प्रोसेस) करने की इकाइयाँ हैं जो कि जितना लगता है उसकी तुलना में कम ही देती हैं।''

केवल कृषि में चीजें सैकड़ों गुना बढ़ती हैं। जो भी मिलता है, धरती से ही मिलता है, इसी कारण से इसे धरती माता कहते है, इसलिए पूर्वज धरती के भीतर मौजूद सम्पदा बचाकर रखते रहे एवं यह बचाकर रखी जानी भी चाहिए, ताकि विपरीत परिस्थिति में काम आये, और यह भावी पीढ़ियों के लिये सुरक्षित रहे तथा समुद्र में केवल मछली पकड़ने और लुटेरों से लड़नें के लिए ही पूर्वज गए, गंगासागर में पूर्वजों ने जरा सा भी हस्तक्षेप नहीं किया और किया जाना भी नही चाहिए।

(ब) कुछ देशों में जहाँ भूमि बहुत ज्यादा है, यांत्रिक कृषि के विस्तार और भूमि से घटते हुए जुड़ाव के कारण सस्ते खाद्य उत्पाद पैदा किए जा सके, और इन उदाहरणों को सामने रखते हुए कुछ अर्थशास्त्रियों ने कहना शुरू किया कि खाद्य उत्पादों को सस्ता होना चाहिए, चूँकि इन देशों में श्रमिकों की जनसंख्या कम थी, इसलिए शुरुआत में किसान इस सस्तेपन को सहन कर पाए, लेकिन बाद में इन देशों को अपने किसानों को सीधी आर्थिक सहायता देनी ही पड़ी। घर के भीतर की परिस्थिति को देखे बिना, बहुत से देश और बहुत से वातानुकूलित

कक्षों में '' कार्य कर रहे '' अर्थशास्त्रियों ने भी यही तोता रटन्त शुरू कर दी कि बुनियादी खाद्य पदार्थों को तो सस्ता होना ही चाहिए। चूँकि ये तथा कथित महान अर्थशास्त्री बड़े विश्वविद्यालय से अच्छे अंक लेकर उर्त्तीण हुए थे, इसलिए उनकी सम्मिलित आवाज में नीतियों को प्रभावित करने की शक्ति आ गई। इस पूरी परिघटना का परिणाम यह है कि जो भी कृषि से सीधे या अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुए हैं वो गरीब हो गए और लगातार गरीब बने हुए हैं– देश की साठ से सत्तर प्रतिशत जनसंख्या केवल इस कारण से गरीब है (शर्म की बात है कि ये अर्थशास्त्री आलू की वर्तमान सस्ती दरों के पक्ष में तर्क देते हैं और आलू की चिप्स/बेफर कहा जाता है कि बीस गुना के मूल्य पर उन्हें कोई आपत्ति नहीं।

इन वर्गों की आवाज को दबाने के लिए और खुद को भी सान्तावना देने के लिए, इन अर्थशास्त्रियों और इनके साथ तरह–तरह के सुधारकों ने खेती को अप्रत्यक्ष तरीके से सहायता देने की अवधारण विकसित की। इन तथा कथित महान अर्थशास्त्रियों ने ''बैशाखियों'' , और बैशाखियाँ बाँटने की बात करना शुरू की, और कभी–कभी तो वास्तव में बैशाखियाँ बाँट भी दी, लेकिन फिर भी इन अर्थशास्त्रियों ने कभी अपने गुफाओं/किलो से बाहर आने का कष्ट नहीं उठाया, सत्य को देखने का और सच्चे समाधान निकालने का। दूसरे सरोकार रखने वाले लोग, दुर्भाग्य से, इन महान अर्थशास्त्रियों की आवाज के बोझ तले दब गए, उनकी डिगरियों और उनके ओहदों के नीचे, उन्होंने भी लगातार दृढ़ आवाज नहीं उठाई, और एक या दूसरे तरीके से अनुदानों की प्रणाली को स्वीकृत कर दिया। चूँकि ये अनुदान अप्रत्यक्ष हैं इसलिए इनमें वास्तविक रूप से जरूरतमंद लोगों से बचकर यहाँ–वहाँ निकल जाने से अप्रत्यक्ष तरीके भी हैं, और उन्होंने कुल मिलाकर निम्न और मध्यम वर्ग, किसानों और अन्य सेवाएँ देने वाले वर्ग को और भी बोझ के तले दबा दिया है। इस सिद्धान्त के उल्टे नतीजों और खतरे की सीमा का पार करती गरीबी, को देखकर तथाकथित अर्थशास्त्रियों ने खासतौर से गरीबों और उनमें से भी सबसे ज्यादा गरीबों की ओर निर्देशित सार्वजनिक वितरण प्रणाली का सुझाव दिया, जिसने निम्न वर्ग के उत्थान मात्र को धीमा ही किया है।

निम्नलिखित चीजों का ध्यान रखा जाना जरूरी है :

1. कृषि उत्पादों के मूल्यों में अगले कुछ वर्षों तक बीस प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि, ताकि यह क्षेत्र उद्योगों की तरह कम से कम बीस प्रतिशत मुनाफा प्राप्त कर सके। मूल्यों में वृद्धि के साथ–साथ अनुदानों में भी क्रमानुसार कटौती आवश्यक है ताकि बैशाखियों पर चलने की आदत से छुटकारा मिल सके।
2. धीरे–धीरे करके शासन द्वारा चलाए जाने वाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली को हटाते चले जाना, ताकि व्यापक भ्रष्टाचार के कारण पूरी तरह अनुपयोगी हो गया यह क्षेत्र बन्द किया जा सके। खाद्य निगम द्वारा खाद्य के रखरखाव की कीमत स्वयं में उत्पादों की कीमतों का एक तिहाई है।
3. गोदामों में पड़े हुए उत्पादों और फसलों पर ऋण और बीमा की व्यवस्था करनी होगी ताकि प्रकृति के प्रकोप से बचा जा सके और उत्पादों को असमय बेच देने के लिए बाध्य होने की परिस्थितियों से मुक्ति मिल सके। बीमे की किस्तों को पानी और बिजली के बिलों के साथ जोड़ा जा सकता है।

बिचौलियों की धोखाधड़ी और यहाँ तक कि जोर–जबरदस्ती की तिकड़मों को रोकने के लिए गोदाम और वेयरहाउस से बाहर निकलते समय बिक्री की अवधारणाओं को प्रयोग में लाना आवश्यक है। इलेक्ट्रॉनिकी के जरिये होने वाली बिक्री को छोटे क्षेत्रीय स्तरों पर विवेक संगत ढंग से सीमित किया जाना चाहिए, ताकि बड़े स्तर पर कृषि उत्पादों को दबाने और सट्टेबाजी से बचा जा सके। अनुबन्धों पर की जाने वाली कृषि को, प्रत्येक किसान के पास उपलब्ध भूमि के बीस प्रतिशत हिस्से तक ही सीमित किया जाना चाहिए ताकि विभिन्नता, उत्पादकता और स्वतंत्रता बनी रह सके।

4. ऋण लेने और पैसा जमा करने पर लागू होने वाली व्याज दरों को विवेक संगति बनाना आवश्यक है, और इसके लिए खुफिया तंत्र और तकनीकों की मदद ली जानी चाहिए। यह सबसे ज्यादा जरूरी है, क्योंकि यह किसानों की आत्महत्याओं का बुनियादी कारण है। आत्महत्याओं के लिए जमीन तैयार करने वाले साहूकारों की पहचान और उन्हें दंडित करने के लिए खुफिया, गुप्त एजेंसियों की मदद आवश्यक है। दुर्भाग्यपूर्ण है कि बहुत सी संगठित बैंकें भी ऐसी ही प्रक्रियाएँ अंगीकार कर रही हैं, इनको तो सीधे ठीक किया जाना जरूरी है। भारत में हुई आत्महत्याएँ संक्रामक हैं और अगर पूरी दुनिया के नहीं तो, पूरे एशिया के किसानों को तो अपनी गिरफ्त में ले ही लेगीं। हमें सामूहिक रूप से कदम उठाते हुए, आत्महत्या को उकसाने वाले लोगों के साथ कठोरता से निपटना होगा।

5. ग्रामीणों को चेक डेम बनाने की छूट भी मिलना चाहिए और उसके लिए आर्थिक सहयोग।

6. समाज/शासन द्वारा सुस्थापित तकनीकों जैसे गोबर गैस, बायोगैस, सौर ऊर्जा से चलने वाले डीजल जनरेटर, कम्पोस्ट खाद और वृक्षारोपण आदि के लिए प्रोत्साहन।

7. प्रत्येक ब्लाक और अगर आवश्यक हो तो इससे भी छोटे स्तर पर मिट्टी की गुणवत्ता, मौसम की स्थिति और बाजार की परिस्थिति बताने के लिए, प्रयोगशाला की स्थापना ताकि सही फसल का चुनाव किया जा सके।

8. पेड़ लगाने वाले प्रत्येक किसान को आवश्यकतानुसार उस पेड़ को काटने की भी छूट होनी चाहिए। अधिकांश किसान और गैर किसान सभी पेड़ों को अपने मित्रों और अपने बच्चों की तरह देखभाल करते हैं, इसमें शासकीय हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

9. लकड़ी, धातुओं, अयस्कों का निर्यात् घटाया जाना चाहिए ताकि देश की आगामी पीढ़ियों के लिए, पर्यावरण, संशाधन और संतुलन बचाकर रखा जा सके।

10. बाढ़ और सूखे से बचाव के लिए बड़ी तदाद में वृक्षारोपण वास्तविक तात्कालिक आवश्यकता है, न सिर्फ पूर्वी देशों में में बल्कि पश्चिमी देशों में भी। इसके लिए अनुबंध किया जाना चाहिए कि वे पेड़ों और लकड़ी को बचाकर रखेंगे और उसका निर्यात् नहीं करेंगे। खेती के लिए भूमि के जरूरत से ज्यादा दोहन ने, ऐसे स्थानों को जहाँ पर्याप्त वृक्षों का घेरा नहीं है, खासतौर से भारत, अफ्रीका के कुछ प्रदेशों/देशों एंव ब्राजील के कुछ क्षेत्रों को मरुस्थल में बदलना शुरू कर दिया है। ऐसे स्थानों पर बड़ी तादाद में

वृक्षारोपण तात्कालिक आवश्यकता है, नहीं तो ये इलाके मरुस्थल में बदल जायेंगे।

11. किसानों को आय के वैकल्पिक स्त्रोतों के बारे में विचार करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, ऐसे कामों के लिए जो खेती से जुड़े हुए हों, ताकि विपरीत परिस्थितियों में असहायता से बचा जा सके और अतिवादी कदम, कदम उठाने की भावना पैदा होने से रोकी जा सके, जैसे कि भाग जाने या आत्महत्या की प्रवृत्ति इस धारण के चलते कि '' मरने से सारा उधार चुक जाता है और सारी जिम्मेंदिरियों से मुक्ति मिल जाती है ''। ऐसा ही मध्यवर्गीय परिवारों के छात्रों के साथ भी होता है, जिनमें पढ़ने में असफलता को आजीविका अर्जित करने की असफलता माना जाता है, और इससे अभिभावकों के झूठे आत्माभिमान को ठेस लगती है। कक्षा बारह की परीक्षा में फेल हो जाने से, और आत्महत्या कर लेने से कोई मुक्त नहीं हो जाता, केवल इतना ही होता है कि अगले जन्म में उसको फिर से कक्षा एक से बारह तक पढ़ना पड़ता है, जो अपनी असफलता को स्वीकृत कर लेने और फिर से ज्यादा अच्छा करने का प्रयास करने से ज्यादा कठिन है।
12. खाद्यानों पर आयात शुल्क को पर्याप्त मात्रा में बनाए रखना देश के किसानों के हितों की सुरक्षा के लिए आवश्यक है। सारे सार्क लेटिन अमेरिका, अफ्रीकन देशों को इसकी जरूरत है, हालाकि इन देशों में खाद्यानों के लिए मुक्त व्यापार के क्षेत्र बन सकते हैं।
13. देश दूसरे देशों में तेल क्षेत्रों को अपने हाथों में ले रहा रहा है, सार्क देश संयुक्त रूप से दूसरे देशों की जमींन कृषि कार्य के लिए ले सकते हैं।
14. पूरे देश के भू अखिलेखों को कम्प्यूटराइज्ड करने की जरूरत है।
15. छोटे और मध्यम किसानो को पाँच सौ किलो गेहूँ/चावल के बराबर पैसा प्रतिवर्ष के हिसाब से प्रत्यक्ष सहायता देना आवश्यक है, जब तक कि खाद्यन्नों की कीमतें उचित स्तर पर नहीं पहुँच जाती और अप्रत्यक्ष अनुदान शून्य पर।

प्रत्यक्ष अनुदान से किसानों का मनोबल बढ़ेगा और इससे देश के युवाओं को खेती की ओर जाने की प्रेरणा मिलेगी, जो कि निश्चित ही सबसे ज्यादा रोजगार प्रदान करने वाला क्षेत्र है और रहेगा।

***

83

कस्बे और देहात

निश्चित ही रेगिस्तान में अकेले खड़े पेड़ का अपना सौन्दर्य है, और निहित आन्तरिक शक्ति भी। बगीचों जंगलों का भी अपना सौन्दर्य है, लेकिन घने जंगल में खो जाने का खतरा होता है। पेड़ों के एक छोटे से झुण्ड को जंगल नहीं माना जा सकता, और फिर इसमे वह विविधता भी नहीं होती, इसके अलावा लम्बे समय तक उनके सुरक्षित रह पाने की गारन्टी भी नहीं ली जा सकती, न तो वे बादलों को वर्षा करने के लिए पुकार सकते हैं, और न ही शेर उनकी रक्षा करते हैं, ऐसे छोटे से झुंड तो असहायता और निराशा के ही प्रतीक हैं। छोटे से मध्यम आकार के जंगल को सब कुछ मिलता है, और ये सबसे ज्यादा देते भी हैं, प्रभू की अनुकम्पा के साथ।

1. एकांत और मौन में बनी हुई एक झोपड़ी तो सन्तों की होती है, और यह सबसे शक्तिशाली भी है।
2. बहुत छोटे गाँव, न तो व्यक्ति को कोई स्वतंत्रता देते हैं और न समूह को, यहाँ तो अस्पृश्यता, जिन्दा बने रहने और श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए आपसी झगड़ों का ही बोलबाला है, और इन्हें बने रहने के लिए प्रोत्साहन देने की कोई आवश्यकता नहीं।
3. जबकि दूसरी ओर महानगरों में व्यक्ति सड़कों की भीड़ और कंक्रीट के जंगल में खो जाने के लिए बाध्य है। ओवर ब्रिज बनाने, मेट्रो रेल चलाने, तारों से लटकती हुई रेले चलाने और प्रदूषण से निपटने जैसी चीजों के लिए अधोरचना लागतें ही इतनी हैं कि जितने में एक नया शहर ही बनाया जा सकता है। उपनगरों के निर्माण से महानगरों की सीमाएँ अंतहीन रूप से फैलती ही चली जाती हैं और इससे अधोरचना पर अविश्सनीय हद तक दबाव बन गया है।
4. भूकम्प, भविष्य में सम्भावित ज्वालामुखी के विस्फोटों से होने वाली बाढ़ें, चक्रवात और सुनामिया इस तरह के विकास के बारे में सचेत कर रही हैं। मनुष्य के द्वारा पैदा की

गई अराजकता जिसे कई देशों में अभी हाल में ही बिजली सप्लाई के कट जाने, लम्बे ट्रैफिक जामों, बढ़ते हुए प्रदूषण और इसके परिणाम में पैदा हुए तनाव, दमें और दिल की बीमारियों के बढ़ने के रूप में देखा गया, भी इस तरह के विकास के प्रति चेतावनी देते हैं।

5. सारा वर्तमान विकास फॉसिल ईधन (पेट्रोलियम), और विद्युत की मौजूदगी पर आधारित है, बढ़ती हुई कीमतें और चुकते जाते स्त्रोत हमें संकेत देते हैं कि, हम अपने कस्बों और देहात का विकास करें, इस तरह कि इन ऊर्जा स्त्रोतों पर निर्भरता कम हो या बिल्कुल भी नहीं।

6. सरकार केवल दस हजार से दस लाख की जनसंख्या के शहर बसाने को ही प्रोत्साहन देगी, कुछ बड़े शहर जैसे– चंडीगढ़, गाँधी नगर और भुवनेश्वर और बाकी छोटे शहर जिनमें सारी बुनियादी सुविधाएँ और सम्पर्क व्यवस्थाएँ हों। शासन को न तो किसी खास इलाके को औद्योगिक क्षेत्र बनाने के लिए प्रोत्साहान देना चाहिए और न ही इसे हतोत्साहित करना चाहिए। हालाकि यह केवल ऐसे नगरों के विकास के दौरान स्वाभाविक तौर पर औद्योगिक विकास के लिए आने वाले प्रस्तावों के लिए बिना पक्षपात के जमी जरूर मुहैया करा सकती है।

7. सरकार को कस्बों और नगरों के विकास के लिए विचार विमर्श को प्रोत्साहन देना चाहिए।

8. विदेशियों के क्रमिक हमलों और उसके बाद विदेशी शासन के आतंक ने बहुत से अच्छी तरह से व्यवस्थित व्यक्तियों एवं उनके परिवारों को अपनी इज्जत, महिला वर्ग की आबरू एवं परिवार की जान बचाने के लिए जंगल में पलायन के लिए मजबूर कर दिया था जो खासतौर पर 1857 के भारतीय स्वतंत्रता के लिए हुए युद्ध के बाद हुआ। आज एक सौ पचास वर्षों के बाद यह कुनवों में रह रहे लोग आदिवासी नजर आते हैं। यह हमारी जिम्मेदारी है, कि हम उन्हें मुख्य धारा में वापिस लाये और उन्हें ठीक–ठाक शहर में कस्बों में बसायें। इसके लिए यह जरूरी है, कि हम पर्याप्त संख्या में कस्बें बनाय एवं बसायें।

9. जीवन की मूलभूत सुविधायें बीस लाख से ज्यादा कुनबों (एक सौ पचास से पांच सौ व्यक्तियों के रिहायशी क्षेत्र) में आराम से नहीं पहुंचायी जा सकती है और इसके लिए जरूरी है कि हम अपने ग्राम पुनः परिभाषित करें एवं उन्हे बनायें।

इस तरह के विकास के लिए अधोरचना के निर्माण और इसके रखरखाव में पर्याप्त संख्या में निरन्तर रोजगारों का सृजन हो सकेगा।

***

84

ऊर्जा

ऊर्जा, प्रसन्नता का स्त्रोत है, और शक्ति की जननी होती है। हम सभी इस प्रसन्नता को निरंतर बनाए रखने की आशा में, अपने अधिकारों की सीमाओं को लांघते नहीं हैं और यह सुनिश्चित करना हमारी जिम्मेदारी है कि, हमारी आगे आने वाली पीढ़ियां हमें इस बात के लिए न कोसें कि हमने अपनी सुविधाओं के लिए सारे लगभग कच्चे मालों और ऊर्जा स्त्रोतों को समाप्त कर डाला है।

ऊर्जा के बारे में निम्नलिखित निवेदित है–

1. बहुत सारे देशों के कई राज्यों की सरकारें अपने निवासियों को ऊर्जा सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ सिद्ध हुई हैं, यह अधिकांशतः विद्युत के बारे में ये ही सत्य है। जहां तक तेल, कोयले, और आणविक ऊर्जा का सवाल है, जिसमें सौ प्रतिशत राष्ट्रीय रवैया दिखता हैं, ऐसा ही रवैया विद्युत के लिए भी जरूरी है।

   वितरण में निजी भागीदारी से कोई ज्यादा परिणाम नहीं आए फिर चाहे, यह दिल्ली का प्रकरण हो या कोलंबिया । केवल शासकीय क्षेत्र एवं स्थानीय धार्मिक संप्रदाय के द्वारा ही उचित दरों पर निरंतर सप्लाई सुनिश्चित की जा सकती है। क्षेत्र के आधार पर बनाए गए वितरण केंद्रों का निर्माण कर ऊर्जा भेजने को स्थानीय धार्मिक संस्थाओं के हाथ में निगरानी की जिम्मेदारी सौंपकर और वितरण के हेतु अधुनातन व्यवस्थाएं करके निश्चित ही और भी कम किया जा सकता है।

2. घरों के लिए एल.पी.जी./एल.एन.जी./सी.एन.जी. की व्यवस्था को किसी भी कारखाना अन्य क्षेत्र की तुलना में ज्यादा प्राथमिकता दिया जाना जरूरी है। घरों में सी.एन.जी. के उपयोग की प्रक्रिया को तेज किया जाना आवश्यक है, चाहे इसके लिए गैस की शक्ति से चलने वाली औद्योगिक इकाइयों की गैस सप्लाई कम ही क्यों न करनी पड़े। ईधन

तेल, सी.एन.जी., केरोसीन, डीजल को उनकी ऊर्जा क्षमता के हिसाब से बेचा जाना चाहिए। इन पर किसी भी तरह का अनुदान उसी समाज के लिए नुकसानदेह होगा जिसके लिए यह दिया जा रहा है। इनकी बिक्री दरें पूरे देश में एक समान होनी चाहिए।

शक्ति चालित वाहनों में दो तरह की ऊर्जा यानि सी.एन.जी.– पेट्रोल/डीजल का उपयोग कर सकने के लिए परिवर्तन किया जाना चाहिए। इनमें बैटरियों को चार्ज करने के लिए और कारों के दूसरे यंत्रों के लिए सोलर पैनल/विंड टरबाइन आदि ज्यादा उपयुक्त होगा।

3. कोयले पर आधारित ऊर्जा उत्पादन को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए, अगर हम प्रदूषण और पर्यावरण के असंतुलन को दर किनार भी कर दें तो भी, अंततः कोयले में मौजूद ऊर्जा का केवल अट्ठाईस प्रतिशत ही उपयोग में आ पाता है, बाकी तो कोयला खदानों, यातायात, ऊर्जा सयंत्र में होने वाली स्वयं की ऊर्जा खपत होने के कारण खर्च/नष्ट हो ही जाता है।

   तेल और एल.एन.जी. आधारित ऊर्जा सयंत्रों को भी केवल सीमित प्रोत्साहन ही दिया जाना चाहिए, इनके स्थान पर छोटे और मध्यम जल विद्युत, छोटे और मध्यम बायोगैस, बड़े पवन ऊर्जा घरेलू स्तर पर सौर्य ऊर्जा और चयनित लेकिन पर्याप्त बड़े आणविक ऊर्जा सयंत्रों को बनाया जाना उचित है।

4. जंगलों और दूसरे तरह के पेड़ों की गैर कानूनी कटाई को वन अधिनियम में परिवर्तन कर और सस्ती कीमतों वाले लकड़ी के सामानों के निर्यात् को रोककर बंद किया जाना चाहिए।

   हाइड्रोकार्बन सोखने वाले पौधों का विकास और उनका खदान, परिषोधन और अन्य पेट्रोकेमिकल क्षेत्रों में बड़ी संख्या में आरोपण अनिवार्य है। इन दोनों कार्यों से एयर कंडीशनर की आवश्यकता कम पड़ेगी (जो सबसे ज्यादा बिजली खाता है)।

5. ईधन सैल के विकास और दूसरे ऊर्जा से संबंधित क्षेत्रों में फिर चाहे यह भंडारण का हो, प्रेषण का या प्रभावी उपयोग का हो के लिए शोध और विकास को प्रोत्साहन देना होगा। वर्तमान में बायोगैस से डी.जी. सेट चलाने के लिए हो रहे स्थानीय शोध और विकास कार्य को तेज करना जरूरी है। कम जनसंख्या घनत्व वाले क्षेत्रों में सौर ऊर्जा को प्रोत्साहन आवश्यक है। ऊर्जा के क्षेत्र में विपुलता हासिल करने के लिए बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण और जीवजंतु विकास आवश्यक है ही।

6. इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि इस तरह का विकास न हो जिसके चलते पूरा अमेरिका विद्युत वितरण की असफलता के कारण ठप्प हो सकता है। इसके लिए आपस में जुड़े हुए लेकिन फिर भी अलग–अलग ग्रिड प्रणाली को ही जारी रखना उचित है।

7. विकास समृद्धि और सुरक्षा ऊर्जा स्त्रोतों की उपलब्धता और इनके क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के सीधे रूप से समानुपाती हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए देश को तकनीक, कलपुर्जो

और विशेषतौर पर ईधन और ईधन के पुनः परिशोधन के लिए निरंतर आयात, पर अपनी निर्भरता कम करनी होगी।

8. बुनियादी घर और ऑफिसों के भी इस तरह से बनाए जाने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए जिससे अधिकतम प्राकृतिक रोशनी एवं वातानुकूलन हो सके। हमें समुचित उपयोग की धारणा को प्रोत्साहन देना चाहिए, न्यूनतम बर्बादी न कि संरक्षण, और हमें आवश्यक से थोड़ा ज्यादा उत्पादन करना चाहिए ताकि ऊर्जा के क्षेत्र में आधिक्य बना रहे और इसका प्रवाह होता रहे। हम अपनी पूजा में भी इसी धारण का प्रयोग करते हैं, कि कलश पूरा भरा हो और थोड़ा सा छलकता हुआ।

9. देश जिसके पास सूर्य, हवा, पानी, आणविक, और समुद्र तटीय ऊर्जा के पर्याप्त संशाधन है, उससे कहीं जल्दी ऊर्जा सुरक्षा को प्राप्त कर लेगा, जितने की आशा की जाती है। ऊर्जा के जरूरत के सभी उत्तर हवा, पानी एवं सूर्य में निहित हैं।

गुरुत्वाकर्षण की शक्ति और गुरुत्व विरोधी ऊर्जाएं विपरीत हैं, और इनके बीच प्राकृतिक लयबद्धता से आनंदपूर्ण और आसान जीवन संभव होता है।

***

85

उत्सव धर्मिता और जीवन आनंद की अभिव्यक्ति

आनंद से परिपूर्ण लोगों के लिए जीवन एक उत्सव है, और बाकी दूसरों के लिए उत्सव आनंद की अभिव्यक्ति का अवसर, जितना बड़ा उत्सव है और इसमें जितनी ज्यादा धूम–धाम, उतने ही ज्यादा आनंद का प्रवाह। पूर्व के गरीबों तक के चेहरे पर देखी जाने वाली मुस्कानों का यही कारण है।

परिवार में त्यौहारों के अवसर पर हम सामूहिक रूप से आनंद मनाते हैं। त्यौहारों के अवसर पर परिवार के सदस्य इकट्ठे हो जाते हैं, और कभी–कभी यह सामूहिकता गोत्रों, गांवों और बृहत्तर समाज में भी फैलती चली जाती है। उत्सव और आनंद धर्मिता किसी भी समाज के पास उपलब्ध प्रचुरता, सुखभोग सामग्रियों के आधिक्य, खुलेपन और दे देने के भाव के संकेत हैं। उत्सवों के समय हम आनंद तो मनाते ही हैं, साथ ही साथ भगवान या अल्लाह या इसे जो भी नाम दें, उसके चरणों में बैठकर प्रार्थना भी करते हैं, और यहीं से उपासना, उपवास और उपनिषद् जैसे शब्दों का जन्म हुआ है।

जबकि पश्चिम के कुछ समाजों में जहां हर्षोल्लास में भाग लेना केवल युवाओं का ही काम समझा जाता है, पूर्वीय दुनिया में, सब कोई इसमें शामिल होता है, बच्चे और बुजुर्ग तो इस आनंद के केंद्र होते हैं, और युवा सहकलाकारों की तरह, कुछ इस तरह की कि नौजवान और बुजुर्ग बच्चों के आमोद–प्रमोद से आनंद उठाते हैं। पूर्व को अपनी समृद्धि, बहुआयामी, लगातार तरंगित और गतिशील उत्सव धर्मी संस्कृति पर गर्व है और यह चाहता है कि पश्चिम भी अपने आनंद में अपने परिवार के सभी सदस्यों को शामिल करे।

ऐतिहासिक तथ्यों से हम भारत में उत्सवों के महत्व को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

1. भारत के आजादी के आंदोलन के दौर में गणेश पूजा, दुर्गा पूजा, सरस्वती पूजा, गरबा,

अफतार पार्टियों क्रिसमस और ईद मिलन आदि को जन–जन द्वारा मनाए जाने को प्रोत्साहित किया गया था, ताकि आत्मगौरव में वृद्धि हो और समाज में एकता और शक्ति का संचार। राष्ट्रव्यापी उत्सवों से राष्ट्रीय सांस्कृतिक चरित्र का उद्‌भव होता है, और विश्वव्यापी आनंद उत्सव उत्सवों को सकल मानवीय चरित्र देते हैं, और आखिरकार सूर्य, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश का आनंद तो हर क्षेत्र और हर धर्म में मनाया जाता है।

2. त्यौहारों और आनंद उत्सवों में, शासन का एक मात्र हस्तक्षेप यह हो सकता है कि वह हस्तक्षेप करना बंद कर दे। जैसे कि बहुत से स्कूल और कालेजों में त्यौहारों के मौसम में ही पाक्षिक या मासिक परीक्षा, छोटी या बड़ी परीक्षाएं करवा दी जाती हैं, बच्चों और उनके परिवारों का आनंद मनाने का पूरा माहौल ही खत्म हो जाता है। शासन को यह देखना चाहिए कि छोटे त्योहारों के दो–तीन दिन आगे–पीछे, और बड़े त्योहारों के सात दिन आगे पीछे कोई परीक्षाएं न हों।

3. बहुत से त्योहार धर्मों और क्षेत्रों की सीमाओं के परे जाकर सारे देश को प्रभावित करते हैं जैसे– दीवाली, ईद, क्रिसमस, रक्षाबंधन, होली, ऐसे सारे त्योहारों के लिए, शासन को न केवल छुट्टियां प्रदान करनी चाहिए बल्कि सुविधाएं भी। छुट्टियां/अवकाश ज्यादा न हो, इसके लिए भानिवार, रविवार के स्थान पर पूर्णिमा एवं अमावस की छुट्टी और फिर त्योहारो के दौरान अवका ा की प्रणाली के बारे में वृहद चर्चा एवं तत्प चात क्रियान्वयन जरूरी है।

4. दीवाली, ईद आदि अवसरों पर अपने गुनाह को स्वीकृत करने वाले और सुधार के रास्ते पर चलने वाले बंदियों को मुक्त भी किया जा सकता है।

5. वातावरण जहाँ कोयला एवं गैस आधारित बिजली घर, रिफाइनरी, पेट्रोकेमिकल, स्टील प्लांट एंव मोटर वाहन लगातार वायु प्रदूषण फैला रहे हो, एवं तेज हार्न, सायरन, तेज संगीत, ध्वनि प्रदूषण फैला रहे हो, दिवाली पर पटाखे एवं होली पर रंग इस्तेमाल न करने का आग्रह बचकाना है। हॉलाकि दिवाली के पटाखे एवं होली के रंगो की गुणवत्ता जरूर सुनिश्चित करनी होगी।

हमारे दिन, सारे के सारे त्योहार हों और जीवन एक आनंद उत्सव।

***

86

पर्यटन

पर्यटन शिक्षा ज्ञान और अनुभव का विस्तार है, अगर इसे सिर्फ आर्थिक या स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से न किया जा रहा हो। भारत एवं चीन में कम से कम इस क्षेत्र में काफी कुछ है और वह अद्वितीय। भारत एवं चीन को विश्व समुदाय के लिए बहुआयामी पर्यटन योजनाएं बनाना चाहिए। भारत एवं चीन का यह कर्तव्य भी है, जिम्मेदारी भी और इससे भी कुछ ज्यादा कि वे अपनी सुरक्षित संपदा को विश्व समुदाय के सामने रखकर उनके हृदय को शिक्षित करें, ''पर्यटन के द्वारा अर्जित धन से ये देश विश्व के प्रति अपने कर्तव्य और जिम्मदारियां पूरी करने में ज्यादा सक्षम हों'गे।

1. भारत एवं चीन की इसके परिवार और इसकी धार्मिक संस्कृति की जीवंतता और गतिशीलता की लंबी परंपरा के दृष्टिकोण से विशेष जिम्मेदारी बनती है कि वह पर्यटकों के हृदय और मस्तिष्क को शिक्षित करे। दूसरों की बीमारी से लाभ कमाने की बीमार मानसिकता, मेडिकल टूरिज्म पूर्वी संस्कृति और मूल्य पद्धति के अनुरूप नहीं है, हालाकि पूर्व के दरवाजे हर किसी के लिए और तरह के बीमारी के इलाज के लिए सदैव खुले हैं।
2. शासन को पर्यटन के लिए सब तरह की अधोरचना प्रदान करनी होगी, (हरियाली से भरपूर पर्यावरण, भिखमंगों से मुक्त वातावरण, ठगी से मुक्त होटल, स्थान की गरिमा और पवित्रता के अनुरूप रखरखाव, और अच्छी तरह से सुनियोजित आरामदेह सफर)। पर्यटन को बढ़ाने के लिए हमें कारखाने एवं आफिसो के बजाय हरियाली पेड़ पौधे एवं जंगल बढ़ाने होंगे।
3. भारत एवं चीन "जिसमें लगभग सभी तरह के मौसम है, और लगभग सभी तरह के क्षेत्र, और वन्य जीवों, वनस्पतियों और जंतुओं का पर्याप्त वैविध्य है" की यह विशेष जिम्मेदारी है

कि वह अपने स्वयं के लोगों को और सारी दुनिया को प्रकृति के बारे में जागरूक बनाए। शासन को जंगलों, वन्यजीवों, जलजीवन और गंगा में डाल्फनों के विकास इसकी सुरक्षा और इससे जुड़े हुए पर्यटन को विकसित करने के लिए संगठित क्षेत्र को प्रोत्साहन और सहयोग देना होगा।

शासन को मुस्लिम देशों, भारत, चीन, पूर्व–पश्चिम इत्यादि देशों के साथ एकीकृत पर्यटन योजना के विषय में वार्तालाप करके प्रभावी पहल करनी चाहिए।

***

87

हमारे पड़ोसी और दूसरे विदेशी मुल्क

''हम अपने पड़ोसी को प्यार करते हैं'' यह एक ऐसी कहावत है जिसे बार–बार सिद्ध होता हुआ पाया गया है, हम इसे कैसे छोड़ सकते हैं। अपने पड़ोसी को प्यार करना हमेशा ही अच्छा है, और हमारे लिए, कुछ हिस्से तो हमारे ही अलग हुए भाइयों और बहनों द्वारा बने हुए हैं, और अगर हम ठीक–ठीक कहें तो हम उन्हें पड़ोसी भी नहीं कह सकते। ऐतिहासिक सच तो यह है कि, जो भी एक समय पैदा हुआ है, उसे दुसरे समय तो मरना ही है, फिर चाहे यह व्यक्ति हो या देश।

1. पाकिस्तान और बंग्लादेश तो हमारे ही अलग हुए भाई हैं, और जैसे कि पुरखों का घर सारे भाई–बहनों के लिए खुला ही रहता है, और इसलिए उनमें से किसी का भी और सबका स्वागत है, और वे किसी ज्ञान/सूचना के साथ आ रहे हैं, तो फिर पलक पावड़ें बिछाकर।
2. बंग्लादेशी विषय को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि अपने पुरखों के विषय में कोई भी अवैधानिक नहीं है।
3. गैर सार्वजनिक रूप से और सामूहिक रूप से, शीषस्थ नेताओं को यह विचार करना चाहिए कि किस तरह कुछ देशों ने हमारे बीच में घृणा फैलाने के व्यापार को प्रोत्साहन दिया है, और हमसे एक या दूसरी तरह का फायदा उठााकर, हमारी आँखों में धूल झोंकी और लूटा।
4. झोपड़ियों के बीच में खड़ा पॉच सितारा होटल कलंक है। हमें सामूहिक प्रगति और प्रसन्नता के लिए योजना बनानी चाहिए और रणनीतियाँ विकसित करनी चाहिए।

5. चीनी उत्पाद कहने को सस्ते हैं, लेकिन यह आम ज्ञान का विषय है कि कीमतों में यह कमी, उसी देश के असहाय मजदूरों का खून चूसकर प्राप्त की गई है, जो कभी श्रमिकों का रक्षक बनने का दावा करता था। चीन को इस विषय में मानवीय रुख रखकर, सोच समझकर अपना पक्ष तय करना चाहिए।

   भारत और चीन दो महत्वपूर्ण (क्रम से बुद्ध, लाओत्से, कंफुसियस के जमाने से) एवं सबसे ज्यादा आवादी वाले देशों को अपने नागरिकों का ख्याल रखने की ज्यादा जरूरत है, बजाय दुनिया की आवादी के। भारत और चीन को आपस मे ज्यादा सहयोग एंव साथ में काम करने की जरूरत है जिससे लगातार परमाणु युद्ध के खात्में के डर से विश्व की जनता को बचाया जा सके।

6. भारत, पाकिस्तान, बंग्लादेश, भूटान, नेपाल, श्रीलंका, म्यांमार और मालद्वीप के बीच में एक समान सीमा, एक मुद्रा, एक यातायात और संचार व्यवस्था के बारे में विचार किया जा सकता है।

7. सीमा पर संयुक्त पर्यटन चौकसी, संयुक्त परेटन योजनाएँ सभी के लिए हितकर होंगी और इन्हें प्राथमिकता के साथ किया जाना जरूरी है।

विचार में डुबा दिए गए मत वैभिन्य नहीं बल्कि समुद्र सी विशालता और प्रेम के प्रवाह में स्वाभाविक रूप से छूट गए विरोधी मत, सनातन भारत को सनातन दृष्टि ही लेनी चाहिए। ऐसाा ही रुख, शब्दों और व्यवहार में इसी तरह की एकता, ताकि सामूहिक आनंदपूर्ण स्थिति को प्राप्त किया जा सके। जब परिवार टूटते हैं, और परिवार के सदस्य पड़ोसी बन जाते हैं, तो ऐसा देखना दुखद होता है और वे अगर एक दूसरे से दुश्मनी में उलझ जायें तो और भी दुखद। घृणा और दुश्मनी, हतासा और लड़ाइयाँ क्रोध और हिन्सात्मकता, रोना–धोना और युद्ध और इन सबके आधार में मौजूद प्रेम, ये सब चीजें स्वाभाविक हैं, और हम सभी को इस परिस्थिति को ध्यान से देखना ही है।

चूँकि दिल एक ही तरंग दैर्ध्य पर धड़कता है, एकता की गुन्जाइश हमेशा ही मौजूद है, हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और बंग्लादेश के साथ–साथ भूटान, नेपाल, श्रीलंका, मालद्वीप, एवं म्यांमार – भारत जो कि प्रकाशित करने में संलग्न हैं।

***

88

विदेश नीति

किसी को भी विदेशी चीजें पसन्द नहीं। मनुष्य का संस्थान अपने शरीर में विदेशी चीजें स्वीकृति नहीं करता। विदेशी कण खराबी पैदा करने वाले होते हैं, उनका तभी उपयोग और भोग किया जाता है, जबकि कोई चारा ही न बचा हो। विदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल कमजोरी और असहायता का लक्षण है।

1. जब तक हम वैश्विक भ्रातृत्व/वसुधैव कुटुम्बकम के स्तर तक उठ नहीं जाते, विदेशी विदेशी ही रहेगा।
2. हम अपने शरीर में केवल आपात स्थिति में ही विदेशी चीजों को स्वीकृत करते हैं, लेकिन फिर भी चाहते हैं कि विदेशी भी रहे ताकि तरह–तरह के जीवों और कामों के लिए अस्तित्व बना रहे।
3. सारा विदेश और विदेशी सभी की दृष्टि में, अनुभव और अभिव्यक्ति का क्षेत्र ही है (क्योंकि हरेक अनुभव अभिव्यक्ति चाहता ही है), या फिर प्रयोग करने के लिए प्रयोगशालाएँ, और अपने उपयोग या उपभोग के लिए जैसा भी हमारा दिल चाहने लगे। हरेक कोई अपने को फैलाना चाहता है लेकिन फिर सिकुड़ जाता है या रोक दिया जाता है, स्वयं के नष्ट हो जाने का भय रहता है। साहसिक कार्य में वृद्धि सुरक्षा होने की पुष्टि है, लेकिन सुरक्षा को खतरे में डालने से पहले सोच लेना जरूरी है और आमतौर पर इससे बचा जाना चाहिए। लेकिन नए का सन्धान और साहसिक कार्य, उनसे जुड़ा हुआ आनन्द हरेक किसी की और हरेक देश की एक मात्र इच्छा।
4. वैश्विक परिदृश्य के बारे में हमारी दृष्टि हमेशा से ऐसी ही रही है।

भीतरी शक्ति और एक जुटता को बनाकर रखना, और वसुधैव कुटुम्बकम की ओर आगे बढ़ना–सनातन रूप से, यह एक रास्ता एक आदेश है।

***

89

अतिथि देवो भव

विचित्र और अंतर्विरोधी है, लेकिन फिर भी सच है कि जो जीवन और पदार्थ के रहस्यों को खोजकर सबके कल्याण के लिए काम करते हैं, और वे जो समाज को सुधारात्मक कदमों के लिए चेतावनी देते हैं ताकि भावी आपदाओं के दौरान भी समाज अपने जीने के लिए रास्ते और जगह बनाकर रख सके, वहीं आमतौर पर अपनी स्वयं की देखभाल पर ध्यान नहीं दे पाते।

भारत में समाज ने, इस तरह के अबूझ और गहरे समर्पण से भरे हुए भीतरी काम की बुद्धिमत्ता और पवित्रता को देखते हुए, ऐसे लोगों को देवताओं की तरह सम्मान देना प्रारंभ कर दिया और उसने सामूहिक तौर पर यह निर्णय लिया कि इनकी देखभाल का काम अपने ऊपर लिया जाए, क्योंकि उनके ये गहन प्रयास सबके ही हित के लिए थे।

समाज ने यह भी देखा कि ऐसी व्यक्तियों की उपस्थिति मात्र से उस स्थान का सारा वातावरण जहां भी ये रहते हैं या जहां भी वे जाते हैं, स्वास्थ्य और आनंद की तरंगों से भर जाता है। उनकी सेवा और उनकी उपस्थिति के प्रभाव को अनुभव कर हर कोई यह चाहने लगा कि वे उनके घरों पर आएं और जब भी ये लोग किसी के भी घर गए तो उनको वह उच्चतम सम्मान मिला जो कि किसी देवता, चैतन्य वैज्ञानिक अथवा एक ब्रह्म ज्ञानी को मिलता था, जैसे कि राजाओं ने उनके लिए अपने सिंहासन छोड़ दिए उनके आगमन का समय उतना ही अनिश्चित हुआ करता जितनी कि मृत्यु , और इसीलिए यह कहावत शुरू हुई कि अतिथि देवोभव (वे जिनके आने का समय ज्ञात नहीं वे ही देवतुल्य हैं)। एक तरह से उनकी तुलना धर्मराज या यमराज से भी होनी शुरू हुई, जो कि एक नए शरीर में एक नया जन्म देते हैं। धर्मराज कहते हैं ''नया शरीर धारण करो'' और सारे रहस्यों का ज्ञाता कहता है '' नया जीवन

प्राप्त करो '' , इसी नए जीवन को हम दूसरा जन्म कहते हैं, और दूसरा जन्म लेने वालों को द्विज, ठीक उसी तरह जिस तरह शादी के बाद स्त्रियों का गौना होता है।

चूंकि समाज में ऐसी समझदारी थी इसलिए ऐसे लोगों का आगमन सौभाग्य माना जाता है, उनके लिए भोजन या किन्हीं दूसरी जरूरतों की पूर्ति तो कभी कोई समस्या थी ही नहीं। दुर्भाग्य से बुद्ध के बाद ऐसे सम्मान की मांगें बढ़ती चली गईं। नए लोगों में न तो वह शक्ति थी और न बुद्धिमत्ता, और मांगें वही, इसका परिणाम यह हुआ कि इस वर्ग के प्रति सम्मान घटता चला गया, नए जजमान के सामने यह मुश्किल थी कि वह किसको सच्चा ब्राह्मण माने और किसको नहीं। हांलाकि आज भी सारे पूर्व में ऐसे लोगों के लिए बहुत गहरा सम्मान है, लेकिन फिर भी इस सम्मान के विषय में संदेह तो पैदा हो ही गए हैं।

1. घुसपैठिए, चोर, डकैत, धोखेबाज और लुटेरे अथिति नहीं हैं, और उनको तो बुद्धिमत्ता और शक्ति से रोकना उचित है। शासन को अपनी कार्यप्रणाली में यही मापदंड बनाने चाहिए और समाज को ऐसा ही करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
2. भिखारी मेहमान नहीं है, लेकिन उनके लिए समुदाय का लंगर खुला होना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय अनुदानों और निजी निगमों के द्वारा शासकीय क्षेत्र को दिए जा रहे अनुदानों को अस्वीकृत कर और जनता को भीख लेने और देने से मुक्ति दिलाकर भिक्षावृत्ति पर रोक लगानी ही होगी।
3. अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के द्वारा विभिन्न धार्मिक संस्थाओं को दया के रूप में दी जाने वाली मददों को तुरंत रोककर दया का कारोबार बंद कराना होगा। धार्मिक संस्थाओं को समाज में सामुदायिक कार्य करने से प्राप्त हुई चढ़ोत्तरी को ही उनकी आय का आधार बनाना होगा।

***

90

गरीबी

कहावत है ''अगर एक बाल्टी में से पानी गिर रहा है तो फिर दूसरी तो खाली रहेगी ही''।

ऐसा कहा जाता है कि '' अकाल बुरे प्रबन्धन के नतीजे हैं'' , ऐसा ही ''गरीबी'' के बारे में कहा जा सकता है, नहीं तो कुदरत ने अपनी सन्तानों के लिए जरूरत से ज्यादा व्यवस्था तो कर ही रखी है।

अमीरों और आम लोगों के बीच में भारी खाई, और बहुजन की गरीबी ही सबसे बड़े कारण हैं, जो किसी भी समाज को अधीनता के योग्य बना देते हैं, और गरीबी के दुष्चक्र को तेज कर देते हैं। यह धारणा उस आम विश्वास के विपरीत है कि समाज की गुलामी ही आमजन की गरीबी का मुख्य कारण है। अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि गरीबी और उसको पैदा करने वाले कारणों को कम किया जाये और फिर समाप्त किया जाये, फिर चाहे ये कारण धार्मिक हों (जैसे कि यह पिछले जन्मों के कर्मों का परिणाम है अथवा कि स्वर्ग का द्वार तो केवल गरीबों के लिए है या कि भिक्षावृत्ति तो राजाओं का काम है जैसे कि राजकुमार गौतम बुद्ध या राजा महावीर) या फिर सामाजिक (जैसे कि अमीरी तो बोझ है, केवल गरीब ही सुख की नींद सोते हैं)।

भिखारी शायद ही कभी समृद्ध बन सके हैं। जो भिक्षा और अनुदानों पर निर्भर होते हैं वे शायद ही कभी सम्मानपूर्ण आजीविका प्राप्त कर पाते हैं। देखा गया है कि मध्यम वर्ग, अमीर और यहाँ तक की करोड़पति भी अपनी सम्पदा को बढ़ाने के लिए न सिर्फ अनुदानों और दानों का लाभ लेते हैं बल्कि इनके लिए तिकड़में भी भिड़ाते हैं, और गरीबों को और गरीब करके छोड़ देते हैं।

1. इस अवधारणा को जड़मूल से उखाड़ने के लिए धार्मिक विचार विमर्श का प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए कि गरीबी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और मृत्यु हमारी नियति।
2. सरकार को भयानक गरीबी को कम करने के लिए विचार विमर्श शुरू करना चाहिए और इसके लिए उठाए जा सकने वाले कदमों पर दृढ़ता से निष्कर्ष निकालने चाहिए।
3. हमें यह देखना होगा कि किसी भी क्षेत्र में सार्वजनिक हो या निजी, शीर्षस्थ हो या निम्नतम पदस्थ व्यक्ति की आमदनी में पन्द्रह गुना से ज्यादा फर्क न हो। इस फर्क को फिर नीचे वालों को ऊपर उठाकर दूर किया जाये, या फिर ऊपर वालों को नीचे लाकर, या फिर दोनों ही तरीकों से यह क्षेत्र के अनुसार बदल सकता है।

क्योंकि '' नहिं गरीब सम दुख जग माहीं, सन्त मिलन सम सुख जग नाहीं ''। अतः शासन को जीवन के कर्म और जीवन की कला दोनों को एक लयबद्ध समाज बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

***

91

वैश्यावृत्ति

(अ) दुनिया के सबसे प्राचीन धंधे के, जो कि यौन के क्षेत्र में शोध की प्रयोगशाला है, बंद हो जाने का विचार कैसे किया जा सकता है, जहां कामसूत्र का सृजन वैश्याओं के बीच हुआ हो और जहां विवेकानंद जैसों को भी वैश्याएं ज्ञान देती हों कम से कम वहां कैसे।

ऐसा सुना है कि, नवविवाहिता स्त्रियां कुछ इलाकों में सदा सुहागिन रहने के लिए वैश्याओं से आर्शीवाद लेती रही हैं, ताकि उनके पति जीवनभर उनके ही रह सकें। ऐसा इसलिए क्योंकि वैश्याओं को सदा सुहागिन माना जाता है।

(ब) काम का दमन, इसे निषिद्ध बना देना, और व्यक्तियों के सबसे ज्यादा निजी कार्यकलापों में हस्तक्षेप, मात्र षडयंत्र है ताकि पहले तो लोगों को बधिया बनाया जा सके और फिर उन्हें बैलों की तरह जोता जा सके। काम ऊर्जा से विभूषित पुरुष या स्त्रियों को उनकी इच्छा के बिना बैलों की तरह जोतना असंभव है।

(स) वैश्यावृत्ति के फलने–फूलने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण है :

तलाक की ऊंची दरें, माध्यमों के द्वारा उपलब्धता ने होने पर भी जरूरत से ज्यादा प्रचार, प्रेमपूर्ण संबंधों के स्थान पर प्रतिस्पर्धायुक्त संबंध ही वैश्यावृत्ति के प्रमुख कारण हैं, यौन की तीव्रता ज्यादा होना नहीं, और इसीलिए वर्तमान में पश्चिम में वैश्यावृत्ति ज्यादा प्रचलित है।

जब बौद्धिकता का स्तर बढ़ता है, यौन शारीरिक के स्थान पर मानसिक ज्यादा हो जाता है, और इसके साथ यौन वैविध्य की आवश्यकता बढ़ जाती है, और ऐसी परिस्थिति में वैश्याएं इकट्ठी हो गई ऊर्जा और जमा पैसे से मुक्ति दिलाने का सुगम रास्ता हुआ करती थीं।

(द) शादीशुदा दंपत्ति एक दूसरे पर अपना अधिकार समझने लगते हैं, और कुछ समय बाद

दोनों के बीच क्रीड़ा का स्थान कम होता जाता है और ऐसी परिस्थिति में क्रीड़ा की तलाश में इनफिडैलिटी तो बहिरमुखी व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से पैदा होने ही वाली है, और संबंधों से प्रतिबद्ध व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से हताशा, और इस नई प्रवृत्ति से दोनों ही में बाहर संतोष ढूढ़ने के रास्ते को स्वाभाविक रूप से और प्रोत्साहन मिलता है।

माध्यमों और धार्मिक संस्थाओं आदि से यह आशा की जाती है कि वे संबंधों में यौन प्रतिबद्धता बनाए रखते हुए भी उसके भीतर क्रीड़ा की विविधिता की संभावना के बारे में पर्याप्त जानकारी देने की भूमिका निभाएं, बजाए इसके कि लोग अनजाने ही वैश्याओं की तलाश के लिए बाध्य हो जाए।

1. इस संबंध में शासन का काम केवल इतना है कि वह वैश्यावृत्ति की बाध्यता के निवारण के लिए कदम उठाएं। तलाक की दरों के बढ़ने और उसके बाद गरीबी के कारण वैश्यावृत्ति की तरफ खुल जानेवाले रास्ते के विषय में धार्मिक विचार विमर्श को शुरू किया जाना चाहिए। शासन को वैश्यावृत्ति के धंधे को छोड़कर, किसी और तरीके से अपनी आजीविका अर्जन करने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति की मदद करनी चाहिए। ऐसा लगता है कि वैश्यावृत्ति को रोकना मूलतः समाज और परिवार की जिम्मेदारी है, शासन की कम, और शासकीय हस्तक्षेप न्यूनतम होना चाहिए।
2. वैश्याओं और उनके ग्राहकों दोनों के प्रति ठीक व्यवहार होना चाहिए। स्वास्थ की जांच और इलाज की सुविधा बीमारी रोकने के लिए आवश्यक है।
3. वैश्यावृत्ति के विरुद्ध सारे कानूनी प्रावधान हटा दिए जाने चाहिए, और वैश्याओं को वोट देने की सुविधा सहित सारे नागरिक अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए।
4. यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि केवल वैश्यावृत्ति की उपलब्धता के कारण पर्यटन न बढ़े। बड़े होटलों और गैर रिहायशी इलाकों में सुरा और नृत्य केंन्द्र खोले जा सकते हैं। प्रेम के कारणा पैदा हुए बच्चे या अवांछित बच्चे के भी वही अधिकार हैं, जो कि बाकी बच्चों के। पिता की पहचान के लिए डी.एन.ए. टेस्टों की व्यवस्था की जा सकती है, लेकिन वह भी केवल कानूनी रूप से कम्पेन्सेशन दिलाने के लिए लेकिन इसे गुप्त रखा जाना चाहिए।
5. समलैंगिकता, जैसी कि आज यह पश्चिम में है, एक नए ही तबके के उद्‌भव का द्योतक है, अगर यह कभी–कभी की बात है तो कुछ नए पहलुओं को जानना हो सकता है, लेकिन अगर यह स्थाई है तो बीमारी। नए के अनुभव को दरकिनार किया जा सकता है, कभी–कभी की ओर से आंखें मूंदी जा सकती हैं, लेकिन बीमारी को, बीमारी को रोका ही जाना चाहिए, कम से कम प्रोत्साहन तो दिया ही नहीं जा सकता।

समलैंगिकता तथाकथित आधुनिकतावादियों के गिरोहों में ज्यादा प्रचलित है, जिनके जीवन पाखंड से ज्यादा भर गए हैं : माध्यमों को प्राकृतिक व्यवहार करना चाहिए या अधिक से अधिक उदासीन सूचना देने वालों की भूमिका निभाना चाहिए, इन प्रवृत्तियों को महिमामंडित और गौरवान्वित करना या लोगों में उत्तेजना पैदा करना भला किस काम का। चूंकि यह

सामाजिक विषय है, शासन की, इसमें किसी भी तरह की या किसी भी बहाने से दखलन्दाजी ठीक नहीं।

***

92

आरक्षण

1. केवल शक्तिशाली ही अपने लिए आरक्षण कर सकते हैं। कम शक्तिशाली तो केवल शक्तिशालियों से निवेदन कर सकते हैं, या गड़बड़ियां फैलाकर उन्हें बाध्य कर सकते हैं, या फिर आरक्षण के लिए भी बार–बार यह कहकर कि वे घर, समाज या धर्म से अलग हो जाएगें भावनात्क शोषण कर उनसे सौदेबाजी कर सकते हैं।

   परमात्मा के पास हमारा जन्म, मृत्यु और हमारे कर्म, भक्ति या ज्ञान के अनुसार हमारे लिए कुछ परिणाम आरक्षित हैं ताकि हम एक दूसरे की बदमाशी से सुरक्षित हो सकें।

   ऐसा कहा गया है कि–

   हम अपने भीतर गहराई में मौजूद हमें चलाने वाली इच्छाओं का परिणाम है। जैसी हमारी इच्छाएं हैं, वैसे ही हमारे निर्णय (इच्छा शक्ति), जैसे हमारे निर्णय (इच्छा शक्ति) है वैसे ही हमारे कर्म, और जैसे हमारे कर्म हैं वैसे ही हमारी नियति।

   "इसके विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि :

   हमारी नियति हमारे कर्मों को तय कर देती है, हमारे कर्म हमारी इच्छा शक्ति को रूप देते हैं, हमारी इच्छा शक्ति हमारी इच्छाओं का निर्माण करती है"।

   हमारी इच्छाएं, हमारी इच्छा शकित हमारे कर्म और हमारे शब्द खुद हमें, हमारे परिवार, हमारे गांव, हमारे शहर, हमारे राष्ट्र और यहां तक कि हमारे पर्यावरण को भी बनाते हैं, और इसका उल्टा भी।

   यह केवल व्यक्तियों के लिए नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से राष्ट्र के लिए भी सत्य है। पिछले दो हजार वर्षों के दौरान राष्ट्रों के विकास, उत्थान और पतन में इसे देखा जा

सकता है, फिर चाहे वह देश भारत, चीन, ग्रीस, अरब, इंग्लैण्ड, अमरीका और अब .....

2. अनुवांशिकता का सिद्धांत कहता है कि कोई बीज और छोटे से पौधे के चित्र को देखकर ही यह बता सकता है कि, इसमें से किस तरह के फल निकलेंगें। हांलाकि मनुष्य की क्रिरियान फोटोग्राफी अभी केवल उसके आभा मंडल के लिए उपलब्ध है, उसके विस्तारों के विश्लेषण के लिए नहीं, लेकिन यह शीघ्र ही विकसित हो जाएगी, और जन्मकुंडलियों के साथ इसका भविष्य बताने के लिए एकीकृत उपयोग किया जाएगा। जीन और जन्मकुंडलियां हमारे कर्म, ज्ञान, भक्ति के अनुसार बीच में बदलते देखे गए हैं, और बीच में ही जीवन निहित है।

3. उपनिषेदों में एक कथा है कि, जब उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु गुरुकुल से वापिस लौटा, तो उद्दालक ने उससे पूछा '' क्या तुमने गुरुकुल में सब कुछ सीख लिया ? तो श्वेतकेतु ने कहा '' हां जो कुछ गुरुकुल मुझे सिखा सकता था, और जो कुछ भी वहां पुस्तकालय में उपलब्ध था, सभी ''।

   उद्दालक ने उससे पूछा : क्या तुमने उस एक को जान लिया है। क्या तुम ब्राह्मण हो गए हो। श्वेतकेतु ने कहा ब्राह्मण तो मैं जन्म से ही हूं। उद्दालक ने उससे फिर पूछा– कि क्या तुम उसको जान गए हो जिसमें से जीवन प्रगट होता है और जिसमें लीन भी, क्या तुम ब्रह्म को जानते हो। श्वेतकेतु ने कहा– नहीं मैं सिर्फ बौद्धिक निष्कर्ष निकाल सकता हुं, मैं कह सकता हूं, लेकिन उसे मैंने जाना नहीं है। तब उद्दालक ने कहा– कि तो फिर तुम दोबारा गुरुकुल जाओ, कोई भी केवल जन्म से ब्राह्मण नहीं हो जाता। वापिस जाओ पहले ब्राह्मण बनो फिर घर आना। ब्राह्मण होना दूसरा जन्म है और बिना इसे समझे और अनुभव किए कोई भी द्विज होने का दावा नहीं कर सकता।

   ब्राह्मण होना इंजीनियर या डॉक्टर होने से कहीं बहुत ज्यादा कठिन है, और कोई भी जन्म से इंजीनियर या डॉक्टर होने का दावा नहीं कर सकता। जो सिर्फ ब्राह्मण घर में पैदा होने के कारण, ब्राह्मण होने का फायदा उठाना चाहता है, वह तो सिर्फ अपने मां–बाप का फायदा भर उठाना चाहता है। इस तरह के लोग हर जगह उन्हीं विशेषाधिकारों की मांग करते हैं, जो उन्हें ब्राह्मण माता–पिता की संतान होने के नाते बचपन में कभी मिले थे।

   इस तरह के अपरिपक्व लोग, बहुत ज्यादा बढ़–चढ़ कर बोलते हैं, और हरेक किसी से मांग करते हैं कि वे उन्हें सम्मान दें, और उनके भोजन की व्यवस्था करें, और इसी तरह के लोगों ने, इस तरह के ब्राह्मणों ने (पश्चिम में यही लोग योजनाकार और वैज्ञानिक हैं) पेटेण्ट और बौद्धिक संपदा अधिकारों की बात की। इन पेटेण्टों और इन बौद्धिक संपदा अधिकारों के फायदों में से, वास्तविक ब्राह्मण को छोटा सा हिस्सा मिल जाता होगा, लेकिन फिर उनका कुनबा, बच्चे, परिवार, कंपनी और यहां तक कि उनके पूरे देश को इनका फायदा चाहिए ही है इसलिए शुरुआत में यह बौद्धिक संपदा अधिकारों और पेटेटिंग को समर्थन देते हैं और लंबे समय में इनके ही परिणामों के गुलाम बन जाते हैं।

   इस तरह की प्रणालियों में, तथाकथित वैज्ञानिक और बुद्धिजीवी लगातार नई–नई

बीमारियों और सिंड्रोम को खोज निकालने और फिर उनकी '' अधुनातन '' दवाइयों को बाजार में उतारने, उनके लिए प्रचार के नए–नए तरीके इजात करने और बिक्री के नए–नए रास्ते खोज निकालने में लग जाते हैं।

4. पहले आवश्यकता आविष्कारों की जननी हुआ करती थी, अब तो आविष्कार आवश्यकताओं को जन्म दे रहे हैं।

   पश्चिम ने अभी हाल के समय में नवब्राह्मणों की एक फौज खड़ी कर दी है, तथा कतिथ चार्टड एकाउण्टेन्स, एम.बी.ए., डॉक्टर और पी.एच.डी. लोगों की, जो कि इतिहास भूगोल, गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान सभी क्षेत्रों में ज्ञान पर कब्जा बनाए बैठे हैं। धन की अपनी लालसा का पूरा करने के लिए इसने तकनीकी हस्तांतरण का धंधा खोल दिया है, पहले तो पश्चिम अन्य देशों के लोगों को इन नये तकनीकी से बातचीत कराने के लिए उनको शिक्षित करता है, इसके लिए घालमेल में से जुगाड़कर ऐसे सभी शिक्षार्थियों के लिए बढ़िया सम्मान राशियों और बेहतरीन सुविधाओं का प्रावधान किया जाता है, फिर बाद में बाकी सबसे यह कहा जाता है कि अगर वे इस नए ज्ञान को अर्जित करना चाहते हैं तो वे इन नई विधाओं के तथाकथित महान ज्ञाताओं को जो देशी और विदेशी दोनों ही होते हैं, भारी फीसे और बेहतरीन व्यवस्थाएं दें।

   जब इस तरह से चीजें चल रही हैं, तो यह स्वाभाविक ही है कि हरेक कोई इस नए ज्ञान को प्राप्त कर दो–चार रोजों के भीतर अमीर बन जाने का सपना देखने लगे, और इस तरह मानसिक कार्य को श्रेष्ठ मानकर शारीरिक काम को हेय दृष्टि से देखने लगे। इस तरह के लोग यह मानकर ही चलते हैं कि जब भी जरूरत होगी तो वे थोड़े से पैसे से व्यक्तियों और श्रमिकों को जब चाहे खरीद लेंगे, ये सफल इसलिए हो जाते हैं कि क्योंकि श्रमिकों को इन्हें जो पैसा देना पड़ता है वह इनकी मोटी आमदनियों का नाममात्र का हिस्सा होता है।

   इस तरह के समाजों में नई शोध और इसे करने वालों को सबसे ज्यादा पैसा मिलता है, पैसे को मैनेज करने वालों को उनके बाद, वितरकों और तकनीकी व्यक्तियों जैसे– डॉक्टर, इंजीनियर को उससे थोड़ा कम, और अंततः सेल्स मैनेजरों और प्रचार माध्यमों को कुछ न कुछ मिल ही जाता है।

5. रोज की जरूरत की चीजें और आम सेवाएं मामूली से कीमतों में दी जाती हैं, और इसके लिए उत्पादन कर्ताओं और सेवा प्रदाताओं से यह आशा की जाती हैं कि वे चीजों और सेवाओं की कीमतें कम से कम कर दें। हांलाकि इन लोगों को भीतर ही भीतर नुकसान की भरपाई के लिए थोड़ा सा अनुदान दिया जाता है, लेकिन बाहर से तो उनको अपनी वस्तुएं और सेवाएं सस्ते में बेचनी ही है।

   लगातार पैदा हो रहे गुस्से को छिपाने, दबाने या कम करने के लिए बेराजगारी भत्ते की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाती हैं, या बेराजगार लोगों से उनकी रोजगारों की मांगों को भुला देने के लिए सेनाओ या अन्य संगठित शक्तियों में अपनी सेवाएं देने की मांग की जाती है। सैन्य संतुलन बनाए रखने के लिए, और अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के लिए,

युद्ध की नई–नई कसरते की जाने लगती हैं, और फिर इसके साथ सेवा करने वाले लोगों यानि शूद्रों का दमन शुरू हो जाता है।,

लोगों को ऐसा क्यों लगता है कि शरीर में दिमाग ही सब कुछ है, हाथ की हर उंगली की अपनी अलग संभावना है हमारे शरीर में कोई भी चीज फालतू नहीं है और हरेक चीज महत्वपूर्ण।

6. इसी तरह की एक कसरत पूर्व में हजारों साल पहले की गई थी, हांलाकि उसमें दिमाग का ज्यादा बेहतरीन इस्तेमाल था और फिर वह लोगों को ज्यादा स्पष्टता से चिन्हित करती थी (आज का पश्चिम का विकास तो उसकी तुलना में काफी छोटा है)। पूर्व खासतौर से भारत में ज्योतिष, तंत्र, कर्मकाण्ड और फिर बाद में देवी–देवताओं की एक बड़ी संख्या खड़ी करने वाले लोग, इसके प्रवक्तओं, इसके अमलकर्ताओं और इसका व्यवसायिक इस्तेमाल करने वाले लोग, आधुनिक वैज्ञानिकों और इसके व्यवसायियों की तुलना में कहीं ज्यादा सम्माननीय और स्वीकृत थे।

चूंकि ज्ञान की स्पष्टता होने पर इन विज्ञानों में कही ज्यादा शक्ति है, इसीलिए इन विद्याओं का व्यवसायिक इस्तेमाल करने वाले लोग अपने धंधे को अपने लिए आरक्षित कर पाने में सफल हुए हैं जैसे मंदिरों और लोगों के घरों में विशेष अवसरों पर प्रार्थना और पूजा का काम ब्राह्मणों, मौलवियों, एवं पादरियों के लिए सुरक्षित है, वे किसी तरह से आज तक भी उस तथाकथित सम्मान को इस तरह बनाए रखने में सक्षम हुए हैं, कि इन तथाकथित ब्राह्मणों का छोटा सा लड़का भी अपने पैर छिलवाने की इच्छा रखता है, सबसे पहले और सबसे अच्छा भोजन प्राप्त करने की और वह भी सबसे अलग– दुर्भाग्य है, तब जबकि हरेक कोई यह जानता है कि कोई भी जन्म से ब्राह्मण मौलवी एवं पादरी नहीं हो जाता है। यह ही आरक्षण है, बाकी सब सिर्फ आडंबर।

7) आजादी के आंदोलन के दौरान स्वामी दयानंद सरस्वती ने सबसे पहले इस आरक्षण और इसके संगठन को आर्य समाज की स्थापना कर तोड़ने की कोशिश की, यह समाज आज भी यही कर रहा है (हलाकि आर्य समाज की सोच एवं सेवा में कमी आई है और यह ये दर्शाता है कि या तो इसका पूरा पुनरूत्थान करना होगा या इसे बंद करना होगा।

आर्य समाज के उत्थान से सेवा करने वाले वर्गों के तथाकथित अनुसूचित जाति के कुछ पढ़े–लिखे स्वनाम धन्य व्यक्तित्व चौकन्ने हो गए, और उन्होंने ब्राह्मणों, हार चुके क्षत्रियों और जैसा कि आम है व्यापारी वर्गों के द्वारा अपने शोषण का आरोप लगाना शुरू किया।

ये पढ़े–लिखे लोग यह कहने लगे कि, यह दमन तो अंग्रेजों के दमन से भी ज्यादा, सच तो यह है कि सबसे महत्वपूर्ण है और उन्होंने कुछ मुस्लिम की तरह अपने लिए भी अलग शक्सियत की मांग करना शुरू कर दी। अंग्रेजों को भारत को विभाजित करने के अपने प्रयासों के लिए यह बहुत फायदेमंद लगा, जबकि राष्ट्रवादी लोंगों को भारतीय समाज को एकीकृत करने के प्रयास के रास्ते में एक नई बड़ी चुनौती ।

इस परिस्थिति में, सेवा करने वाले वर्गों और राष्ट्रवादी लोंगों के बीच मे कुछ समझौता

राजनीतिक संगठन के भीतर कुछ छूटें और स्वाधीन भारत में सुविधाओं और आरक्षण का वायदा और अंग्रेजों के द्वारा कुछ छूटें दिया जाना स्वभाविक परिणाम थे।

सेवा करने वाले वर्गों के विद्वत समुदाय के नेता यह समझने में असफल हो गए कि, अगर समाज में जागृति न हो तो इस तरह का दमन प्राकृतिक बन जा सकता है, और यह समझने में भी कि जब सारे समुदाय और सारा देश कष्ट उठाता रहा है और उठा भी रहा है तो फिर कोई विशेष हिस्सा यह कैसे आशा कर सकता है कि उसे विदेशी शासन में कष्ट नहीं उठाना चाहिए। सबसे पहले तो क्षत्रियों को कष्ट उठाना पड़ता है, उसके बाद ब्राह्मणों और फिर व्यापारी वर्गों को, तब ही सेवा करने वाले लोगों की बारी आती है। फिर भी चूंकि सेवा करने वाले लोग, सेवा में होते हैं, उनका दमन निःसंदेह लगातार होता रहता है, और सबसे ज्यादा कठोर दिखाई देता है, लेकिन इन बहुत ज्यादा पढ़े–लिखे लोगों ने सोचा कि स्वयं हिंदू समाज ही गलती पर है, और इसीलिए उन्होंने सारी सुविधाएं और आरक्षण प्राप्त करने के बाद भी धर्म परिवर्तन किए। कुछ सालों के भीतर यह साबित हो गया कि, इस तरह के धर्मान्तरण शायद ही किसी को कोई आजादी देते हैं, खासतौर से तब जबकि सारा ही देश गुलाम हो और इसने किसी तरह की लयबद्धता प्राप्त न की हो।

8. आजादी के आंदोलन में वक्त के गुजरने के साथ यह स्वाभाविक ही था कि अभी हाल में स्वतंत्र हुआ देश दो में विभाजित हो जाए, मुसलमानों की एक अल्पसंख्यक लेकिन फिर भी काफी बड़ी आबादी एक देश बना ले और दूसरा हिस्सा वह हो जिसमें इन सेवाकारी वर्गों को आरक्षण का लाभ मिले। यह भी कि बहुत पढ़े–लिखे लोगों की यह आशा गलत साबित हो जाए कि केवल धर्म परिवर्तन करने से कोई दूसरों के समाज में समानता का स्तर प्राप्त कर सकता है। यह बात तब और भी ज्यादा साफ हो गई जब ईसाई धमांतरण में लगे मिशन ने और बौद्ध धर्मांतरण करने वाले लोगों ने ही आरक्षण की मांग करना शुरू कर दी, और अभी बमुश्किल अपने पैरों पर खड़े हुए देश के सामने इन मांगों को मानने के अलावा और कोई विकल्प न रहा।

9. ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक ही है कि सारी राजनीति आरक्षण के आसपास घूमने लगे। एक पार्टी ऐसे वर्गों को एक के बाद एक छूटें देती चली जाती है, ताकि इसका वोट बैंक बना रहे, और दूसरी भी इन्हीं वर्गो का नाम लेकर इन छूटों को और भी बढ़ाने की मांगे करती रहती है ताकि पहली पार्टी के वोट बैंकं को छीन सके, और दूसरों के पास इसके अलावा कोई चारा नहीं रहता कि वे या तो चुप रहें या फिर कोई विशेष प्रावधानों की मांग करने लगें, ताकि उन्हें भी कुछ हिस्सा प्राप्त हो जाए। इस बात के लंबे परिणाम हैं कि जो आरक्षण प्रदान करने की आदत से ग्रस्त हैं और इस तरह समाज के उद्वेलन का और भी ज्यादा बढ़ाने के आदी उन्हें तो अपनी राजनीति करने के लिए नए–नए आधार मिलते ही रहेगें, अन्य पिछड़ा वर्ग, अल्पसंख्यकों के पिछड़े वर्ग, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान आदि–आदि, और जिन्हें इन आधारों पर राजनीति करने का मौका मिलेगा, वे सब नए–नए राजनीतिक मंच बनाते रहेगें। इस बात पर गौर करना चाहिए कि कोई कर्मकाण्डी ब्राह्मण किसी दूसरे कर्मकांडी ब्राह्मण को नहीं चाहता, और

ठीक इसी तरह पिछड़े वर्गो का कोई भी नेता अपनी ही जाति के किसी और व्यक्ति को नेता बना नहीं देखना चाहता।

10. ये देखा जा सकता है कि आरक्षण की मांग करने वाले सारे लोग सरकारी और कुछ गैर सरकारी सेवाओं में और इससे जुड़ी शिक्षा में ही आरक्षण की मांग करते हैं, यह स्वाभाविक ही है क्योंकि ये लोग इसी वर्ग से आते भी हैं, बाकी सारे इलाकों में तो कोई आरक्षण की मांग नहीं करता, न ही व्यापार में, न योजनाकार या लेखक बनने में, या कि फिर पुजारी बनने या जूता का काम करने में। हर वो इलाका जिसमें मौलिकता और तकनीकी कुशलता की आवश्यकता है वह तो हमेशा ही सबके लिए खुला रहता है। फिर भी तथ्य यह है कि जन्म से ब्राह्मण पैदा हुए लोगों में से, पूरी दुनिया में, वास्तव में कोई सच्चा ब्राह्मण पैदा नहीं हुआ।

11. व्यापारी वर्ग को यह मालुम है कि केवल कड़ी मेहनत और सीखने के लिए लगातार तैयारी के बूते पर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है, और इसीलिए यह वर्ग अपने बच्चों को अपना स्वयं का रास्ता चुनने के लिए अनुमति देता है, और कभी–कभी तो बाध्य भी करता है। यही वजह है कि इस वर्ग के बच्चे अटक नहीं जाते।

    तथ्य तो यह है कि जैसे ही भारत में लगभग सारी और सभी किस्म की अनुसूचित जातियों के लोगों के लिए, शासकीय नौकरियों में आरक्षण की गोलियां बांट दी जाती हैं, वैसे ही कुछ समय के लिए आरक्षण विरोधियों को संघर्ष ही थोड़े समय के लिए थम जाएगा, जबकि जाति के सदस्यों के बीच में आपस में लड़ाई बढ़ जाएगी। फिर भी आरक्षण के पक्ष और विपक्ष में संगठित होने की प्रवृत्ति तो केवल तब थमेगी, जबकि आरक्षण का लाभ प्राप्त करने वाले, तथाकथित बहुजन समाज के लोग, और दूसरे लोग भी यह समझ जाएंगें कि इसका न तो वर्तमान परिस्थिति में और न ही भविष्य में कोई विशेष महत्व है। यह प्रक्रिया वैसे ही शुरू हो गई है, और इसे बिल्कुल साफ होने में, और भविष्य के न्यायोचित और स्वतंत्र समाज की ओर विकास की प्रक्रिया में इन व्यवधानों के समाप्त होने में, कोई पांच साल और ही लगने वाले हैं।

    वह राजनीति जो आरक्षण के चारों ओर, फूट डालो/बांटों और राज्य करो की नीतियों के आसपास घूमा करती थी, सामूहिक और एकीकृत विकास की ओर जाने के लिए बाध्य होगी। पिछले दस वर्षों में हुए चुनाव ने यह साफ तौर पर दिखा दिया है कि, बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की राजनीति, चाहे वह हिन्दुओं में आरक्ष्ण प्राप्त तबकों की हो, या कुल मिलाकर मुस्लिमों या हिंदुओं की या फिर दोहरे चेहरे वाली, कभी भी स्पष्ट बहुमत और सत्ता की फसल नहीं काट सकेगी।

12. ईसाई प्रभुत्व, मुस्लिम प्रभुत्व या कम्युनिस्ट प्रभुत्व वाले देशों से भारत बिल्कुल अलग है, अपनी एकता और अनेकता दोनों में ही, और कोई भी भारत की तुलना अमेरिका या आस्ट्रेलिया से नहीं कर सकता, जहां पहले स्थानीय रेड इंडियनों को अपनी जमींन से उखाड़ दिया गया, और उनको संतुष्ट करने, उनके गुस्से को सीमिन करने और उन पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए भी उन्हें आरक्षण की सुविधा प्रदान की गई, जिसे अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण कहा जाता है।

यहां तक तो सिर्फ परिस्थिति का विवरण है, लेकिन आज तो भारतीय जनता का बहुत बड़ा हिस्सा, समृद्धि और सम्मान के उस स्तर को प्राप्त कर लेने का स्वप्न देख रहा है, जो कम से कम अमेरिका के पास तो नहीं ही है और वह भी इस तरह कि उसे बनाये रखा जा सकें।

अगर हम वास्तव में ऐसा करना चाहते है, तो कम से कम ऐसी परिस्थिति तो हमें बनानी ही होगी कि देश में अछूत न रहें, लोग भूखे–नंगे रहने और फुटपाथों पर सोने के लिए बाध्य नहीं हों, उन्हें न्याय और अच्छी व्यवस्था मिल सके, और पर्याप्त संख्या में रोजगार। यह भी जरूरी है कि उन्हें घर का विश्वास और सम्मान, पड़ोसियों के साथ अच्छे संबंध, पुलिस वालों के रूप में एक दोस्त, और नौकरशाहों के रूप में सहकर्मी मिलें, ऐसी परिस्थिति जिसमें आरक्षण की बात करना ही व्यर्थ मालूम पड़े।

यह तो निश्चित है कि पूर्व के लोग, अपनी खोई हुई गरिमा के स्तर को फिर से प्राप्त करने के लिए, स्वप्न देखते हैं, लेकिन उसे साकार करने के लिए इतना तो जरूरी है कि :

अ. हमें सारी नवीन खोजों को उनके लिए उचित सम्मान देना होगा, लेकिन पेटेण्ट और बौद्धिक संपदा अधिकारों को और उनके साथ जुड़ी हुई भारी कीमतों को सिरे से खारिज कर देगा, इनकी वजह से इन खोजों से जुड़े हुए लोगों को नवोदित ब्राह्मणों की तरह आरक्षण प्रदान किया जा रहा है। शासन को कन्सलटेंटों, डॉक्टरों, सी.ए., वकीलों, और साथ ही साथ झाड़ू लगाने वालों, बढ़इयों और रसोइयों के द्वारा ली जा रही फीस को इस तरह सम्यक बनाना चाहिए कि अधिकतम और न्यूनतम आय में उचित अनुपात बना रहे।

आ. भारत अपने यहां रहने वाले किसी भी समुदाय को पहले अल्पसंख्यक बनाने और फिर उसे आरक्षण देने में विश्वास नहीं करता। न तो किसी को अल्पसंख्यक बनाने के जरूरत है न ही उसे आरक्षण देने की और न ही ऐसे देशों का अनुकरण करने की।

इ. शासन को सारे समाजों और धर्मों को यह प्रस्ताव देना चाहिए, कि उनके पूजा स्थलों में पूजा करने और कर्मकांड करने का अधिकार किसी जाति के पास सुरक्षित न रहे। बल्कि इसके स्थान पर समाज स्वयं ऐसे परीक्षणों का प्रावधान करें जिन्हें उर्त्तीण करना पंडितों, पुजारियों और मौलवियों जैसे काम करने के लिए आवश्यक हो।

ई. पूजा स्थलों पर अछूत प्रथा, या प्रवेश निषेध को नियम से समाप्त किया जाना चाहिए। दर्शनार्थियों से आचार संहिता के पालन का आग्रह अलग बात है। शासन को इस बात का प्रयास करना चाहिए कि धार्मिक स्थानों पर इस तरह की अछूत प्रथा पूरी दुनिया में समाप्त हो, फिर चाहे ये स्थान मक्का–मदीना, कुछ भी हो सकते हैं।

उ. शासन को सारे प्रार्थना पत्रों में से धर्म और जाति के कॉलम हटा देना चाहिए।

ऊ. शिक्षा को योग्य छात्रों के लिए हर स्तर पर मुक्त एवं मुफ्त होना चाहिए, और योग्य और गरीब छात्रों के लिए आर्थिक सहायता भी दी जानी चाहिए। नई तरह के कस्बों और गांवों की योजना बनाई जाना चाहिए और इसे लागू किया जाना चाहिए। निर्माण, कृषि और पर्यावरण के क्षेत्र में बड़ी संख्या में रोजगारों का सृजन संभव है।

आरक्षण के वर्तमान रूप को जारी रखने के विषय में फिर चाहे यह आरक्षण जम्मू कश्मीर में

हो, नागाओं और मिजो लोगों का, या फिर जाति पर आधारित अखिल भारतीय आरक्षण, इसका हित लेने वालों और इसके हितों से वंचित रहने वालों के बीच में विचार विमर्श को तेज करने, और एक प्रस्ताव को तैयार करने, और इसको लागू करने के तरीके बताने का काम आगामी दो वर्षो में पूरा किया जाना आवश्यक है, ताकि देश समृद्धि, सम्मान और महिमा को प्राप्त कर सके। न सिर्फ बुनियादी जरूरतों की लड़ाई में उलझा रहना आवश्यक है, बल्कि यह भी आवश्यक है कि स्वस्थ, आनंदमय और पवित्र जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं को भी ध्यान में रखा जा सके। ऐसी आशा है कि लगभग समस्त आरक्षणों से मुक्ति पाई जा सकेगी, फिर चाहे वे आरक्षण आधुनिक संसदीय व्यवस्थाओं ने दिये हों, या फिर परंपरागत जातीय समाज ने या अन्य कोई।

आरक्षण के वर्तमान रूप जिसमें कुछ लोगों को वातानुकूलित यानों में सर्वसुविधायुक्त यात्रा की व्यवस्था है एवं कुछ के लिए धूल, भीड़, गर्मी और धुएं में धक्के खाकर असुविधा से भरी हुई यात्रा करने की, को समाप्त किया जाना चाहिए, ताकि सबके लिए तत्काल और उचित सुविधायुक्त यात्रा की व्यवस्था हो सके।

***

93

प्रदूषण

किसी स्थान पर अवांछित चीजों का जमा हो जाना ही प्रदूषण है। हवा, पानी या जमीन कहीं भी अवांछित चीजें जमा करने से इनके अग्नि एवं आकाश तत्व (खाली स्थान) का भी संतुलन बिगड़ जाता हैं इनके अतिरिक्त जीवों और वनस्पतियों का जीवन खराब हो जाता हैं।

वायु प्रदूषण के लिए :

1. इसका बुनियादी कारण है बड़ी मात्रा में ईधनों का जलना, अत्याधुनिक प्रदूषण रहित वाहनों का प्रयोग, दूसरे स्थानों पर ईधनों को जलाने की प्रदूषण रहित तकनीकों का इस्तेमाल, और कचरे और मृत पशुओं का उचित निष्पादन, यही रास्ते हैं।
2. वाहनों और बिजली के क्षेत्र में उपभोक्तावाद को प्रोत्साहन देने वाली, आसान ऋण योजनाओं की समीक्षा करने और आवश्यक होने पर इन्हें बंद करने की जरूरत है।
3. शहरों और महानगरों में जनसंख्या घनत्व बढ़ाने वाली प्रवृत्यिों को रोकना जरूरी है। समुचित विचार विमर्श, समीक्षा और योजनान्वयन कर मानकीकृत शहर की अवधारणा को लागू करने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना उचित है।
4. वृक्षारोपण में सुधार जरूरी है, हांलाकि रास्ते में खड़े पेड़ ट्रैफिक जामों का कारण बन प्रदूषण को बढ़ा रहे हैं तो उनको काटने की अनुमति भी।
5. वाहनों में हार्न की तेज बजने की सीमा फैक्ट्री के स्तर पर ही सीमित कर देनी चाहिए। अत्यधिक हार्नो, तेज संगीत, लाउड स्पीकर के प्रयोग, पर नियंत्रित पाबन्दी लगाना जरूरी है।
6. ऊर्जा के क्षेत्र में बर्बादी को न्यूनतम किया जाना और उपयोगिता का अधिक से अधिक

प्रभावी बनाना ही लक्ष्य होना चाहिए, यह नहीं कि हम ऊर्जा के संरक्षण के नारे लगाए और किरायों का बढ़ाते चले जाएं। औद्योगिक क्षेत्र के अलग–अलग प्रदूषणकारी उत्पादों के लिए अलग–अलग और विशेष संयंत्र बनाए जाने के लिए शोध का प्रोत्साहन देना जरूरी है। सारे उद्योगों में बाउण्ड्रीवाल और खंभों पर वृक्षारोपण की धारणा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

7 खदान क्षेत्रों और कोयला ऊर्जा संयंत्रों, तेल शोधक संयंत्रों और पेट्रोकेमिकल तथा खादों के संयंत्रों हेतु शोध और विकास की समर्थन देने की आवश्यकता है।

जल प्रदूषण के लिए :

1. क्षेत्रों के स्तर पर जल प्रदूषण दूर कर उसके पुनः उपयोग के लिए संयंत्रों की स्थापना पर विचार किया जा सकता है (जैसे चौके का पानी–बगीचे में, बाथरूम में इस्तेमाल करना) ।
2. धार्मिक संस्थाएं जो नदियों, कुओं, तालाबों, झीलों को पवित्रकारी मानते हैं (पहले जल क्षेत्र में पेशाब या पाखाना करने को अनीतिपूर्ण माना जाता रहा है, और आज दुर्भाग्यवश हम पूरी के पूरी नाली का पानी ही नदी में बहा रहे हैं), वही जलाशयों के प्रदूषण को दूर करने का काम कर सकते हैं। अगर हम अपने जलाशयों को प्रदूषण से मुक्त रख सकें, तो हमारे देश की बड़ी आबादी के लिए, जल प्रदूषण का अध्याय लगभग बंद हो जाता है।
3. गर्म देशों में जल प्रदूषण की समस्या ठंडे देशों से कहीं कम है, यहां गर्मी के कारण पानी का ऑक्सीकरण तेज होता है, फलतः कीटाणु जल्दी मरते हैं। इसलिए ठंडी जगहों जैसे हिमालय और अंटार्कटिक या ठण्डे देश जैसे कनाडा पर जल प्रदूषण कम करने के लिए ज्यादा कठिन प्रयासों की आवश्यकता है।

आणविक और एस्बेसटॉस कचरा :

इन्हें मानव विहीन द्वीपों में, गहरे गड्डे कर, सीमेंट कंक्रीट की मोटी परतों के अंदर दबाना ही उचित है। न तो तीसरी दुनिया के देशों में, न ही समुद्र में और न अंतरिक्ष में।

भूमि प्रदूषण के लिए :

1. पालीथीन का प्रयोग सड़क निर्माण के लिए होना चाहिए। कूड़ा बीनने वाले कूड़े में से अलग–अलग चीजों को अलग–अलग कर उन्हें प्रोसेसिंग करने वाले उद्योगों को बेचकर कमा सकते हैं, और सामान्य जैव कचरा खाद बनाने के काम आ सकता है।
2. कस्बों और गांवों के नियोजन में भवन निर्माण के स्थापत्य की सेवाओं को सुधारने की जरूरत है, ताकि सूर्य की प्राकृतिक रोशनी, हवा और सौर ऊर्जा आधारित उपकरणों के लिए उचित व्यवस्था हो सके।

पंचतत्वों में अंतर्निहित शक्ति के उपयोग द्वारा उनके प्रदूषण को दूर करने का विचार ही अंत में सर्वोत्तम है। कुएं का पानी कुएं में जाए, हमारी पट्टी सूख जाए। यही सर्वोत्तम दर्शन।

***

94

वातावरण

वातावरण–वायु का आवरण. हवा का वह घेरा जो धरती के चारों ओर है, यह हमारे जीवन को उसी तरह प्रतिबिंबित करता है, जिस तरह हमारी वेशभूषाएं हमारे व्यक्तित्व को। हमारा ही स्वभाव प्रकृति को सृजित करता और उसे वैसा बनाकर रखता है, जैसी कि वह है, और प्रकृति भी ऐसा ही करती है। अगर हम प्रकृति के साथ प्रयोग कर रहे हैं, तो प्रकृति भी हमारे साथ किसी न किसी रूप में प्रयोग कर रही है।

जब किसी क्षेत्र या गृह नक्षत्र का वातावरण जीवन के लिए उपयुक्त हो जाता है तो वहां जीवन का स्वभावतः सृजन हो जाता है, और जब हम प्रकृति को ही इस तरह बदल देते हैं कि वह किसी प्रजाति के लिए रहना कठिन हो जाए, तब वह प्रजाति अपने शारीरिक रूप को छोड़कर ऊर्जा की एक तरंग की तरह वातावरण में लीन हो जाती है, और जब फिर वही वातावरण आता है तो यह फिर भौतिक रूप धारण कर लेती है। यह तथ्य है फिर जगह चाहे कोई भी हो धरती, चंद्रमा या मंगल कुछ इस तरह जैसे कि वृत्तों और वृत्तों के विस्तार के नियमों में मौजूद उत्क्रमणीयता, यह संभव है कि यह चक्र एक मिनट में पूरा हो जाए, एक माह ले ले या फिर करोड़ों साल, समय इस बात पर निर्भर करता है कि प्रकृति में वृत्त खींचा कहां गया है। ग्रहों पर खिंचे हुए चक्रों को सैकड़ों से हजारों साल लगते हैं, और ग्रहों के बीच की जगह को अरबों साल।

ग्रहों के बनने और टूटने में, और ग्रहों के बीच के, और ग्रहों के पर्यावरण के बनने और टूटने में लावा गर्म, मध्यम गर्म, ठंडे कण एक साथ इकट्ठे होकर एक क्षेत्र (जोन) बना लेते है ओर यह क्षेत्र अलग–अलग ऊर्जा तरंगों से जुड़ी होती है। दो समान रूप से गर्म जगहों के बीच में,

पूर्ण शून्य निर्मित हो जाता है, ऐसे स्थानों को हम व्लैकहोल कहते हैं। इन छेदों की आकृति कैसी भी हो सकती है, तिकोनी, चौकोनी, षडभुजाकार या गोल, और यह बराबर शक्ति के विरोधी ऊर्जा स्त्रोतों की संख्या पर निर्भर करता है। हमारी धरती पर, बरमूडा त्रिकोण को भी ऐसे ही समझा जाता है।

प्रत्येक ग्रह में ठोसों, द्रवों और गैसों का अपना–अपना हिस्सा है और इनसे मिलकर बनी हुई अपनी आकृत्ति है। सूरज पूरी तरह गोल है, जबकि सारे ग्रह पूरी तरह गोल नहीं है, उनमें थोड़ा या अधिक दीर्घवृत्ताकार (अण्डाकार) अंश है। ग्रह सूरज के चारों तरफ लगभग गोल रेखाओं में घूमते हैं, अलग–अलग सौरमंडलों की ऊर्जाओं में थोड़ा सा अंतर ग्रहों की गति को प्रभावित करता है। ग्रहों की सतहों के एक के बाद एक गर्म और ठण्डे होने से ग्रह अपनी धुरी पर घूमते हैं। पूर्णमा के दिन सूर्य की ऊर्जा को जब चंद्रमा रोक लेता है, समुद्रों में ज्वार आते हैं, और इस तरह के ज्वार उन आदमियों के दिमाग में भी आते हैं, जिनके दिमाग में कोई खराबी होती है, और इसीलिए हम उन्हे ल्यूनेटिक कहते हैं। पूरा का पूरा सौरमंडल अपने नजदीक मौजूद दूसरे बड़े सौरमंडलों की ओर सीधी रेखा में चलता है, और अगर पास में कई सौरमंडल मौजूद हों तो यह गति आड़ी–तिरछी हो जाती है, अगर दो और अधिक सौरमंडल टंकरा जाएं तो प्रलयकारी टकराव (विगवैंग) होता है।

किसी ग्रह का जीवित रहना न रहना, इसके खुद के और आसपास के दूसरे सौरमंडलों से प्रभावित होता है, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण तो ग्रह के स्वयं के भीतर चलने वाली गतिविधि ही ग्रह को प्रभावित करती है और साथ ही ग्रह की गतिविधि में हस्तक्षेप और दूसरे ग्रहों की खोज भी निःसंदेह इसे प्रभावित करती है। जैसे कोई भी दूसरी जीवित प्रजाति लुप्त या प्रगट हो सकती है, इसी तरह ग्रह और सौरमंडल भी जन्म मृत्यु की प्रक्रिया के परे नहीं है।

वातावरण की उम्र लंबी हो, इसमें आत्मीयता और प्रचुरता बना रहे, और यह प्यारा लगता रहे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि इसके निवासी कैसा व्यवहार करते हैं। धरती का वातावरण जिसमें ध्रुव भी हैं और ध्रवों से बहुत दूर भूमध्य रेखा पर मौजूद क्षेत्र भी, एक जहां छह–छह महीने की दिन और रात होते हैं, और दूसरे जहां बारह घंटे के दिन और रात, ऐसे इलाके जहां बर्फ है और ठंडा रेगिस्तान, और वे इलाके जहां रेत है और गर्म रेगिस्तान। इस पर ऐसे इलाके भी हैं जहां कोहरा और ठंड है और ऐसे इलाके भी जहां सिर्फ नमी और गर्मी। ये सब धरती के एक ही शरीर के हिस्से हैं। किसी भी एक इलाके में छोटा सा कोई विछोह, दूसरे इलाकों में भी विक्षोम की एक लहर पैदा कर देता है, किसी एक क्षेत्र में कोई बड़ा हस्तक्षेप, दूसरे इलाके में बड़े विक्षोभ पैदा कर देता है, और इसका परिणाम होता है अकाल, बाढ़ें, चक्रवात , सुनामी, जो कभी–कभी आते हैं और प्रदूषण और वैश्विक तापमान में वृद्धि जो कि लगातार चल ही रही हैं। इनका परिणाम है जीवितों में कभी–कभी प्रकट हो जाने वाली नई–नई बीमारियां, और लगातार बना रहने वाला तनाव, गुस्सा एवं बिगड़ा हुआ रक्तचाप।

प्रकृति और अस्तित्व में विपरीत चीजें एक दूसरे की ओर खिचती हैं, और समान चीजें एक दूसरे से दूर जाती हैं, यही नियम है दो ध्रुवीयों को, एवं समान का आकर्शण एवं विपरीत का अलगाव यह नियम है एक ध्रुवीय चीजों का।

इस तरह से पूरी तरह से आपस में जुड़े हुए जीवन के जाल में अगर कोई देश यह सोचता है कि वह दूसरे देशों के पर्यावरण का उपयोग कर अपने देश के निकटवर्ती वातावरण को बचा लेगा, और इसलिए हिमालय के क्षेत्रों से पेड़ खरीदता है, अपने तेल संसाधनों को बचाकर दूसरे इलाकों के ईधनों को अनावश्यक रूप से जलाता है, अपनी खदानों को सुरक्षित रख दूसरे इलाकों से अयस्क खरीदता है, निश्चित ही मूर्खों के स्वर्ग में निवास कर रहा है। हमें यह समझना ही होगा कि अगर हिमालय पर बर्फ पिघलती है तो इससे पैदा हुई बाढ़ न सिर्फ भारत को प्रभावित करेगी, बल्कि बंग्लादेश और दूसरे देशों के समुद्र तट भी इसकी गिरफ्त में आएंगें। दिल्ली, लंदन और पैरिस से निकल रही कार्बनडाईऑक्साइड की अतिरिक्त मात्राएं, आसपास के इलाकों एवं देशों पर असर डालती है।

हम प्रकृति की इस व्यवस्था को समझता है और धरती को माता की तरह और भारत आकाश को पिता की तरह इज्जत देता है। भारत प्रकृति को जीतने का विचार ही नहीं करता, और इसीलिए प्राथमिक तौर पर यह हमारी ही जिम्मेदारी है कि हम अपने वातावरण को सुधारे और व्यापक विश्व को लयबद्ध सहअस्तित्व की शिक्षा दें।

वतावरण को लयबद्ध बनाये रखने के लिए निम्नलिखित पर ध्यान देना होगाः–

इसके लिए सर्वप्रथम महत्वपूर्ण यह है कि हम न तो उपयोगितावाद को बढ़ावा दें और न ही इसके माया जाल में फंसे।

1. लकड़ी का अत्यधिक आयात एवं निर्यात रोका जाना चाहिए। इसके लिए न सिर्फ हमें अपने लिए निर्णय लेना है, बल्कि सभी देशों को इसके लिए प्रेरित भी करना है।
2. अयस्कों और प्राकृतिक खादों के आयातों एवं निर्यात पर रोक लगाई जानी चाहिए। आयात निर्यात केवल धातुओं और अधातुओं के बने हुए और परिष्कृत सामानों का होना चाहिए।
3. हमें समाचार पत्रों से अपने पृष्ठों को सीमित रखने का आग्रह करना करना होगा। समाचार पत्रों पर लगने वाले आयात एवं निर्यात शुल्क को ठीक किए जाने की जरूरत है।
4. भारत न तो समुद्र और न ही जमीन पर कोई बड़ा आणुविक परीक्षण करेगा। और न ही वैश्विक समुदाय द्वारा ऐसा किए जाने का समर्थन। सारी जमीन और पानी अंतः संबंधित हैं और सारे जीवजगत की विरासत। भारत दूसरे ग्रहों के लिए किए जाने वाले अभियानों का हिस्सा नहीं बनेगा, हमारे लिए चंद्रमा ही बहुत है।
5. ओजोन लेयर के क्षरण के तर्क के आधार पर अनावश्यक प्रतिबंधों और इसी तर्क के आधार पर तीसरी दुनिया के देशों को मंहगी तकनीक आयात करने के लिए डाले जा रहे दबावों का भारत स्वीकृत नहीं करेगा, और न ही प्रोत्साहित।
6. ऊर्जा के लिए प्राथमिक और पुनः पैदा की जा सकने वाले स्त्रोतों (जैसे–लकड़ी, कोयला, गोबर, गैस, हवा, सूर्य) को भारत प्रोत्साहित करेगा और द्वितीयक स्त्रोतों को प्रोत्साहित करने की कोई आवश्यकता नहीं (जैसे बिजली, हाइड्रोजन गैस)।

7. बड़े स्तर पर हो रहे निर्माण जैसे बड़े बांधों, बड़े शहरों, नदियों को आपस में जोड़ने की योजनाओं को न तो भारत अपने हाथ में लेगा और न हीं इनका प्रोत्साहन करेगा।
8. व्यापार, प्रशासन और समूचे जीवन में जीवन की जटिलता को कम करने और उसके स्थान पर सरलता और प्रकृति से नजदीकी को जगह देने की जरूरत है।
9. गुजरे जमाने के वन कानूनों के आधार पर यातायात को रोकने और बड़े शहरों में वृक्ष संरक्षण के नाम पर यातायात मार्गों के विकास को रोकने जैसी गतिविधियों पर रोक लगानी होगी।
10. गृह निर्माण और वाहनों के क्षेत्र में अराजकतापूर्ण विकास को नियंत्रित और ठीक करने की जरूरत है, इसमें हमारा भी भला है और पड़ोसी देशों का भी।
11. भारत में बड़े स्तर पर वृक्षारोपण का काम हाथ में लेना होगा और पड़ोसी देशों की अनुमति से सारे हिमालय क्षेत्र में भी।
12. यह देखा गया है कि हैदराबाद जैसे बड़े शहरों का तापमान दो डिग्री घटाने के लिए, बड़े आकार के दस लाख पेड़ों, ;पीपल, नीम, बरगद और आम आदिद्ध लगाने की जरूरत है। भारत को इसके पांच सौ जिलों में से हरेक में कम से कम दस लाख और इसके हरेक तहसीलों में पांच लाख पेड़ लगाने की जरूरत है।
13. वृक्षारोपण के फल व्यक्तियों और उनके स्थानीय केंद्रों के ही हैं। किसी भी काम के लिए किसी भी पेड़ को काटने न काटने का निर्णय, उस इलाके के वरिष्ठ नागरिकों की समिति का होना चाहिए, सरकार का नहीं।
14. वृक्षारोपण के जरिए बड़ी संख्या में रोजगारों का सृजन करना होगा। हरेक बड़े पेड़ को लगाने पर लगाने वाले और इसे पानी देने वाले को कुछ पैसे मिलने चाहिए और इसके साथ ही पेड़ के फलों, फूलों और अन्य अवयवों पर अधिकार। रोजगार की तलाश में लगे सारे लोगों को यह मौका मिलना चाहिए कि उन्हें वृक्षारोपण के क्षेत्र में रोजगार मिले, इसके लिए हरेक पेड़ को पालपोषकर बड़ा करने पर उन्हें पुरुष्कार के रूप में गुजारा भत्ता और पेड़ के द्वारा दी जा रही चीजों पर अधिकार मिले। इस काम को लालफीताशाही और नगरपालिकाओं की जगह, सांसदों, वरिष्ठ नागरिकों और धार्मिक संस्थाओं द्वारा ही किया जाना उचित है।

15. धार्मिक संस्थाओं और वरिष्ठ नागरिकों की समितियों में ही यह क्षमता हो सकती है कि वे जलाशयों और नदियों से संबंधित कामों को अपने हाथों में ले सकें, इसके लिए उन्हें प्रोत्साहन, वित्तीय सहायता और यहां तक की आवश्यकता पड़ने पर सुरक्षा एजेंसियों जैसे पुलिस का पूरा सहयोग प्रदान करना होगा।
16. तालाबों और झीलों के उत्पाद क्षेत्र की ही संपत्ति है, जबकि नदियों के उत्पाद सारे देश की, और इसीलिए इनके रखरखाव की जिम्मेदारी भी इसी तरह बांटी जानी होगी।
17. चेक डैम, वर्षा जल के संग्रहण, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा और बायोगैस को प्रोत्साहन

करना होगा।

18. शिक्षा प्रणाली में न सिर्फ पर्यावरणीय संतुलन के महत्व को स्थान दिया जाना उचित है बल्कि इसके लिए आवश्यक व्यक्गितगत पहल कदमी को भी।

जीवन के कर्म और जीवन की कला योग, नृत्य और तंत्र से परिष्कृत होती है, और इन्हीं से व्यापक जीवन प्रकाशित होता है।

***

95

मीडिया

कहा जाता है कि अगर कोई खबर नहीं है तो यह एक अच्छी खबर है या कोई भी खबर अच्छी खबर नहीं होती और अगर हम आज के मीडिया की प्रवृत्ति को देखें तो यह बात खरी उतरती दिखाई देती है। एक वक्त था जबकि मीडिया वास्तव में माध्यम था समाज की वास्तविक स्थिति का आइना, जबकि आज तो इसने केंद्रीय भूमिका प्राप्त कर ली है यह समाज का निर्माता भी बन गया है और विनिष्टकर्ता भी।

१. अगर मीडिया चाहे तो नष्ट कर देता है और अगर चाहे तो सितारों की जगमगाहट में चार चांद लगाकर उन्हें हीरो बना देता है। यह इतना शक्तिशाली हो गया है कि छोटे शासकीय कर्मचारियों और निजी व्यवसाय चलाने वाले लोगों की तो बात छोड़ दें, इसने तो पुलिस और न्यायपालिका के लोगों से भी रिश्वत वसूलने की ताकत प्राप्त कर ली है।

२. मीडिया को अपनी वर्तमान प्रवृत्ति कि ''तुम मुझे खबर के बारे में बताओ तो मैं तुम्हें इस खबर के पीछे से आये पैसे का स्त्रोत बता दूंगा'' ''अथवा तुम मुझे विज्ञापन दो और मैं तुम्हारे अनुरूप ढल जाऊंगा'' से बाहर निकलने की जरूरत है। मीडिया को स्वयं अपनी आय के स्त्रोतों की हरेक छः महीने में जानकारी देना चाहिए, पहले तो इसी को पारदर्शी होने की जरूरत है।

३. मीडिया को अपने वर्तमान दुखात्मक (सेडिस्टिक) रवैये और व्यवहार से बाहर आना चाहिए और अगर हो सके तो प्रसन्नता का संदेशवाहक होना चाहिए। अखबार के पहले पेज पर चोरी, डकैती और हत्याओं की खबर छापने की क्या जरूरत है ? मीडिया के लिए एक नैतिक संहिता होना चाहिए, एम्बुलेंस के पीछे लगा पत्रकार और खून दिखाता हुआ कैमरा मैन यह तो अति ही है। शासन को देश और अंतर्राष्ट्रीय मीडिया को शुभ समाचार छापने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

४. नंबर वन (एक नम्बर) बनने के लिए, अखबारों के पेज बढ़ाने की प्रवृत्ति का निश्चित अप्रत्यक्ष परिणाम है प्रदूषण का विस्तार। अखबारों से परिपक्वता की आशा की जाती है, यह केवल पढ़ने के लिए है, इसमें अखबारों के पाठक वर्ग को माडलों की शक्लें देने की आखिरकार क्या तुक है। समाचार शोर के साथ एवं मत जबरदस्ती मनवाने के प्रयास के साथ कहने की जरूरत नहीं है, इन्हें शांति और आराम से कहा जा सकता है।

५. मीडिया के व्यक्ति चूंकि समाज में संप्रेषण का कार्य कर रहे हैं, इसलिए उन्हें समाज से अच्छे व्यवहार की दरकार है, इसलिए नहीं कि उनमें सौदेबाजी और धोखाधड़ी की शक्ति है, बल्कि सिर्फ इसलिए कि यह समाज की जिम्मेदारी है और सद्भावना। शासन को मीडिया कर्मियों और उनके परिवारों के लिए बीमा की व्यवस्था करनी चाहिए, लेकिन मीडिया ठेकेदारों के आगे समर्पण नहीं।

६. हमारे संविधान का यह चौथा स्तंभ मजबूत हो गया है, ऐसी परिस्थिति में जबकि बाकी तीन स्तंभ कुछ कमजोर पड़ गए हैं। अगर ऐसा है तो फिर मीडिया की जिम्मेदारियां बढ़ गई हैं, और मीडिया को यह समझना ही होगा कि स्वतंत्रता और जिम्मेदारियां अलग नहीं किए जा सकते।

७. विदेशी निवेश मीडिया आने के बाद हालत इतने खराब हो गये कि डूबती हुई मुम्बई में मुम्बई सूचकांक बढ़ने की खबरें आती रही। मीडिया में विदेशी निवेश बेफजूली, नुकसान पहुँचाने वाला एवं खतरनाक है, मीडिया स्वदेशी संचालित एवं मालकियत वाला ही होना चाहिए (बिना किसी अप्रवासी के) हॉ इसकी अंतर्राश्ट्रीय भाखा अप्रवासियों के सहयोग से चलायी जा सकती है।

मीडिया से धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता के प्रहरी और अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे के प्रवक्ता होने की आशा की जाती है।

***

६६

मोटापा और कुपोषण

एक चिकित्सकीय व्यापार की एक रिपोर्ट कहती है कि " अगर हम ऐसे ही जीते रहे और ऐसे ही खाते रहे (तेज जिंदगी और त्वरित खाना) तो, हमारी तीस प्रतिशत शहरी जनसंख्या मोटापे का शिकार हो जाएगी और इनमें से आधे लोग मोटापे के निदान के लिए डॉक्टरों की शरण में जाने के लिए विवश होंगे। इतनी बड़ी संख्या का ध्यान रखने के लिए, बड़ी तादात में मोटापा कम करने के दवाखानों की जरूरत पड़ेगी, और इसीलिए इन क्लीनिकों के लिए डॉक्टर, आहार और व्यायाम विशेषज्ञ बनना बड़े लाभ का सौदा है।

दुनिया के दूसरे हिस्सों के बारे में, एक रिपोर्ट कहती है, कि गरीबों और अमीरों के बीच में खाई भी उसी दर से बढ़ने वाली है, जिस दर से देश का सकल राष्ट्रीय उत्पाद। इस गरीबी की वजह से भुखमरी और कुपोषण में वृद्धि होगी, और इससे मिशनरी और धर्मार्थ ट्रस्टों, का कार्य क्षेत्र बढ़ने ही वाला है।

कितनी बढ़िया आर्थिक योजनाएं हैं, चिकित्सा और धर्मार्थ कार्य दोनों ही धंधे ! जब तक चिकित्सा, धार्मिक और मिशनरी कामों को धंधों की तरह फलने-फूलने दिया जाता रहेगा, और उनका महिमामंडन किया जाता रहेगा, तब तक हम बीमारियों मोटापे एवं कमजोरी को बढ़ाने को ही रास्ता दे रहे हैं और इसका समर्थन भी कर रहे हैं, यह शर्म की बात है। हरेक देश के राष्ट्रीय योजनाकारों से इस परिस्थिति को देखने और इसके अनुसार भविष्य की योजनाए बनाने की उम्मीद की जाती है।

१. मोटापा और कुपोशण बिगड़ी हुई आश्रम व्यवस्था एवं वर्ण व्यवस्था का परिणाम है। वर्ण व्यवस्था के बिगड़ने के कारण अधिकांश भोजन चालाक एवं बेवकूफ खा जाते हैं जिससे इनमें मोटापा वढ़ता है एवं सेवादारों में कुपोशण। बिगड़ी हुई आश्रम व्यवस्था के कारण अधिकांश भोजन गृहस्थ एवं वानप्रस्थी खा

जाते है और मोटापे का शिकार होते हैं एवं बच्चे व वृद्ध (सन्यास आश्रम वाले) कुपोशण का शिाकार। अगर हमे मोटापे और कुपोशण से मुक्ति पानी है तो आश्रम एवं वर्ण व्यवस्था ठीक करनी होगी।

२. शिक्षा उद्योग और सेवाओं के क्षेत्रों में, इस तरह की योजना और कार्यान्वयन को प्रोत्साहन दिया जाएगा, कि वे शारीरिक गतिविधि को अपने काम का आवश्यक हिस्सा बनाएं, फिर चाहे इसके लिए शारीरिक श्रम करने की जरूरत हो या कसरत करके पसीना बहाने की। दिन में एक नृत्य डॉक्टर को दूर ही रखता है। (फिल्म के हीरों-हीरोइनें जो नृत्य करते हैं उन्हें देख सकते है)।

३. खाद्य संरक्षण के लिए मिलाए जाने वाले पदार्थ, पेट में भी खाने का संरक्षण करते रहते हैं, इससे अपच हो जाती है। कृत्रिम खाद्य संरक्षक पदार्थों के उपयोग को सीमित किया जाना होगा, और प्राकृतिक खाद्य संरक्षकों के भी व्यापक इस्तेमाल को। स्कूलों और ऑफिसों की कैंटीनों में बेचे जा रहे खाद्य पदार्थों की चौकसी जरूरी है। ऐसा देखा गया है कि मोटे व्यक्ति तेजी से और जल्दी बाजी में खाते एवं पीते हैं। खाने को इतना चबाओं कि वह तरल हो जाये और पानी को ऐसा पीओ कि वह ठोस हो। खाना-पीना पालथी बैठकर करना ही अच्छा है।

४. मोटापा सिर्फ इसलिए नहीं बढ़ता कि लोग ज्यादा खाते हैं, बल्कि इसलिए भी कि उनके पेट ठीक से साफ नहीं होते। पूर्वी तरह के पाखानों में बैठने से, जो शरीर का जो एक्यूप्रेशर होता है उससे शौच आसान हो जाता है, पूर्वी तरह के पाखानों के प्रचलन को ही प्रोत्साहित करना जरूरी है। इसके विपरीत पश्चिमी कमोड अपच एवं मोटापे को बढ़ाते हैं सिर्फ बीमारों को जो पूर्वी पाखानों में नहीं बैठ सकते उन्हीं को कमोड का इस्तेमाल करना चाहिए। महानगरों में पश्चिमी कमोड का चलन वहाँ बीमारियों का ज्यादा होना प्रदर्शित करता है।

५. पीपल और बरगद हमेशा बढ़ते रहते हैं क्योंकि वह दिन-रात चौबीसों घंटे कार्बन (कार्बन डाईऑक्साईड से) लेते रहते हैं और ऑक्सीजन हवा में छोड़ते हैं , बाकी पेड़ पौधे-थोड़े कम बढ़ते हैं क्योंकि वह दिन में कार्बन (हवा में कार्बन डाईऑक्साइड से) लेते हैं और रात मे ऑक्सीजन लेते हैं एवं कार्बन (कार्बनडाइऑक्साइड) छोड़ते हैं वही जानवर दिन-रात चौबीस घंटे हवा में कार्बन (कार्बन डाईऑक्साईड) छोड़ने के कारण अपनी सेहत वरकरार रखते हैं। अतः श्वास की सही प्रक्रिया (गहरी एवं लंबी) से सेहत ठीक रखी जा सकती है।

६. कुपोषण को दूर करने के लिए समुदायों की धार्मिकता और नेक नीयती पर भरोसा कर, उनके जरिए ही भोजनप्रदाय के कार्यक्रम चलाना उचित है।

७. सकल राष्ट्रीय उत्पाद के बढ़ने के साथ तो सभी दिशाओं में एक साथ प्रगति होती है गरीबी, अमीरी, चोरी, डकैती, अपराधिककृत्य सभी में, इससे हमारे अराजकतापूर्ण राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय चरित्र का पता पड़ता है। समग्र परिस्थिति में सुधार के लिए यह जरूरी है कि सकल राष्ट्रीय उत्पाद को, राष्ट्रीय प्रसन्नता दर का हिस्सा बनाया जाए।

***

९७

आतंकवाद और आतंकी

यह भी किसी और वाद ('इज्म') की तरह ही है, जैसे-साम्यवाद, पूँजीवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद या धर्मवाद (कम्यूनिज्म, कम्यूनेलिज्म, रीजनेलिज्म या यहां तक की रैलीजिएनिज्म), लेकिन आतंकवादी एक बिल्कुल अलग किस्म की नस्ल है, यह आतंकवाद से भी प्रेरित हो सकती है या अकेले, अलग-थलग या छोटे समूहों के रूप में भी हो सकते हैं, और अगर छूट मिल जाए तो ये पूरी की पूरी नस्लों को भी तबाह कर सकते हैं।

११ सितंबर की घटनाएं घटीं, और बहुत से जनतांत्रिक लोगों ने अमरीका में रह रहे सारे मुस्लिम भाइयों को आतंकवादी करार दे दिया, इसके बाद अफगानिस्तान और ईराक पर हमले हुए, उन सारे देशों पर नजर रखी जाने लगी, जहां कि बड़ी मुस्लिम आबादियां हैं। गांधी जी को गोली मारी गई, और उनकी शहादत के लिए पूरी आर.एस.एस. को जिम्मेदार ठहराया गया, इंदिरा गांधी को गोली मारी गई और सारे सिक्ख समुदाय को हत्यारा करार दिया गया, हम ऐसा मत नहीं रखते।

१. किसी भी आतंकी गतिविधि के लिए, देश के भीतर या बाहर मौजूद चिन्हित आतंकवादी समूह पर विभिन्न तरीकों से लक्षित कार्यवाही की जानी चाहिए। मीडिया के शोरगुल और उसके द्वारा फैलाई जा रही घृणा की बिना कोई चिंता किए और उसको बिना कोई प्रोत्साहन दिए। आशा है कि एक संतुलित समाज के लिए मीडिया अपनी भूमिका का सही निर्वाह करेगा।

२. एक तरह से देखें तो आतंकवादी हत्याओं के द्वारा परमात्मा का ही कोई काम पूरा कर रहा होगा, क्योंकि वहीं सृजनकर्ता है और वही मृत्युदाता। यही प्रार्थना है कि आतंकवादी इसे जानकर कम से कम

अपने हाथों को खून से नहीं रंगेगें। जीवन में दो ही लोग महत्वपूर्ण हैं, एक वो जो जन्म देता है और दूसरा वह जो यह प्राण ले लेता है। और इस तरह इस दिल में न तो आतंकवादी के लिए घृणा है और नहीं उनके लिए जो आतंकवादियों का विरोध करते है-उन्हें मारते है, यही धर्म की रीति है।

३. जीवन का उद्‌भव ही नकार में है, बच्चे शुरुआत में न न ही करते रहते हैं, जब वे बड़े होते हैं तो वे सीखते हैं कि कहां हां कहना है और कहां न, और वृद्ध और अशक्त लोग हर चीज के लिए हां ही कहते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि आतंकवादी गतिविधियां और युद्ध, सही दिमाग के लोगों को जगाते हैं और ये चीजें उन्हें लयबद्ध जीवन के लिए सामूहिक प्रयास करने हेतु प्रेरित करती हैं। अगर आतंकी गतिविधियां बढ़ रही हैं, तो संदेश यही है कि व्यवस्था में परिवर्तन की जरूरत है और दुरुस्त दिल और दिमाग के लोगों को कठिन मेहनत की।

४. मुंबई एवं भारत की संसद पर हमले के बाद भारत सरकार ने भारतीय पुलिस के लिए दस हजार करोड़ से ज्यादा के सुरक्षात्मक हथियार खरीदे/हथियार बेचने के लिए क्या आतंकी हमला दस हजार के दो प्रतिशत दलाली की राशि (दो सौ करोड़) एवं कुछ हथियार मैदानी प्रयोग/परीक्षण के लिए देकर नियोजित नहीं की जा सकती ?

५. बहुत सारी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ जो, तेल के स्रोत खनिजों के स्रोत एवं हथियारों के बेचने मे संलग्न रहते है, चाहते है कि आतंकी और आतंकवाद चलता रहे और उनके हित साधते रहे।

सही दिल-दिमाग के लोगों को विकास की दिशा में कार्य करने के लिए प्रोत्साहन देना और आतंकवादियों को नष्ट करना एक साथ चलना जरूरी है।

हमें प्रार्थना करना चाहिए कि ये आतंकवादी और तथाकथित आतंकवाद विरोधी दोनों ही साहस, स्वातंत्र और प्रेम का पाठ समझें और जीवन को इसकी समग्रता में जी सकें।

***

६८

भ्रष्टाचार

प्रकृति में भ्रष्टाचार ही विकास और क्रान्तियों, वृद्धि और क्षय के लिए जिम्मेदार है। सारा ही जीवन, व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से : भोजन और उत्सव धर्मिता में आई भ्रष्टता की वजह से ही बढ़ता है। जैसे व्यक्ति, समाज, और देश बढ़ता है, भ्रष्टाचार की अवस्था बदल जाती है, शुद्ध शारीरिक से मानसिक।

आदिम और शारीरिक स्तर पर, अविकसित देश सबसे ज्यादा भ्रष्ट हैं, विकासशील उससे कम और विकसित उनसे भी कम। लेकिन विकसित देश आमतौर पर मानसिक रूप से अविकसित और विकासशील देशों से ज्यादा भ्रष्ट हैं और भ्रश्टता फैलाते हैं।

यह देखा जा सकता है कि अधिकांशतः मानसिक भ्रष्टाचार ही, दूसरे तरह के भ्रष्टाचारों को कारण है। मानसिक भ्रष्टाचार शैतानियत की, अधार्मिकता की और दुख की रास्ते की जड़ है। जब सही रास्ते पर चलने वाले पीछे हटकर अनुभव से रहित और भ्रमित लोगों को नेतृत्व करने देते हैं तो बुराई बढ़ जाती है। सज्जनों को पीछे हट जाना, भ्रष्टाचार के सही सन्तुलन (जैसे कि भोजन में नमक) को बिगाड़ देता है और, यहाँ तक कि अधार्मिकता और अराजकता की परिस्थितियाँ बन जाती हैं।

१. सामान्यतः यदि देश का मुखिया प्रधान मंत्री/राट्रपति भ्रष्ट है, तब वह चाहेगा कि उसके मातहत कर्मचारी ईमानदार हो लेकिन उसकी (भ्रष्टता के कारण) मजबूरी होगी कि वह अपने मंत्री भी भ्रष्ट चुने। भ्रष्ट मंत्री भी चाहेगा कि उसका स्टॉफ ईमानदार हो एवं उसके विश्वासपात्र लोग उसको पैसा कमाकर या सुविधायें जुटाकर पेश करे और इसलिए वह विश्वासपात्र भी भ्रष्ट चुनेगा। भ्रष्ट विश्वासपात्र

भी इस तरह से इस कड़ी का आगे बढ़ायेगा। इसी तरह अगर राष्ट्र का मुखिया-प्रधानमंत्री/राष्ट्रपति अक्षम (कम क्षमता वाले हैं) हैं तो उसके मंत्री भी अक्षम होंगे और अक्षम मंत्री के सचिव भी अक्षम (इनएफिसियंट) होंगे और इस तरह एक अक्षम प्रधानमंत्री, मंत्री, सचिव, कंपनियों के चेयरमैन, निदेशक ,नगर प्रबंधक इत्यादि की श्रृंखला खड़ी होगी। उपरोक्त दोनों ही स्थिति में चाहे भ्रष्ट हो या अक्षम हो पूरी की पूरी प्रणाली/व्यवस्था के गिरने का डर रहता है या गिर जाती है।

अतः यह देखना -सुनिश्चित करना जरूरी है कि उच्च स्थान पर बैठे हुए व्यक्ति सही तरह से पूरी सावधानी के साथ चुने जायें और यही पर लोकतंत्र में मूल कमी है, जहाँ मुखिया निर्वाचित होते हैं मीडिया के दखलंदाजी एवं दूसरे की कमी के कारण।

बेहतर भविष्य के लिए यह आवश्यक है कि हम एक प्रणाली एक तंत्र ऐसा बनायें जहाँ मुखिया का चयन संतो-महर्षियों द्वारा हो, फिर चाहे चयनित व्यक्ति/मुखिया निर्वाचित व्यक्ति में से हो या जरूरत पड़े तो अनिर्वाचितों में से । यह पूरी व्यवस्था इशारा करती है कि हम दिव्य लोकतंत्र (लोकतंत्र में दिव्यता) की ओर आगे अग्रसर हो ।

२. सामान्यतः सभी यह जानते है कि, आनन्द ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य है और आनन्दित रहना ही एक मात्र धर्म तब कौन इस बात से सहमत नहीं होगा कि आनंदित रहने के लिए हम अधर्म को समाप्त करने के प्रति प्रतिबद्ध हों। धर्म की स्थापना के लिए हमें पहले अपनी प्रणाली को ठीक करना होगा और फिर यदि जरूरी हो तो अपने आपको धर्मयुद्ध/जिहाद के लिए तैयार करना होगा। हमको अपनी सतर्कता और न्याय व्यवस्था का ध्यान रखना होगा ताकि शारीरिक और मानसिक भ्रष्टचार को ऋषियों की चौकन्नी दृष्टि के हिसाब से रोका जा सके और सीमित किया जा सके।

हो सकता है हमें भ्रष्टाचार जो अधर्म का मूल है को हटाने के लिए उसी तरह युद्ध करना पड़े जैसा हमने रावण और दुर्योधन के साथ किया था। हमें अपने आपको अधर्म को समाप्त एवं धर्म को स्थापित करने के लिए तैयार रखना होगा।

***

सुझाव, और अमल के परिणामों से प्राप्त जानकारी

प्रकृति ने किसी भी संरचना के चक्र या प्रणाली को खुला नहीं छोड़ा है। प्रकृति में सारी ही प्रणालियां कुछ कम कुछ ज्यादा, बंद चक्र हैं, कुछ चक्र छोटे होते हैं और कुछ बड़े जैसे कि जल का चक्र, जीवन का चक्र, और कुलमिलाकर यह प्राकृतिक है कि चीजों को सीमाओं से बाहर न जाने देने की व्यवस्थाएं की जाएं। जाँच और सुधार ;चेक्स और बैलेन्सेसद्ध जरूरी है, सुझाव और अमल के परिणामों की जानकारी जरूरी है, ताकि जीवन और इसके चक्र को ठीक ढंग से चलाया जा सके।

सुझाव यह बताते हैं कि या तो सुधार की जरूरत है, या फिर चीजें जटिल हैं। ऐसी परिस्थितियों में, समय रहते और आवश्यक तरीकों से हस्तक्षेप, अच्छे परिणामों के लिए आवश्यक है। ध्यान, लगातार या दिन में पांच बार, या फिर पांच दिन में एक बार ही सही, सही परिणामों के भीतर मौजूद सार में वृद्धि करता है।

१. शासन को वर्तमान सेनाओं, कूटनीति, आतंकवादी गतिविधियों, और अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम के विशेषज्ञों को शामिल कर शोध और विश्लेषण केंद्र की स्थापना करनी होगी। शासन को उपयुक्त सुझावों को शामिल करने के लिए हस्तक्षेप की एक प्रणाली भी विकसित करनी होगी, ताकि शोध और विश्लेषण केंद्र की अनुशंसाओं को लागू किया जा सके, और इसके सकारात्मक परिणाम निकल सकें।

सुझावों को आमंत्रित करने का वर्तमान ढंग बहुत ही उथला है '' जो अपने सुझाव भेजना चाहें, वे अमुक-अमुक तारीख के पहले, अच्छी तरह से टाइप करवाकर इस-इस पते पर भेजें, सारे सुझाव कमेटी की ही संपत्ति होंगे और उन पर किसी भी व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं होगा''। इससे कुछ नहीं हो सकता। जरूरत इस बात की है कि सुझाव देने वाले हरेक व्यक्ति को चिन्हित किया जाए और उसे भागीदारी के प्रमाण पत्र के अलावा पुरुष्कार भी प्राप्त हो।

सुझाव और अमल के परिणामों की जानकारी जीवन के प्रक्रिया के स्वाभाविक घटक हैं, अनुभव अभिव्यक्त होता है और हरेक अभिव्यक्ति के बाद समालोचना, प्रतिक्रिया स्वाभाविक रूप से आता ही है, ताकि आगे अनुभव का रास्ता खुल सके, और हम थम/रूक न जाएं, और न ही बंद हो जाएं।

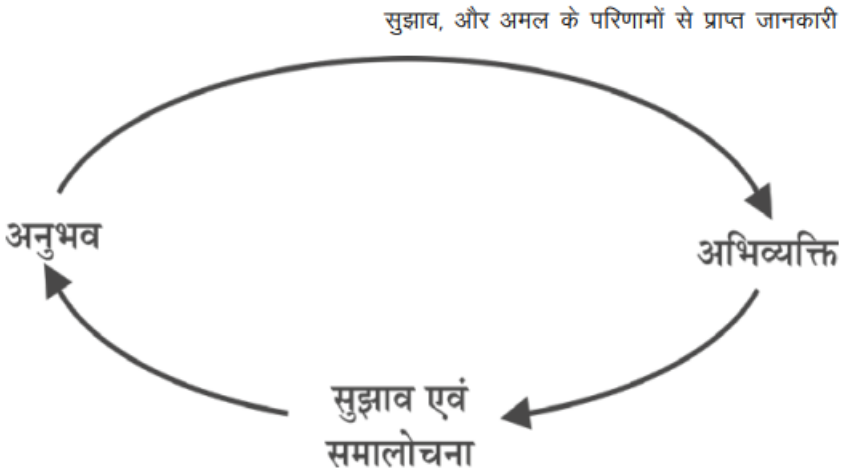

जीवन एवं जीवन के विकास का तरीका

***

पारदर्शिता

पशु और कई मुनि नागा साधु बहुत पारदर्शी होते हैं। मनुष्य समाज से इतने ज्यादा पारदर्शी होने की आशा नहीं की जाती। कुछ लोगों को दूसरों से ज्यादा से ज्यादा पारदर्शिता की मांग करने की आदत पड़ गई है, वे तो नंगे पुरुषों और महिलाओं से भी और ज्यादा पारदर्शी होने की मांग करते हैं, दुर्भाग्यपूर्ण है। चौकीदार को इस बात से क्या मतलब की प्रधानमंत्री क्या कर रहा है, चौकीदार को इस बात के बारे में क्या जानना कि महल में क्या पक रहा है, और इसका उल्टा भी। जब तक किसी को किसी मामले से सीधा लेना-देना न हो तो फिर उससे पारदर्शिता की मांग क्या करना।

मीडिया के कुटिल ठेकेदारों के लिए और नग्नतावाद की मानसिकता से ग्रस्त लोगों के लिए पारदर्शिता बनाकर रखना बिल्कुल भी जरूरी नहीं है। लेकिन आम जनता जानना चाहती है कि कर कैसे वसूल किए जाते हैं, वास्तव में कितना खर्चा हुआ है और किस मद में, और इस खर्च से किन लोगों का हित साधन हुआ। आम जनता के लिए एक ऐसे विभाग की जरूरत है जहां उनसे सरोकार रखने वाले सवालों की विस्तृत जानकारी उपलब्ध हो, इस विभाग की स्थापना की जरूरत इसलिए है, जिससे जनता के बड़े हिस्से का देश के प्रशासनिक और न्यायिक तंत्र पर भरोसा बना रहे।

क) हरेक विकासखंड और जिले के स्तर पर सूचना और जानकारी को आम करने के लिए केंद्र होना जरूरी है, जो :

१. न्यायिक प्रक्रियाओं

२. वसूले गए कर और इसके खर्च, क्षेत्र के, देश के और उनके इलाके के पचास-सौ शीर्षस्थ सरकारी अधिकारियों (जिनमें न्यायाधीश भी शामिल हैं) के आमदनी और खर्चों के आंकड़े।

३. प्राप्त सुझावों और उन पर उठाए गए कदमों की स्थिति के बारे में जानकारी उपलब्ध कराएं।

दोशियों को सजा देने के बिना किसी अतिरिक्त व्यवस्था के कारण सूचना का अधिकार एक बेकार का खिलौना बन गया है (जो भाुरूआत में थोड़ी संतुश्टि देती है लेकिम बाद में सूचना पाने वाले को ज्यादा तनाव) और तथाकथित लोकपाल भी इसी तरह है। जरूरत है तो सिर्फ सुगम, सरल, त्वरित न्याय व्यवस्था की।

ख) यह जरूरी है कि व्यक्तिगत और सामूहिक तौर पर हम एक न्यायोचित और लोगों का भरोसा जीतने में सक्षम प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था कायम करें, ताकि उपरोक्त की आवश्यकता भी न पड़े।

***

आत्मगौरव और प्रसाद

आत्मगौरव आत्मनिर्भरता में, परस्पर निर्भरता के सम्मान में, और पवित्रता के साथ स्वीकृत करने और देने की क्षमता और उसके निष्पादन में निहित है।

अपने आपको नीचे गिराना या कमजोरों का दबाना या बुरे व्यवहार आत्मगौरव के रंग को काला कर देते हैं। हम अपनी मुद्रा को छोटा रखेगे या बड़ा रखेगे, आत्मगौरव इसी हिसाब से प्रभावित होगा।

जब एक सेब चार डालर/यूरो/पौंड प्रति नग के हिसाब से बेचा जा रहा हो, तो एक फ्रांसीसी या अंग्रेज के लिए इसे खरीदना उतना ही आसान है, जितना कि एक भारतीय को इसे ४ रुपये में खरीदना। विभेद और इसके श्रृंखलागत परिणाम तो तब शुरू होते हैं जब किसी भारतीय को किसी दूसरे देश में इसे दो सौ रुपये प्रति नग के हिसाब से खरीदना पड़ता है। मुद्रा की समानता को शीघ्रातिशीघ्र हासिल कर लेना जरूरी है, फिर चाहे हमें इसके लिए कुछ समय तक आधा पेट भी काटना पड़े।

१. एक जागृत देश में, जब आत्मगौरव अपने उच्चतम स्तर को प्राप्त कर लेता है, तब प्रसाद की प्राप्ति होती है।

२. प्रसाद प्रकृति की निकटता में और आत्मसंयम में निहित है, जो हमें प्रकृति में बड़े स्तर पर हस्तक्षेप से बचाते हैं-जैसे कि नदियों को आपस में जोड़ने की परियोजना, बहुत बड़े बाँध, गहरे समुद्र में खनन, समुद्र में परमाणु परीक्षण, स्पेस में सेटेलाइट का झगड़ा इत्यादि जो आपदा ला सकती है।

''आत्मगौरव प्रदत्तता से आता है, जबकि प्रसाद तो प्रकृति की गोद में है।

***

हिंसा, अहिंसा, शांति और लय

(१.) प्रकृति में विचित्र और अंतरविरोधी लगने वाली चीजें होती ही रहती हैं और हमारे इतिहास में इसके पर्याप्त साक्ष्य हैं। बुद्ध एवं महावीर की अहिंसा के जरूरत से ज्यादा और निराधार प्रयोग से उनके बाद भारत की दशा में गिरावट आई, और अभी हाल में गांधीजी और उनके अनुयायियों द्वारा चलाए गए अहिंसात्मक आंदोलन के बाद सुधार की शुरुआत हुई, इस तरह ठीक उस चीज ने जिसने एक समय भारत के पतन में योगदान दिया था दूसरे समय उसके उत्थान में योगदान दिया।

(२.) अंत में सभी खेल ताकत के बलबूते पर ही निपटाये जाते है, ताकत यदि, खराब व्यक्तियों, राक्षसों, दैत्य, दानव, असुरों के हाथ में होगी तो समाज में अराजकता, अन्याय एवं अत्याचार बढ़ेगा और इसके विपरीत यदि ताकत अच्छे व्यक्तियों के, महात्मा, देवताओं के हाथ में होगी तो समाज अच्छा होगा।

(३.) एक बार महावीर जैन से एक व्यक्ति ने पूछा कि सभी कहते है कि हममें ताकत/शक्ति होनी चाहिए, आपका क्या मत है- महावीर जैन ने कहा- मेरे मायने में तो भाायद बूरे व्यक्तिओं को उन्नीदे, कमजोर एवं असहाय एवं अच्छे व्यक्तियों को जागरूक, ताकतवर एवं सामर्थवान होना चाहिए।

(४.) सारे ही लोग मजे के लिए और मजे-मजे में की गई हत्याओं के विरुद्ध हैं, अल्लाह ने कभी आताताई से प्रेम नहीं किया और न ही कृष्ण ने कोई युद्ध शुरू किया और जो कोई भी अधर्मी हो जाता है दंड का हकदार भी। धर्मयुद्ध जरूरी हो जाता है तब जब कि समाज का एक बड़ा समूह या कोई खास समूह अधार्मिक व्यवहार का समर्थक बन जाता है।

ऐसे सारे ही युद्धों में शीर्ष नेतृत्व ने अपने ही हाथों से किसी को शायद की कभी मारा हो। केवल ऐसे लोग ही युद्ध के केंद्र में रहते हुए भी अहिंसक बने रहते हैं, नहीं तो लोगों की आदत है कि वे आमआदमियों की अहिंसा और खास आदमियों की हिंसा के समर्थक हो जाते हैं।

(५.) जीवन में संघर्ष सनातन है, हमारे शरीर में भी सफेद कोशिकाएं जीवाणुओं और विषाणुओं से लड़ती ही रहती हैं, और शांति तो केवल तब प्राप्त होती है, जब हम मिट्टी में मिल जाते हैं, या मृत्य में।

आमतौर पर थोड़ा बहुत जो प्राप्त होता है वह तो लय ही है, और हमारे सारे प्रयास इसी की ओर हैं। शासन को भी इस संबंध में समन्वित दृष्टि लेने की जरूरत है, देश में और विश्व में लयबद्धता के प्रोत्साहन में।

***

नरेंद्र अग्रवाल

हिंदी **अनुवाद: डा० हरेन्द्र अग्रवाल**